ॐ

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला का अड़तालीसवां पुष्प

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

राजमल पवैया

संपादक

श्री डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री नीमच

अध्यक्ष अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद

प्रकाशक

भरत पवैया एम. काम. एल. एल. बी.

संयोजक

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

४४ इब्राहीमपुरा भोपाल - ४६२ ००१

प्रथम आवृत्ति	महावीर जयंती २५२३ २०/४/१९९७	न्योछावर छत्तीस रुपये

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

अनेकों आध्यात्मिक विधानों के पश्चात् हमारे

भावी प्रकाशन

१. तत्त्वानुशासन विधान
२. कसाय पाहुड विधानत
३. तत्त्व ज्ञान तरंगिणी विधान

अत्यंत महत्त्वपूर्ण आत्म ध्यान की विधि का सर्वोत्तम दिग्दर्शक

४. ज्ञानार्णव विधान

आदि

अन्य विधान लिखने के लिए आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

दूरभाष	तारादेवी पवैया प्रकाशन	४४ इब्राहीमपुरा
५३१३०९	भोपाल	४६२००१

ॐ

श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः

श्री बागमल पवैया

जन्म	देह परिवर्त्तन महावीर जयंती
सन् १९२५	१९९७

की पवित्र स्मृति में

पवैया परिवार भोपाल द्वारा भेंट

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओङ्कारंभक्ति संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ओङ्काराय नमो नमः ॥

अरहंता असरीरा आइरियातहउवज्झया मुणिणो ।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी ॥

बारह भावना

❑ राजमल पवैया

अनित्य भावना-

सम्राट राजराजेश्वर नृप, देवेन्द्र नरेन्द्र बली अविजित ।
कोई न अमर होकर आया है, मृत्यु समय सबका निश्चित॥
तन यौवन धन वैभव परिजन, संयोगों का है क्षणिक नृत्य ।
चिंतन अनित्य भावना श्रेष्ठ, है आत्म द्रव्य ही एक नित्य ॥१॥

अशरण भावना-

सुत मात पिता भ्राता भगिनी, बांधव बेबस हो जाते हैं ।
चक्री देवादिक मंत्र तंत्र, मरने से रोक न पाते हैं ॥
अशरण है कोई शरण नहीं, है आत्म ज्ञान ही एक शरण ।
निज शरण प्राप्त करले चेतन, निश्चित होगा भवकष्टहरण॥

संसार भावना-

यह जीव जगत में जन्म मरण, अरु जरा रोग से हुआ दुखी।
पर द्रव्यों की लिप्सा में लय, जग में देखा कोई न सुखी ॥
सुर नर तिर्यंच नारकी, सब जड़ कर्मों के आधीन हुए ।
जिसने स्वभाव को पहचाना, संसार त्याग स्वाधीन हुए ॥३॥

एकत्व भावना-

यह जीव अकेला आता है, यह जीव अकेला ही जाता ।
शुभ अशुभ कर्म का फल भी तो, यह जीव अकेला ही पाता॥
पर में कर्तृत्वबुद्धि मानी, इसलिए दुखी होता आया ।
पर से विभक्त निज शुद्ध रूप, एकत्व भाव अब उर भाया॥४॥

अन्यत्व भावना-

अपना तन अपना नहीं, अरे तो कोई क्या होगा अपना ।
सुत पत्नी वैभव राज्य आदि, अपनेपन का झूठा सपना ॥
पर द्रव्य नहीं कोई अपना, अपनत्व मोह मैंने त्यागा ।
मैं चिदानंद चैतन्य रूप, अन्यत्व भाव चिन्तन जागा ॥५॥

अशुचि भावना-

मल मूत्र मांस मज्जा लोहू से, देह अपावन भरी हुई ।
ढांचा है घृणित हड्डियों का, ऊपर से चमड़ी चढ़ी हुई ॥
दिन रात गलित मल बहता है, नव द्वारों से आती है घिन।
शुचिमय पवित्र मैं चेतन हूँ, है अशुचि भावना का चिन्तन ॥६॥

आश्रव भावना-

शुभ अशुभ भाव के द्वारा ही,कर्मों का आश्रव है होता ।
वसु कर्म बन्ध होते रहते, संसारी जीव दुखी होता ॥
आश्रव दुख का निर्माता है, परिवर्तन पंच कराता है ।
निज का जो अवलंबन लेता, आश्रव को सहज हराता है ॥७॥

संवर भावना-

आश्रव का रुकना संवर है, शुभ अशुभ भाव का नाशक है।
शुद्धोपयोग है धर्मध्यान संवर, निज ज्योति प्रकाशक है ॥
जग के विकल्प से रहितसदा, अविकल्प आत्मा शुद्ध विमल।
निश्चय से शुद्धस्वभावी है गुण ज्ञान अनंत सहित अविकल ॥८॥

निर्जरा भावना-

सविपाक अकाम निर्जरा तो, चारों गतियों में होती है ।
अविपाक सकाम निर्जरा ही, कर्मों के मल को धोती है ॥
मैं ज्ञान ज्योति प्रज्ज्वलित करूं, निर्जरा करूं तप के द्वारा।
निश्चय रत्नत्रय धारण से, निज सूर्य प्रकट हो उजियारा ॥९॥

लोक भावना-

जीवादिक छह द्रव्यों से, परिपूर्ण अनादि अनन्त लोक ।
पुद्गल अरु जीव अधर्म धर्म, आकाश काल मय सर्व लोक॥
इस लोक बीच चारों गति में, मैं तो अनादि से भटक रहा।
शुभ अशुभ के कारण ही, विन ज्ञान लोक में अटक रहा ॥१०॥

बोधिदुर्लभ भावना-

अहमिन्द्र देवपद प्राप्ति, सरल पांचों इन्द्रिय के भोग सुलभ।
मिथ्यात्व मोह के कारण ही है, सम्यक् ज्ञान महा दुर्लभ ॥
निजपर विवेक जागृत हो तो निजको निज पर को पर मानूं।
हो सम्यक्ज्ञान सहजमुझको, निजआत्मतत्त्व ही को जानूं ॥११॥

धर्म भावना-

सद्दर्शन ज्ञान चरित्ररूप, रत्नत्रय धर्म महा सुखकर ।
उत्तम क्षमादिदश धर्मश्रेष्ठ, निज आत्मधर्म ही भवदुखहर ॥
मैं धर्म भावना चिंतन कर, भव रज को दूर हटाऊंगा ।
शाश्वत अविनाशी सिद्ध स्वपद, निजमें निज से प्रगटाऊंगा॥१२॥
द्वादश भावना चिंतवन से, वैराग्य भाव उर में आता ।
जो निज पर रूप जान लेता, वह स्वयं सिद्धवत हो जाता॥
निर्वाण प्राप्त हो जाता है, जग के बन्धन कट जाते हैं ।
निज अनादि अनंत समाधि प्राप्त, होते भवदुख मिट जाते हैं ॥

मृत्यु महोत्सव

राजमल पवैया

आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।
नाचो गाओ हर्ष मनाओ, मंगल उत्सव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

सर्व परिग्रह का मैं त्यागी, निज स्वभाव का मैं अनुरागी।
सम्यक् ज्ञान ज्योति उर जागी, अनुपम नर भव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

साम्य भाव निज उर में धारा, तीव्र कषाय भव निर वारा।
निज को जन्म मरण से तारा, अब जीवन नव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

राग द्वेष मद मोह हटाऊँ, भव्य भावना द्वादश भाऊं ।
निज स्वरूप में ही रम जाऊं, मंगल अभिनव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

पंच पाप का पूर्ण त्याग है, मुझे किसी से नहीं राग है ।
अंतर में पूरा विराग है, नहीं उपद्रव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

अब वियोग की बेला आई, कोई रुदन न करना भाई।
देखा मोह महा दुखदाई, हुआ शिथिल अब है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

क्षमा भावना उर में भरलूं, क्षमा क्षमा मैं सबसे करलूं।
पर भव जा कर्मों को हरलूं, यह दृढ़ निश्चय है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

तत्त्व भावना सहज विचारूँ, निज परिणति निजरूप संवारूँ।
अब मैं वीतरागता धारूँ, फिर अवसर कब है ॥

आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

हुआ आज निर्मल अभ्यंतर सोहं सोहं जपूं निरंतर ।
मेरा आत्मदेव अभ्यंकर, अब न पुनर्भव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

निज के गीत सदा गाऊंगा, महामोक्ष मंगल पाऊंगा ।
सिद्धशिला पर मैं जाऊंगा, यह विचार नव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

तन की पीड़ा तो है तन में, नहीं वेदना किंचित मन में।
लिया समाधिमरण अब मैंने, सुधरा यह भव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

मैं तो अजर अमर अविनाशी, काट रहा भव दुख की फांसी।
सिद्धपुरी का मैं हूँ वासी जहां न कलरव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

भेद ज्ञान की बुधि ली मैंने, निज आतम की सुधि ली मैंने।
तीर्थयात्रा करली मैंने, आतम अनुभव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

निज स्वभाव गुण गाया मैंने, क्रूर विभाव भगाया मैंने ।
संवर भाव जगाया मैंने, कहीं न आस्रव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

बीते समय आत्म जापने में परिपूरण हूं मैं अपने में ।
मान कषाय न है सपने में, निरुपम मार्दव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

उदासीनता मुझको भाई, समता से हो गई सगाई ।
ममता तजी महादुखदायी, जो भव दानव है ॥

आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

मेरा आत्म देव विख्याता, मंगलमय मंगल का दाता ।
सर्वोकृष्ट स्वऋजु सुखदाता, पूर्ण आर्जव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

अब मेरे परिणाम सरल हैं, आत्म भावना अति निर्मल है ।
सहज भाव सम्पूर्ण विमल है, राग पराभव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

कोई नहीं किसी का जग में, झूठे नाते हैं पग पग में ।
मोह तोड़ आया शिवमग में, देखो जय जय है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

मन वच काय त्रियोग संवारूँ, खान पान सब ही तज डारूँ ।
सल्लेखना पूर्ण मैं धारूँ, जो सुख आर्णव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

दश लक्षण व्रत मन में लाऊं, सोलह कारण भाव जगाऊं।
रत्नत्रय की महिमा गाऊँ, भाव निरास्रव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

भाव भासना मुझे हुई है, राग वासना छुई मुई है ।
निज सुख की अनुभूति हुई है, उर स्व चतुष्टय है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

सम्यक् दर्शन मैंने पाया, सम्यक् ज्ञान हृदय को भाया।
सम्यक् चारित्र को अपनाया, चेतन निर्भय है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

जन्म जन्म तक जिनश्रुत पाऊं, भाव शुभाशुभ दूर हटाऊँ।
एक दिवस शिव पदवी पाऊं, जो ध्रुव सुखमय है ॥

आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

पंच परम परमेष्ठी ध्याऊं, देव शास्त्र गुरु को सिर नाऊं।
शुद्धातम में ही बस जाऊं, जो निज वैभव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः जप लूं, अंत समय दृढ़ संयम तप लूं।
वीतराग का पावन पथ लूँ, शाश्वत अक्षय है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

यह सन्यास मरण सुखकारा, दुर्मति दुर्गति नाशन हारा।
मैंने मौन महाव्रत धारा, उज्ज्वल परभव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

तन कारा से मुक्त बनूं मैं, हर्षित सहज स्वभाव सनूं मैं।
क्रम क्रम से वसु कर्म हनूं मैं, निज पद शिवमय है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

मंगल चौक पुराओ भाई, मंगल कलश सजाओ भाई ।
मंगल गीत सुनाओ भाई, विदा महोत्सव है ॥
आज मेरा मृत्यु महोत्सव है ।

गीत

स्वामी मेरी बाँहें तुरत गहो ।
काहे नाथ बचावत नाहीं मोसे आप कहो ॥
कर्मों की माया में उलझ्यो कष्ट न जात सह्यो ।
गुण अनंत पति होकर भी मैं दुर्गण धार बह्यो ॥
तुव दरसन होवत ही मैंने बहु सुख आज लह्यो ।
मोरी लाज रखो हे प्रभु जी अब भव दुक्ख न हो ॥

विषय सूची

ॐ

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

संरक्षक सूची

प्रधान संरक्षक

११०१/-	परम आदरणीय महामहिम राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल जी शर्मा राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली
११०१/-	भारत की प्रथम महिला परम आदरणीय श्री. सौ. विमला शर्मा ध. प. राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल जी शर्मा, राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली

संरक्षक

२१,०००/-	श्री स्व. माते श्वरी सुवा बाई ध. प. स्व रतन लाल जी पहाड़िया पीसागंन की पुण्य स्मृति में श्री रिखब चंद जी नेमी चंद्र जी पहाड़िया परिवार
१०,०००/-	श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल, झवेरी बाजार, मुंबई
५,०००/-	श्री पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
११०१/-	श्री डा. गौरीशंकरजी शास्त्री एम.ए. (ट्रिपल) सप्ततीर्थ पी.एच.डी. अध्यक्ष म.प्र.स्वतंत्रता संग्राम सैनिक संघ भोपाल
११०१/-	श्री सौ. डा. राजकुमारी देवी ध.प. श्री डा. गौरीशंकरजी शास्त्री भोपाल
११०१/-	बाल. ब्र. पद्मश्री सुमतिबेन शहा संस्थापक श्राविका संस्थान सोलापुर द्वारा बा.ब्र. विद्युल्लता शहा सोलापुर
२५००/-	स्व. बालचन्दजी, अशोक नगर द्वारा चौधरी फूलचन्दजी, न्यू मूंबई
१६००/-	श्री इन्द्रध्वज मण्डल विधान एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर, तलोद
११००/-	श्रीमती बसन्ती देवी धर्मपत्नी स्व. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, भिण्ड
११००/-	कु, लिटिल (पल्लवी) सुपुत्री पूर्णिमा धर्मपत्नी शैलेन्द्र कुमार जैन, भिण्ड
११००/-	श्रीमती सुहागबाई धर्मपत्नी बदामीलाल जैन, भोपाल
११००/-	श्री मोहनलाल जैन म. प्र. ट्रांसपोर्ट, भोपाल
११००/-	श्री हुकुमचन्द सुमतप्रकाश जैन, भोपाल
११००/-	श्रीमती सुशील शास्त्री धर्मपत्नी श्री के. शास्त्री, नई दिल्ली
११००/-	सौ. सुशीलादेवी धर्मपत्नी ताराचन्द जैन, इटावा
११००/-	श्री जैन युवा फेडरेशन मुरार से प्राप्त सम्मान राशि

११००/-	सौ. शशिप्रभा धर्मपत्नी महेशचन्द जैन, फिरोजाबाद
११००/-	सौ. प्यारीबाई धर्मपत्नी बाबूलाल जी विनोद, भोपाल
११००/-	स्व. परमेश्वरी देवी धर्मपत्नी सत्यप्रकाशजी गुप्ता, भोपाल
११००/-	सौ. स्नेहलता धर्मपत्नी चन्द्रप्रकाश सोनी, इन्दौर
११००/-	सौ. रानी देवी धर्मपत्नी सुरेशचन्द पाड्या, इन्दौर
११००/-	श्री दि. जैन महिला मंडल, भोपाल से प्राप्त सम्मान राशि
१०००/-	श्री दि. जैन स्वाध्याय मंदिर, राजकोट
१०००/-	देवलाली कवि सम्मेलन से प्राप्त सम्मान राशि
१०००/-	सौ. निर्मला धर्मपत्नी भरत पवैया, भोपाल
१०००/-	श्री भरत पवैया, भोपाल
१०००/-	श्री उपेन्द्र कुमार नगेन्द्र कुमार पवैया, भोपाल
१०००/-	श्री चौधरी फूलचन्दजी, वाशी न्यू मूंबई
१०००/-	श्री कुन्दकुन्द कहान स्मृति सभागृह, आगरा
१०००/-	श्री उम्मेदमल कमलकुमारजी बड़जात्या, दादर मूंबई
१०००/-	श्री हुकुमचन्दजी सुमेरचन्दजी, अशोकनगर
१०००/-	सौ. राजबाई धर्मपत्नी राजमल जी लीडर, भोपाल
१०००/-	सौ. सुधा धर्मपत्नी महेन्द्रकुमार जी अलंकार लाज, भोपाल
१०००/-	सौ. मधु धर्मपत्नी जितेन्द्र कुमार जी सराफ, भोपाल
११०१/-	सौ. कमलादेवी धर्मपत्नी खेमचन्द जैन सराफ, भिण्ड
११०१/-	सौ. मधु धर्मपत्नी डां. सत्यप्रकाश जैन, नई दिल्ली
५५५५/-	श्री परमागम दि. जैन मंदिर ट्रस्ट, सोनागिर
११००/-	सौ. जिनेन्द्रमाला धर्मपत्नी हेमचन्दजी जैन, सहारनपुर
११००/-	सौ. श्री कान्तादेवी ध. प. शान्तिप्रसाद जैन, दिल्ली (राजवैद्य एंड संस)
११००/-	सौ. रतनबाई धर्मपत्नी श्री सोहनलालजी जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर
११००/-	सौ. वैजयंती देवी धर्मपत्नी बाबूलालजी पांड्या लाला परिवार, इन्दौर
११००/-	पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
२५०१/-	सौ. लाभुबेन ध. प. श्री अनिल कामदार, दादर मुंबई
१०००१/-	पू. कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली
११०१/-	सौ. माणिकबाई धर्मपत्नी फूलचंदजी झांझरी, उज्जैन
११०१/-	सौ. सुनीता ध. प. विनय कुमार जी जैन ज्वेलर्स, देहरादून

११००/-	सौ. अनीता ध. प. मोहित कुमार जी मेरठ
११००/-	सौ. गजराबाई ध. प. चौधरी फूलचंद्रजी, न्यु मुंबई
११००/-	सौ. स्व. तुलसाबाई ध. प. स्व. बालचंद्रजी अशोक नगर.
११०१/-	सौ. प्रेमबाई ध. प. शान्तिलाल जी खिमलासा
११०१/-	सौ. स्नेहलता ध. प. देवेन्द्रकुमार जी बड़कुल अरविन्द कटपीस, भोपाल
११०१/-	सौ. शान्तिबाई ध. प. श्री श्रीकमलजी एडवोकेट, भोपाल
११०१/-	सौ. रेशमबाई ध. प. श्रीछगनलाल जी मदन मेडिको, भोपाल
११०१/-	श्रीमती जैनमती ध. प. स्व. मदनलालजी भोपाल
११०१/-	सौ. कमलाबाई ध. प. श्री माणिकचंद जी पाटोदी, लुहारदा
११०१/-	सौ. तेजकुंवर बाई ध. प. श्री उम्मेदमल जी बड़जात्या दादर, मुंबई
१००१/-	श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल नवरंग पुरा अहमदाबाद
११०१/-	सौ. कोकिला बेन ध. प. श्री हिम्मतलाल शाह कहान नगर दादर, मुंबई
११०१/-	श्री सुरेशचंदजी सुनीलकुमारजी, बेंगलोर
१०००/-	श्री पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
११०१/-	सौ. सविता जैन एम. ए. ध.प. श्री उपेन्द्रकुमार पवैया, भोपाल
११०१/-	सौ. सुशीलादेवी ध. प. श्री चंद्र जैन सुभाष कटपीस, भोपाल
१००१/-	श्री सौ. चंद्रप्रभा, ध. प. डां. प्रेमचंदजी जैन ४ अरविन्द मार्ग, देहरादून
११०१/-	श्री आचार्य कुन्दकुन्द साहित्य प्रकाशन समिति, गुना
११०१/-	सौ. शान्तिदेवी ध. प. श्री बाबूलालजी (बाबूलाल प्रकाश चंद्र), गुना
११०१/-	सौ. उषादेवी ध. प. श्री राजकुमारजी (बाबूलाल प्रकाश चंद्र), गुना
११०१/-	सौ. अशरफीदेवी ध. प. ज्ञानचंदजी धरनावादबाले, गुना
११०१/-	सौ. पद्मादेवी ध. प. श्री डां. प्रेमचंद जी जैन, गुना
११०१/-	सौ. धनकुमारजी विजयकुमारजी, गुना
११०१/-	सौ. आशादेवी ध. प. अरविन्द कुमारजी, फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. श्री ज्ञानचंदजी मनोज कटपीस, भोपाल
११०१/-	सौ. रजनीदेवी ध. प. श्री नरेन्द्र कुमारजी जियाजी सूटिंग, ग्वालियर
२००१/-	सौ. मंजुला बेन ध. प. श्री मणिलालजी, दादर मुंबई
११०१/-	स्व. सुआबाई मातुश्री रिखवचंद्र नेमीचंद पहाड़िया, पीसांगन (अजमेर)
११०१/-	सौ. तुलसाबाई ध. प. श्री नवलचंदजी जैन, भोपाल
११०१/-	सौ. रत्नाबाई ध. प. श्री सरदारमलजी वर्फी हाउस, भोपाल

११०१/- श्री नवल कुमारी ध. प. स्व बाबूलालजी सोगानी, भोपाल
११०१/- श्रीमती कमलश्री बाई ध. प. स्व डालचंदजी जैन, भोपाल
११०१/- श्री परमागम मंदिर ट्रस्ट, सोनागिर
११०१/- श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल, हिम्मत नगर
११०१/- सौ. मंजुला ध. प. शान्तिलाल गांधी, मैनेजर, सेन्ट्रलबैंक, जोरहाट
११०१/- श्रीमती सुखवती बाई ध.प. स्व. श्री बाबूलाल जी ठेकेदार, भोपाल
११०१/- स्व. श्रीमतीबाई ध. प. कालूरामजी, सत्यम टेक्सटाइल, भोपाल
११०१/- सौ. शकुन्तलादेवी ध. प. रतनलाल श्री सोगानी, भोपाल
२५००/- सौ. रमाबेन धर्मपत्नी सुमन भाई माणेकचंद्र दोशी, राजकोट
११००/- सौ. मीनादेवी एडवोकेट धर्मपत्नी डां. राजेन्द्र भारिल्ल, भोपाल
१०००/- श्रीमती पुष्पा पाटोदी, मल्हारगंज, इन्दौर
११००/- श्री जेठाभाई एच. दोशी सेबिन ब्रदर्स, सिकंदराबाद
११००/- सौ. सुशीलाबाई धर्मपत्नी लक्ष्मीचंद जैन विकास आटो, भोपाल
११००/- सौ. मीना जैन धर्मपत्नी राजकुमार जैन सेन्ट्रल इन्डिया बोर्ड एन्ड पेपर मिल भोपाल
११००/- सौ. रजनी जैन धर्मपत्नी अरविन्द कुमार जैन अनुराग ट्रेडर्स, भोपाल
१०००/- स्व. गुलाब बाई धर्मपत्नी स्व. पातीराम जी जैन, भोपाल
११००/- सौ. शान्तिदेवी धर्मपत्नी श्री नरेन्द्र कुमार आदर्श स्टील, झांसी
१०००/- श्रीमती मातेश्वेरी चौधरी मनोज कुमार जैन माटुन्गा, मुबंई
११००/- श्री कोकिलाबेन पंकजकुमार पारिख दादर, मुंबई
११००/- स्व. श्री कंकुबेन रिखवदास जी द्वारा शान्तिलालजी दादर मुंबई
११००/- श्री हीराभाई चिमनलाल शाह प्रदीप सेल्स पाय धुनी मुबई
११००/- श्रीमती दक्षाबेन विनयदक्ष चेरिटेबल ट्रस्ट दादर, मुंबई
१०००/- सौ. फैन्सीबाई धर्मपत्नी सेसमलजी कात्रज, पूना
११००/- स्व. सौ. मिश्रीबाई धर्मपत्नी राजमल जी फर्म एस रतनलाल, भोपाल
११००/- सौ. हीरामणी धर्मपत्नी श्री मांगीलालजी जैन , भोपाल
११०१/- सौ. पूनम जैन धर्मपत्नी श्री देवेन्द्र कुमार जैन, सहारनपुर
२१०१/- श्री पंडित कैलाशचंद जी कुन्द-कुन्द कहान स्वाध्यायमंदिर देहरादून
११०१/- सौ. मनोरमादेवी धर्मपत्नी श्री जयकुमार जी बज कोहेफिजा, भोपाल
११०१/- श्री भवुतमलजी भंडारी, बेंगलोर

११०१/-	श्री फूलचंदजी विमलचंद जी झांझरी, उज्जैन
११११११/-	स्व. श्री जयकुमार जी की स्मृति में मेसर्स मनीराम मुंशी लाल उद्योग समूह, फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. अनीता धर्मपत्नी राजकुमार जी, भोपाल
११०१/-	सौ. मीनादेवी धर्मपत्नी चन्द्रप्रकाश जी, इटावा
११०१/-	सौ. मोतीरानी धर्मपत्नी कैलाश चंद्र जी , भिण्ड
११०१/-	सौ. ब्रजेश धर्मपत्नी अभिनंदन प्रसाद जी, सहारनपुर
२१०१/-	सौ. रत्नप्रभा धर्मपत्नी मोतीचंदजी लुहाडिया, जोधपुर
५१११/-	श्री केशरीचंद जी पूनमचंद जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली
११०१/-	सौ. मीनादेवी धर्मपत्नी केशवदेव जी, कानपुर
११०१/-	श्री श्यामलाल जी विजयवर्गीय पी. वी. ज्वेलर्स, ग्वालियर
११०१/-	सौ. मधु धर्मपत्नी विनोद कुमार जी, ग्वालियर
११०१/-	स्व. कैलाशीबाई धर्मपत्नी स्व. रतनचंद जी, ग्वालियर
११०१/-	स्व. रत्नादेवी धर्मपत्नी स्व. छुन्नामल जी , ग्वालियर
११०१/-	सौ. अरूणा धर्मपत्नी निर्मलचंद जी, ग्वालियर
११०१/-	स्व. चमेलीदेवी धर्मपत्नी निर्मल कुमारजी एडवोकेट, ग्वालियर
११०१/-	स्व. रघुवरदयाल जी की स्मृति में खेमचंद जी सत्यप्रकाश जी, भिण्ड
११०१/-	चि. अंकुर पुत्र सौ. सुधा ध.प.सुनील कुमार जैन, भिण्ड
११०१/-	सौ. मायादेवी धर्मपत्नी सुभाष कुमार जी, भिण्ड
११०१/-	सौ. विमलादेवी धर्मपत्नी उत्तम चंद जी बरोही वाले , भिण्ड
११०१/-	स्व. श्री मूलचंद भाई जैचंद भाई भू. पूर्व मंत्री तारंगा जी
११०१/-	श्री दोसी बसंतलाल जी मूलचंद जी , मुंबई
११०१/-	श्री कनुभाई एम. दोसी, मुंबई
११०१/-	श्रीमती लीलावती बेन छोटालाल मेहता, मुंबई
११०१/-	सौ निर्मलादेवी धर्मपत्नी छोटेलालजी एन. पाण्डे, मुंबई
११०१/-	श्री शान्तिलाल जी रिखवदास जी दादर, मुंबई
११११११/-	स्व. मातेश्वरी सुवाबाई धर्मपत्नी स्व. रतनलालजी, पीसांगन की स्मृति में श्री रिखवचंदजी नेमीचंदजी पहाड़िया परिवार द्वारा
११०१/-	सौ. कृष्ण देवी ध. प. श्री पदम चंद्र जी आगरा
११०१/-	कुन्द कुन्द स्मृति भवन आगरा

२५०१/- श्री शान्तिनाथ दि. जैन ट्रस्ट केकड़ी द्वारा श्री मोहनलाल कटारिया
११०१/- श्री दि. जैन समाज, भीलवाड़ा
११०१/- श्री रामस्वरूपजी महावीर प्रसाद जी अग्रवाल, केकड़ी
११०१/- श्री लादूराम श्री ताराचंदजी अग्रवाल, केकड़ी
२१०१/- सौ. चमेली देवी धर्मपत्नी शिखरचंद जी सर्राफ, विदिशा
११०१/- सौ. सुषमादेवी धर्मपत्नी श्री डा. आर. के. जैन, विदिशा
११०१/- श्रीमती बदामी बाई धर्मपत्नी स्व. श्री बाबूलाल जी (५०१), भोपाल
११०१/- स्व. शक्कर बाई धर्मपत्नी स्व. बिहारीलाल जी, बैरसिया
११०१/- स्व. लक्ष्मीबाई धर्मपत्नी स्व. बंशीलाल जी, भोपाल
११०१/- सौ. रतनबाई ध.प. नन्नूमल जी भंडारी, भोपाल
११०१/- सुश्री बा .ब्र. पुष्पा बेन झांझरी, उज्जैन
११०१/- श्रीमती ताराबाई झांझरी. ध.प. स्व. श्री राजमल जी झांझरी, गौतमपुरा
५००१/- श्री दिगम्बर जैन मंदिर, लशकरी गोठ, गोराकुन्ड, इन्दौर
११०१/- सौ. चंदन बाला ध.प. श्री प्रकाशचंद जी भंडारी, भोपाल
११०१/- सौ. राजकुमारी ध.प. श्री महावीर प्रसादजी सरावगी, कलकत्ता
११०१/- सौ. स्नेह प्रभा ध.प. श्री मुगन चंद जी मानोरिया, अशोकनगर
२५०१/- श्री भरतभाई खेमचंद जेठालाल शेठ राजकोट
११०१/- ब्र. सुशीला श्री, ब्र. कंचनबेन, ब्र. पुष्पा बेन, सोनगढ़
११०१/- सौ. विमलादेवी ध.प. श्री बाबूलालजी, हाटपीपलावाले, भोपाल
११०१/- श्रीमती विमलादेवी ध.प. स्व. श्री भगवानदासजी भंडारी, गंजबासोदा
११०१/- स्व. कुमारी शिखा सुपुत्री श्री नीलकमल बागमलजी पवैया, भोपाल
११०१/- सौ. स्नेहलता ध.प. श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर
२१०१/- सौ. कंचनबाई ध.प. श्री सौभाग्यमलजी पाटनी, बंबई
२५०१/- श्री ताराबाई मातेश्वरी श्री मांगीलालजी पदमचंदजी पहाडिया, इन्दौर
११०१/- सौ. शशिबाला ध.प. श्री सतीश कुमारजी सुपुत्र श्री पन्नालालजी, भोपाल
११०१/- श्री आनंद कुमारजी देवेन्द्र कुमारजी पाटनी, इन्दौर
११०१/- सौ. प्रभादेवी ध.प. श्री गुलाबचंदजी जैन, बेगमगंज
११०१/- श्री समरतबेन ध.प. श्री चुन्नीलाल रायचंद मेहता, फतेपुर
११०१/- श्री ताराबेन ध.प. स्व. धर्मरत्न बाबुभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर
११०१/- कुमारी समता सुपुत्री श्री आशादेवी पांड्या सुपुत्री स्व. श्री किशनलालजी पांड्या, इन्दौर

११०१/-	स्व. श्री राजकृष्णजी जैन (श्री प्रेमचंद्र जी जैन के पिता जी) दिल्ली
११०१/-	स्व. श्रीमती कृष्णादेवी ध. प. श्री स्व. राजकृष्ण जी
११०१/-	स्व. श्रीमती पदमावती ध. प. श्री प्रेमचन्द्रजी जैन अहिंसा मंदिर (दिल्ली)
११०१/-	सौ. श्रीमती चन्द्रा ध.प. श्री उमेश चन्द्र जी जैन द्वारा श्री संजीवकुमार राजीव कुमारजी, भोपाल.
११०१/-	सौ. पाना बाई ध. प. श्री मोहल लाल जी सेठी गौहाटी (आसाम)
३००१/-	श्रीमती रत्नम्मा देवी ध. प. स्व. श्री रत्न वर्मा हैगडे मातेश्वरी राजर्षि श्री वीरेन्द्र हैग्गडे धर्माधिकारी धर्मस्थल (कर्नाटक)
१५००/-	आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल से प्राप्त पारिश्रमिक
११०१/-	सौं. कलाबेन श्री हसमुख भाई वोरा, मुंबई
११०१/-	श्री स्वर्गीय जसवंती बेन श्री प्रवीण भाई वोरा, मुंबई
११०१/-	सौ. पुष्पाबेन कान्तिभाई मोटाणी, मुंबई
११०१/-	पूज्य श्री स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली ६४ ऋद्धि विधान के समय कवि सम्मेलन में
११०१/-	सौ. वसुमति बेन श्री मुकुन्दभाई खारा, मुंबई
११०१/-	श्री कटोरी बाई ध.प. स्व. जयकुमार जी जैन मातेश्वरी ब्रिगेडियर श्री एम.के.जैन, दिल्ली
११०१/-	स्वर्गीय पानाबाई ध.प. सत्यनारायण सरावगी मातेश्वरी राजूभाई, कानपुर
११०१/-	सौ. राजकुमारी ध.प. श्री कोमलचन्दजी गोधा जयपुर
२१०१/	सौ. रतनबाई ध.प. श्री सोहनलालजी जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर
११०१/-	प्रदीप सेल्स कारर्पोरेशन पायधुनी, मुंबई
११०१/-	सौ.कमलाबेन हिराभाई शाह, प्रदीप सेल्स पायधुनी, मुंबई
११०१/-	श्री दिलीप भाई प्रदीप सेल्स कार्पोरेशन, मुंबई
११००/-	प्रदीपभाई प्रदीप सेल्स कार्पोरेशन पायधुनी, मुंबई
११०१/-	सौ. कुसुमबाई पाटनी ध.प. श्री शान्तिलालजी पाटनी, छिंदवाड़ा
११०१/-	सौ. मंजु पाटनी ध.प. श्री संतोषकुमार पाटनी वासिम
११०१/-	स्व. कुसुम देवी ध. प. स्व. श्री कोमल चंद जी की स्मृति में अजय राज जी जैन भोपाल
११०१/-	सौ. इन्द्राणी देवी ध. प. श्री बागमल जी पवैया भोपाल
११०१/-	सौ. शकुन्तला ध. प. श्री धीरेन्द्र कुमार जी जैन भोपाल
११०१/-	स्व. पुतली बाई ध. प. स्व दीपचंद जी पांड्या (अतुल पब्लिसिटी भोपाल)
११०१/-	श्री झंकारी भाई खेमराज बाफना चेरीटेबिल ट्रस्ट खैरागढ

११११०१/- सौ. कमल प्रभा ध. प. श्री मानिक चंद जी लुहाडिया नई दिल्ली
११११०१/- स्व. श्री उमरावदेवी ध. प. श्री जगनमल जी सेठी इम्फाल
११०१/- सौ. आभा देवी ध. प. प्रकाश चंद जी जैन रायपुर
११०१/- सौ. कमला देवी ध. प. श्री राधेश्याम जी अग्रवाल भोपाल
११०१/- श्री अमर सिंह जी अमरेश समस्तीपुर (बिहार)
२५०१/- श्रीमती रतन बाई ध. प. स्व. श्री केशरी मल जी पांड्या इन्दौर
११०१/- सौ. मधु ध. प. श्री वीरेन्द्र कुमार जी जैन नई दिल्ली
२१०१/- जैन जाग्रति महिला मंडल गुना (म. प्र.)
११०१/- सौ. ज्योति ध. प. श्री सुरेश चंद जी जैन पारस स्टोर्स गुना
११०१/- श्री शकुन्तला देवी ध. प. स्व. श्री दरबारी लाल जी जैन दिल्ली
११०१/- श्री सौ. रोहिणी देवी ध.प.श्री मनोहरजी श्री धनचंद्रजी अथणे कोल्हापुर
११०१/- श्री शान्तिदेवी ध.प. स्व. पांडे मूलचंदजी जैन इटावा मातेश्वरी श्री वीरेन्द्र कुमार, सिलचर नरेन्द्र कुमार जी भोपाल
११०१/- सौ. सुमनेश ध.प. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन सिलचर (आसाम)
११००१/- श्रीमत सेठ शितावराय जी लक्ष्मी चंद जी साहित्योद्धारक फंड विदिशा
११०१/- श्री सौ. किरण चौधरी ध. प. श्री महेन्द्र कुमार जी चौधरी भोपाल
११०१/- श्री सौ. शशि ध. प. श्री आदित्य रंजन जैन राज ट्रेक्टर्स बीना
११०१/- श्री सौ. चमेली बाई ध. प. श्री कस्तूर चंद जी जैन सिलवानी वाले भोपाल
११०१/- सौ. कमलेश ध. प. गैंदालाल जी सराफ चंदेरी
११०१/- श्री रामप्रसाद जी हजारीलाल जी भंडारी भोपाल
११०१/- श्री विश्वंभर दास जी महावीर प्रसाद जी जैन सराफ दिल्ली
५००१/- श्री फूलचंद जी विमलचंद जी झांझरी उज्जैन
११०१/- श्री दि. जैन शिक्षण समिति, रामाशाह मंदिर, मल्हारगंज, इन्दौर
११०१/- सौ. अंजु देवी ध. प. अजय सोगानीमोटर हाऊस भोपाल
११०१/- स्व. शान्ताबेन ध.प. श्री शान्ति भाई जवेरी मुंबई
११०१/- श्री बसंती बाई ध.प. स्व. श्री हरख चंद जी छावड़ा मुंबई
११०१/- सौ. शशि ध.प. श्री अशोककुमारजी छावड़ा सूरत
११०१/- स्व. कान्ताबेन मोतीलालजी पारिख की स्मृति में प्र. रमा बेन पारिख देवलाली
११०१/- श्री मदन लालजी अनिल कुमारजी जैन, अनिल बेंगल्स, भोपाल

१९०१/- श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री मानिक चंद जी जैन गुड़ बाले, भोपाल
१९०१/- श्री जिन प्रभावना ट्रस्ट प्रो. सुमत प्रकाश जी जैन भोपाल
१९९९/- श्री जैन स्वाध्याय मंडल पंढरपुर
१९००१/- श्री केशरी चंद्र जी पूनम चंद्र जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली
१९०१/- सौ. प्रतिभा देवी ध. प. श्री मनोज कुमार जैन मुजफ्फर नगर
१९०१/- सौ. ममता देवी ध. फ. श्री आदीश कुमार जी पीरागढ़ी नई दिल्ली
१९०१/- प्रमिला देवी ध. प. श्री मांगीलाल जी पहाड़िया इन्दौर
१९०१/- श्री गोकल चंद जी चुन्नी लाल जी की स्मृति में सुपुत्र श्री मांगी लाल जी पहाड़िया इन्दौर
१९०१/- सौ. सुधा ध. प. श्री प्रवीण कुमार जी लुहाड़िया नई दिल्ली
१९०१/- सौ. पुष्पादेवी ध. प. श्री सतीश कुमार जी जैन नई दिल्ली
१९०१/- सौ. रमा जैन ध. प. श्री दृगेन्द्र कुमार जी नई दिल्ली
१९०१/- अशोक कुमार जी सुपुत्र श्री दरबारीमल जी नई दिल्ली
१९०१/- श्री स्व. मेमोदेवी ध. प. श्री अजित प्रसाद जी पीतल वाले नई दिल्ली
१९०१/- सौ. कौशल्या देवी ध. प. श्री इन्द्र सेन जी शाहदरा दिल्ली
१९०१/- स्व. निर्मला देवी ध. प. श्री पृथ्वी चंद्र जी जैन नई दिल्ली
१९०१/- सौ. विमला देवी ध प. श्री विमल कुमार जी सेठी इन्दौर
१९०१/- सौ. कमला देवी ध. प. वाणी भूषण पं. ज्ञान चंद्र जी विदिशा
१९०१/- श्री कंचन बाई ध. प. स्व. हुकुम चंद्र जी पाटनी मातेश्वरी आनंद कुमार जी देवेन्द्र कुमार जी इन्दौर
१९०१/- श्री स्व. सुन्दर बाई ध. प. श्री छोटेलाल जी पांडे झांसी की स्मृति में सुपुत्र श्री सुरेन्द्र कुमार जी
१९०१/- सिंघई श्री सुन्दरलालजी सुभाष ट्रान्सपोर्ट प्रा. लि. भोपाल
१९०१/ स्व. पंडित आनंदीलालजी जैन विदिशा
१९०१/- सौ. ताराबाई ध. प. श्री राजमल जी मिठ्ठूलाल जी नरपत्या, भोपाल
१९०१/- सौ. कुसुम जैन ध. प. प्रो. श्री महेश चन्द्र जी जैन गोहद
१९०१/- सौ. आशा देवी ध. प. श्री पी. सी. जैन प्रबंधक स्टेट बैंक भोपाल
१९०१/- सौ. धनश्री बाई ध. प. श्री कपूर चंद्र जी जैन भोपाल
१९०१/- सौ. सावित्री बाई ध. प. चौधरी सुभाष चंद्र जी जैन भोपाल
१९०१/- स्व. श्री आभा देवी ध. प. श्री सुरेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल

१००१/- सौ. श्री चंद्रकान्ता ध. प. श्री महेन्द्र कुमार जी जैन सामन सुखा भोपाल
११०१/- सौ.सविता देवी ध.प. श्री अरुणकुमारजी जैन, भोपाल
११०१/- सौ. चम्पा देवी ध. प. श्री लक्ष्मी चंद्र जी महावीर टेन्ट हाऊस, भोपाल
११०१/- सौ. वीणा देवी ध. प. श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन आम्रपाली भोपाल
११०१/- सौ. विद्यादेवी ध. प. श्री देवेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल
११०१/- श्री देवेन्द्र कुमार जी पाटनी मल्हारगंज इन्दौर
११०१/- सौ. शकुन्तला देवी ध. प. श्री पदम चंद्र जी भौंच जयपुर
११०१/- सौ. भंवरी देवी ध. प. श्री घीसालाल जी छावड़ा जयपुर
११०१/- सौ. कंचन देवी ध. प. श्री जुगराज जी कासलीवाल कलकत्ता
११०१/- सौ. शान्ति देवी ध. प. पारसमल जी पाटनी अजमेर
११०१/- सौ. गुलाब देवी ध.प. श्री लक्ष्मी नारायण जी जैन शिवसागर आसाम
११०१/- स्व. प्रेमवती देवी ध. प. स्व. सेठ मनीराम जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ. शान्ति देवी ध. प. स्व. श्री सेठ मुन्शीलाल जी फिरोजाबाद
११०१/- सौ विमला देवी ध. प. श्री सेठ चंद्र कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ. शकुन्तला देवी ध. प. स्व. श्री जय कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ. उर्मिला देवी ध. प. श्री अशोक कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ. शशिबाला देवी ध. प. श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ. सुलोचना देवी ध. प. श्री सुरेशचंद्र जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ. सुषमा देवी ध. प. श्री प्रमोद कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ. राजमती देवी ध.. प. श्री उग्रसेन जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/- सौ. निशादेवी ध. प. श्री प्रदीप कुमार जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/- सौ. विमला देवी ध. प. श्री चंद्रसेन जी जैन बड़ामुहल्ला फिरोजाबाद
११११/- सौ. सरोज देवी ध. प. श्री कोमल चंद्र जैन बामौरा वाले भोपाल
११११/- श्री पूनम चंद्र जी वरदीचंद्र जी पाटनी पारमार्थिक ट्रस्ट रतलाम
११११/- सौ. विमला देवी ध. प. स्व. श्री सोहन लाल जी अग्रवाल रतलाम
११११/- श्री गोपी जी लखमी चंद्र जी अजमेरा रतलाम
११११/- स्व. कंचन बाई जुहारमल जी एवं स्व. अनिल पाटौदी की स्मृति
में दिगंबर जैन सोशल ग्रुप रतलाम
११११/- सौ. तारादेवी ध.प. श्री महेन्द्र कुमार मोठिया, रतलाम
११११/- सौ. स्नेहलता ध. प. डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी जैन रतलाम
११११/- श्रीमती सूरज बाई ध. प. स्व. मन्नालाल जी रावका जैन रतलाम

१११११/- श्रीमती विमला देवी ध. प. कैलाश चंद्र जी पाटौदी रतलाम
११००१/- श्री सरजू बाई मातेश्वरी श्री सुरेश चंद्र जी जैन, भोपाल
११००१/- स्व. श्री लक्ष्मीबाई ध.प. श्री मिट्ठूलाल जी नरपत्या भोपाल
११००१/- श्रीमती संतोष जैन ध. प. स्व. श्री रतन कुमार जी जैन , जैन को. हमीदिया रोड भोपाल
११००१/- श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल अहमदाबाद (चौंसठ ऋद्धि विधान पर)
११००१/- स्व. फूलाबाई एवं स्व. श्रीपालजी (माता-पिता) की स्मृति में, राजमल बागमल पवैया, भोपाल
११००१/- श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
५००१/- श्री हीराभाई शाह प्रदीप सेल्स कारपोरेशन मंबुई
११००१/- श्री ए. आनंद कुमार जी समयसार सदन मैसूर
११००१/- श्री रेशम बाई ध. प. स्व. श्री लाभमल जी भोपाल
११००१/- सौ. मिनी देवी ध प. श्री शान्ति कुमार जी विनोद भोपाल
११००१/- सौ. चंद्र प्रभा देवी ध. प. श्री डॉ. कपूर चंद जी कौशल भोपाल
११००१/- श्री स्व. कमला देवी ध. प. श्री पदम कुमार जी जैन करनाल
११००१/- श्री नथमल जी लूणियां नवरंग पटना
११००१/- श्री सौ. सुधा बेन ध. प. श्री शशिकान्त वकील मुबंई
११००१/- श्री गोसर भाई हीर जी भाई एकवोकेट हाई कोर्ट मुबंई
११००१/- सौ. नीलाबेन ध. प. श्री विक्रम भाई कामदार मूबंई
११००१/- श्री उल्लास भाई जोवलिया मुबंई
५००१/- श्री सौ. मंजुला बेन कबीनभाई पारिख मुबंई
११००५/- श्री अनंत भाई अमोलख भाई मूबंई
११००१/- श्री सौ. मधुकान्ता बेन रमेश भाई मेहता मूबंई
५००१/- श्री पूज्य कांन जी स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली
५००१/- श्री दिगबंर जैन मुमुक्षु समाज अशोक नगर
११००१/- श्री रत्नीबाई ध. प. श्री बाबूलाल जी अशोक नगर
११००१/- श्री सौ. सरोज देवी ध. प. श्री डॉ. बाबूलाल जी अशोक नगर
११००१/- श्री धीरज लाल जी मलूकचंद जी कामदार मुबंई
११००१/- श्री बा. ब्र. सुकुमाल जी झांझरी उज्जैन
३००१/- श्री जैन युवा फेडरेशन द्वारा श्री प्रदीप झांझरी उज्जैन
११००१/- सौ. गीता गोइनका ध. प.. श्री सांवल प्रसाद जी गोइनका भोपाल
११००१/- सौ. स्नेह लता गोइनका ध. प. श्री अरविन्द गोइनका भोपाल

११०१/-	सौ. राजकुमारी तिवारी ध. प. श्री देवी शरण जी तिवारी भोपाल
११०१/-	सौ. रेशम बाई ध. प. श्री सौभाग्यमल जी स्व. सेनानी भोपाल
५००१/-	स्व. श्री गजरादेवी की स्मृति में श्री फूलचंद जी चौधरी न्यू मुबंई
११०१/-	श्री ओखी बाई ध. प. श्री स्व. जसराज जी बागरेचा बेंगलोर
११०१/-	श्री सौ. ललिता बाई ध. प. श्री अशोक कुमार जी बागरेचा बेंगलोर
११०१/-	श्री शान्ति लाल जी भायाणी मद्रास चेन्नई
५००१/-	स्वस्ति श्री भट्टारक चारु कीर्त्ति स्वामी जी जैनमठ श्री क्षेत्र श्रवण बेलगोला (सममयसार विधान के उपलक्ष्य में)
११०१/-	श्री अनिल जी सेठी सुपुत्र श्री पूनम चंद जी सेठी बेंगलोर
११०१/-	श्री सुभाष जी सेठी सुपुत्र पूनम चंद जी सेठी कलकत्ता
११०१/-	श्री सुशील जी सेठी सुपुत्र श्री पूनम चंद जी सेठी नई दिल्ली
११०१/-	कुमारी समता सुपुत्री आशा देवी जैन गोराकुन्ड इन्दौर
११०१/-	दि. जैन शिक्षण सममिति मल्हारगंज इन्दौर
११०१/-	ब्र. हीराबेन दि. जैन महिला श्राविका श्रम कंचन बाग इन्दौर
११०१/-	श्री किशोरी बाई अध्यापिका महू
११०१/-	सौ. कुसुमलता ध. प. श्री कैलाश चंद पांडया इन्दौर
११०१/-	श्री केशर बाई ध. प. स्व. श्री चौथमल जी पांडया इन्दौर
११०१/-	श्री जयंती भाई दोशी, दादर मुबंई
११०१/-	श्री दिगंबर जैन मंदिर समिति पिपलानी भोपाल
११०१/-	श्री गीतादेवी C/o श्री राकेश कुमार जैन दिल्ली
११०१/-	श्री कुसुम लता ध. प. डॉ. बी. सी. जैन देहरादून
११०१/-	चि. शंशाक एवं लोकान्त सुपौत्र श्री हेमचंद्र जी जैन देहरादून
११०१/-	चि. कुमारी सुरभि सुपौत्री श्री हेमचंद्र जी जैन देहरादून
११०१/-	श्री सौ. स्नेहलता ध. प. श्री चौधरी शान्ति लाल जी भीलबाड़ा
२१०१/-	श्री सौ. शशि प्रभा ध. प. श्री प्रकाश चंद जी लुहाड़िया इन्दौर
११०१/-	सौ. केशरबाई ध. प. श्री नेमीचंद जी आमल्या वाले गुना
११०१/-	स्व. श्री पुष्पा देवी ध. प. श्री केवल चंद जी कुंभराज वाले उज्जैन
११०१/-	सौ. मंजुला बेन ध. प. श्री जयंती लाल जी शाह मुनाई वाले मुंबई
५००१/-	श्री महावीर दि. जैन ट्रस्ट चिमन गंज उज्जैन द्वारा ब्र. श्री सुकुमार जी झांझरी
११०१/-	सौ. मनोरमा देवी ध. प. श्री नेमी चंद जी पहाड़िया पीसागंज (अजमेर)
२००१/-	श्रीमती सेठानी पुष्पा बाई ध. प. स्व. कृषि पंडित श्रीमंत सेठ ऋषभ कुमार जी खुरई
११०१/-	सौ. मीनादेवी ध. प. श्री संतोष कुमार जी जैन एडवोकेट भोपाल

संपादकीय

यथार्थ में धर्म का स्वरूप कहा नहीं जा सकता। वह मन इन्द्रिय तथा वचन गोचर नहीं है। चाहे बारह भावना हों या समयसार चाहे प्रवचनसार हो या नियमसार वस्तुतत्त्व तो निर्वचनीय निर्विकल्प सहज स्व-संवेद्य है। जिनेन्द्र भगवान की वाणी तो हमारे लिए प्रमाण स्वरूप है। लेकिन वह प्रमाण कब कही जा सकती है जब वह ज्यों की त्यों हमारे अनुभव में अनुभूयमान हो। उसके पहले तो वह निर्णय कोटि में ही रहती है। उससे इतना ही निश्चय होता है कि अन्य मतों से जिनमत प्रमाण की कसौटी के आधार पर श्रेष्ठ समझ में आता है समीचीनता का निश्चय होता है। ऐसी जिनवाणी को निरन्तर धारावाहिक रूप से कविवर पवैया जी विधानों के माध्यम से नये नये भावों से भाव सुमन समर्पित करते हुए इस वृद्धावस्था में अहर्निश आराधना में लीन रहते हैं यह सचमुच अपने आप में एक आश्चर्य है।

प्रथम शताब्दी के लगभग हुए स्वामी कुमार कार्तिकेय के लिए अनुप्रेक्षा की रचना कोई नवीन विधा नहीं थी। क्योंकि उनसे पूर्व आचार्य कुन्द कुन्द वारसाणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा) की रचना कर चुके थे। उनकी उस रचना क ही विस्तार सरल भाषा में कार्तिकेयानुप्रेक्षा में और उसके आधार पर प्रस्तुत विधान में किया गया है. अपने भावों को अपने में लगाने के लिए तथा निज शुद्धात्मा का बारम्बार चिन्तन करने के लिए बारह भावनाओं का वर्णन किय जाता है। वास्तव में चिन्तन तो निज शुद्धात्मा का ज्ञायक प्रभु का करना होत है इसलिये बारह भावनाएं चिन्तन प्रधान हैं और भावना प्रधान भी। आचार्य कुन्द कुन्द देव ने आत्मा को संवर तप स्वरूप ही कहा है। उन्होंने गा. सं ६४ में सिद्धान्त की एक विशेष बात कही है कि जीव के शुद्धोपयोग के द्वार ही धर्मध्यान और शुक्लध्यान होते हैं इसलिये संवर ध्यान का कारण है ऐस चिन्तन करना चाहिए। इसे ही पं. बनारसीदास जी ने इन शब्दों में कहा है

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

नूतन तीर्थधाम कहान नगर देवलाली के स्वप्न दृष्टा श्री मुकुन्द भाई खारा एवं
उनकी धर्मपत्नी सौ. वसुमती बेन मुंबई
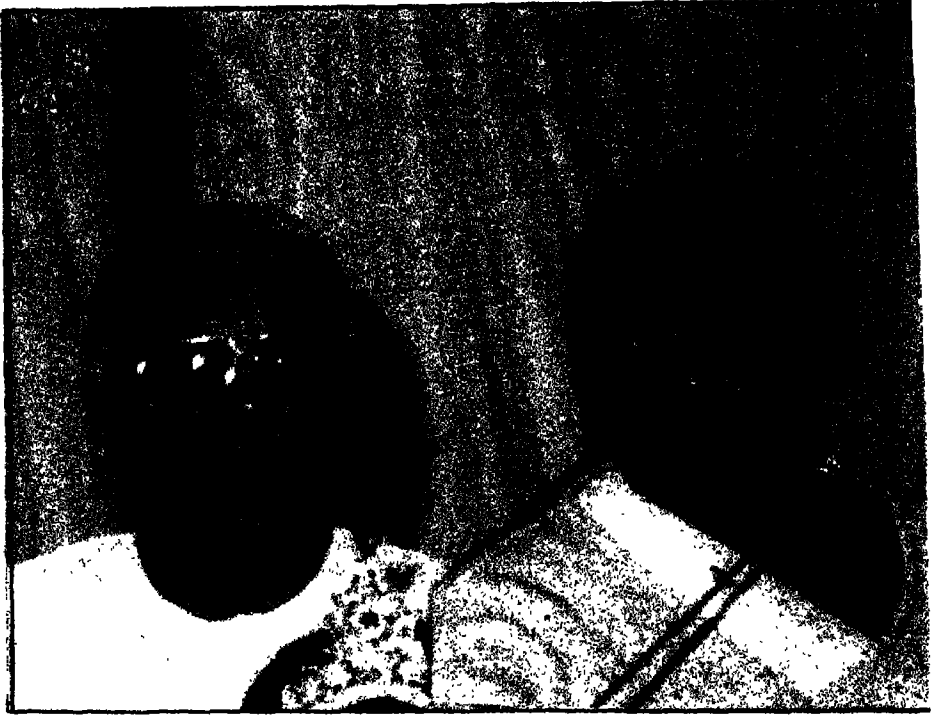
सिद्ध क्षेत्र गजपंथ की छाया में
महावीर जिनालय, शान्तिनाथ परमागम मंदिर, स्वाध्याय भवन, समवशरण, सरस्वती भवन, अतिथि गृह, चिकित्सालय, मान स्तंभ आदि अनेक संस्थाओं के समाज के सहयोग से निर्माण कर्त्ता ।

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

श्री आदिनाथ भरत बाहुबली सहित

श्री महावीर जिनालय शान्तिनाथ परमागम मंदिरकहान नगर देवलाली

शुद्धातत्म अनुभव जहां शुभाचार तहां नाहिं ।
करम करम मारग विषें सिव मारग सिव मांहि ॥

इसी अभिप्राय को ध्यान में रख कर कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा गया

जो पुण विसयविरत्ती अप्पाणं सव्वदा वि संवरइ ।
मणहरविसएहिंतो तस्सफुडं संवरो होदि ॥१०१॥

अर्थात् जो पुरुष इन्द्रियों के विषयो से विरक्त होकर मन को प्रिय लगने वाले विषयों से चित्त को हटा कर आत्मस्वभाव मे लगाता है उसके सर्वदा प्रकट रूप से होता है. इसका भावग्राही अनुवाद पवैया जी ने इन शब्दों में किया है।

जो मुनि इन्द्रिय विषयों से होकर विरक्त आत्मा ध्याता ।
सदा काल संवर स्वरूप हो संवर उर में प्रगटाता ॥

इस अनुप्रेक्षा प्रधान ग्रन्थ में ही धर्मानुप्रेक्षा के अन्तगर्त यह कहा गया है कि सम्यक्त्व सभी रत्नों में महान रत्न है सभी योगों में उत्तम योग है और सभी ऋद्धियों में महान व ऋद्धि एवं सभी प्रकार की सिद्धि करने वाला है।

यही नहीं धर्म करने वाले को सर्वप्रथम सर्वज्ञ का निर्णय करना चाहिए क्योंकि सर्वज्ञदेव धर्म के मूल हैं। जो सर्वज्ञ को नहीं मानता है वह धर्म को भी नहीं मानता है. इसी प्रकार से गा. २७९ में कहा गया है कि विश्व में विरले पुरुष तत्व को सुनते है सुनकर भी यथार्थ रूप से विरले ही जानते हैं। और जान कर भी विरले ही तत्त्व भावना भाते है और अभ्यास करने पर भी विरले ही तत्त्व धारण करते है। कविवर पवैया जी के शब्दों में

विरले आत्म तत्त्व को सुनते विरले करते ज्ञान यथार्थ ।
विरले तत्त्व भावना भाते विरले पाते हैं तत्त्वार्थ ॥

इसी प्रकार

भावना राग की होती है तो दुख होता है ।
भावना ज्ञान की होती है तो सुख है ॥
कोई दुख देता नहीं कोई सुख न देता है ।
जैसी हो भावना वैसा ही सदा होता है ॥

अनादि काल से इस जीव को मिथ्यात्व (मिथ्या मान्यता) के कारण ही अपने आप का तथा तत्त्वों का श्रद्धान नहीं हुआ इसलिए भटकता हुआ दुखी हो रहा है। इसका एक मात्र उपाय तत्त्वार्थ का यथार्थ स्वरूप सुनना जानना, भावना भाना और धारण करना है। तत्त्व ज्ञान से ही मोह का अभाव होता है। इस महत्वपूर्ण विषय को लेकर श्री पवैया जी ने इस सुन्दर विधान की रचना की है। अतएव वधाई के सुपात्र है।

आशा है कवि के अन्य विधानों की भांति यह पूजा विधान भी समाज में लोकप्रिय होगा ।

शुभंभूयात्

२१/३/१९९७
२४३ शिक्षक कालोनी
नीमच म. प्र.

डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच

विनम्र निवेदन

मुझे कुछ नहीं कहना है अकर्त्तृत्व भावना से यह विधान प्रस्तुत है। पढ़े और स्वाध्याय का आनंद लें। अपने सभी संरक्षकों और सहयोगियों का कृतज्ञ हूँ । संपादन के लिए श्री डॉ. देवेन्द्र कुमार जी एवं प्राक्कथन के लिए पं. ज्ञान चंद जी का कृतज्ञ हूं । सुन्दर कंपोजिंग एवं मुद्रण कर्त्ताओं का अभारी हूँ ।

इत्यलम् !

महावीर जयंती
वीर सं. २५२३

राजमल पवैया

प्राक्कथन

आद्य तीर्थंकर आदिनाथ प्रभु द्वारा प्रवाहित निर्मल सम्यक् ज्ञानधारा आज भी अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हो रही है। इसी बीच अनेकों तीर्थंकर, गणधर, श्रुत केवली, समर्थ वीतरागी, संत और ज्ञानी विद्वान जन हुए जिन्होंने स्वयं ही सम्यक् ज्ञानमयी रत्नत्रय का मार्ग अपनाया साथ में जगत को भी कल्याणकारी मोक्षमार्ग का उपदेश दिया।

जगत में सर्वोत्कृष्ट वीतरागी जिनेन्द्र प्रभु के गुणानुवाद अर्चन वंदन स्तुति पूजन और विधान के क्षेत्र में कविवर पं. राजमल जी पवैया भोपाल की लेखनी अविरल रूप से चलती ही जा रही है। और यह भी बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उनके द्वारा रचित आगम सम्मत अध्यात्म गर्भित सभी रचनायें सम्पूर्ण समाज बड़े उत्साह एवं रुचि पूर्वक पढ़ रहा है।

पवैया जी द्वारा रचित कुन्दकुन्दाचार्य के पंच परमागमों के ऊपर एवं अन्य विधान लिखने के पश्चात एक ओर विधान स्वामी कार्तिकेय द्वारा विरचित ' श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रन्थ पर सुन्दर रचना हुई है जिससे निश्चित ही सम्पूर्ण जैन समाज लाभान्वित होगी। स्वामी कार्तिकेय द्वारा रचित कार्तिकेयानुप्रेक्षा में मंगलाचरण एवं बारह अनुप्रेक्षाओं के नाम बतलाकर प्रत्येक भावना का कथन एवं विस्तार में वर्णन तथा तप ध्यान आदि का ४८७ गाथाओं में प्रत्येक गाथा अर्थ काव्यमय छन्द बीजाक्षर , ॐ ह्रीं आदि के माध्यम से सांगोपांग वर्णन इतने सुन्दर ढंग से किया है कि जिसने यह ग्रन्थ भी नहीं पढ़ा प्राकृत की गाथाएँ एवं पं. जयचन्द्र जी छावड़ा कृत ढुढांरी भाषा में टीका भी नहीं पढ़ीं वह भी बड़ी आसानी से इस ग्रन्थ के विषय को पूर्णतया स्पष्ट समझ लेता है।

इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक अनुप्रेक्षा का वर्णन इतने सुंदर ढंग से किया है कि धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाते हुए संसार शरीर भोगों का स्वरूप एवं उनकी असारता दिखाकर शुद्धात्म रुचि कराने की ही मुख्यता से प्रेरणा दी है प्रत्येक विषय का खास करके लोक का स्वरूप एवं धर्म का स्वरूप क्रमशः लोक भावना एवं धर्म भावना में बहुत ही विस्तृत रूप से करते हुए निजात्म रुचि कराई है अतः यह ग्रन्थ एवं इस पर लिखा गया यह विधान जन जन के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं पठनीय चिन्तनीय बन गया है।

आशा है सभी जन इसके लाभ से लाभान्वित होकर और देव गुरु धर्म की भक्ति के साथ आराधना पूर्वक अतीन्द्रिय आनंदमयी सुख को प्राप्त करेगें।

इसी पवित्र भावना के साथ !

३१/३/१९९७

पं. ज्ञानचन्द जैन
ज्ञानानन्द निवास, किला अंदर विदिशा (म. प्र.)

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा
बीजाक्षर एवं ध्यानसूत्र

लेखिका क्षुल्लिका द्वय श्री सुशीलमति जी एवं सुव्रता जी महाराष्ट्र

कुमार स्वामी विरचित कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में बारह अनुप्रेक्षा/ भावना का स्वरूप वर्णन करने वाले बारह अधिकार हैं। अनुप्रेक्षा= अनु+प्र+ईश=बारबार+प्रकर्ष रूप से+निजस्वामि को देखना/अनुभवना। **निश्चयनय** से प्रमाणात्मक मतिश्रुतज्ञान के साधन से विषयरूप निजज्ञानानंद स्वभाव को जानकर अतींद्रिय आनंद को प्राप्त होना **अनुप्रेक्षा** है और विकल्प की भूमिका में संसार अनित्य, अशरण, दु:खमय है ऐसा बारम्बार भावना भाना **व्यवहारनय से अनुप्रेक्षा** कही जाती है। बारंबार चिंतन करने से पुनरुक्त दोष भी नहीं आता है। क्योंकि **भावनाग्रंथे पुनरुक्त दोषो नास्ति।** ऐसा न्यायवचन है अनित्यानुप्रेक्षा में संसार नित्य नहीं है ऐसा नास्ति कथन ही कहना प्रयोजनभूत न होकर ध्रुव नित्य स्वभाव को जानो यह अस्ति कथन उसमें तात्पर्य रूप से गर्भित है। वैसे ही अशरणानुप्रेक्षा में संसार कोई शरणभूत नहीं है तो केवल स्वध्रुव ज्ञानानंद स्वभाव ही शरणभूत कहा है। चार गति के दु:ख का वर्णन करने वाली संसारानुप्रेक्षा ज्ञानानंद स्वभाव को जानने से ही अतींद्रिय आनंद की कला बताती है।जीव तीनों काल में अकेला ही है यह आस्ति Posttive कथन बताने वाली एकत्व भावना है। जीव में पर द्रव्य है ही नहीं ऐसा नास्ति Negative कथन बताने वाली अन्यत्वानुप्रेक्षा है। ध्रुव स्वभाव परम पावन मंगलशुचि है, और शरीरादि अपवित्र है, यह अशुचित्वानुप्रेक्षा है। संयोगज विकारी भाव आस्रव रूप हैं, मलिन, अपवित्र, दु:खरूप है. इन शुभाशुभ भावों से ही संसार दु:ख भोग रहे हैं। शुद्धोपयोग ही मोक्षमार्ग मोक्ष के लिये कारण है। निरास्रव ध्रुव स्वभाव को जानने से ही शुद्धोपयोग प्रकटता है, ऐसा तात्पर्य बतानेवाली आस्रवानुप्रेक्षा है। संवरानुप्रेक्षा में कहाहै कि निज ध्रुवनाथ को जानना ही सम्यक् संवर को प्राप्त करना है यह **निश्चयसंवर** है। इस शुद्धोपयोग से

शुभाशुभ भाव अपने आप रुक जाते है, यह भाव संवर है और द्रव्य कर्मो का आना रुक जाता है, यह **द्रव्यसंवर** है। शुद्धात्मानुभूति से पूर्व विकारी भावों के संस्कार निकल जाते है, यह भाव निर्जरा है और आंशिक रूप से द्रव्यकर्म निकल जाते हैं, यह द्रव्य निर्जरा है ऐसा कथन निर्जरानुप्रेक्षा में कहा है। निज चैतन्य लोक जानना ही निश्चयलोक भावना है और त्रैलोक्य का विचार करना व्यवहारलोक भावना है। इसका वर्णन लोकानुप्रेक्षा में किया है। जो जीव -भोग - बंध कथा में रुचि लेता है उसे बोधि याने आत्म ज्ञान/अतीन्द्रिय आनंद/ सम्यक् दर्शन दुर्लभ है ऐसा कहा है। लेकिन जिसे स्वभाव को जानने की रुचि जग गयी है उसे बोधि सुलभ है, ऐसा अस्ति नास्ति से वर्णन करने वाली बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है। वत्थुसहावो धम्मो - वस्तु का स्वभाव ही धर्म । निजज्ञानानंद स्वभाव को जानने से ही धर्म की शुरुआत होती है। कल्पवृक्ष को याचना करने पर इच्छित वस्तु प्राप्त होती है, लेकिन धर्मतरु/कल्पवृक्ष/ विचारवृक्ष को याचना की भी आवश्यकता नहीं है. जैसा चिंतन वैसी पर्याय इस न्याय से शुभाशुभ भाव करने से शुभाशुभ पर्याय (संसार/दु:ख) प्रकटता है। शुद्धभाव/शुद्धोपयोग से सम्यक् दर्शन/अतीन्द्रिय आनंद/सच्चा अवतार धर्म का पर्याय में होता है।

हरेक गाथा पर बीजाक्षर और ध्यानसूत्र दिये है। उसके माध्यम से अखंड निज चिदानंद कारण परमात्मा की प्रतीति करना है।

विधान=वि+धान=विशेषरूप से+अपना ज्ञानोपयोग स्वभाव में धारण करना, लगाना ही निश्चयनय से विधान है। विकल्प की भूमिका में सहज ही पूजारूप से अर्घ्य चढ़ाना आदि हो ही जाता है।

इत्यलम्

बारह भावना

अनित्य भावना-

सम्राट राजराजेश्वर नृप, देवेन्द्र नरेन्द्र बली अविजित ।
कोई न अमर होकर आया है, मृत्यु समय सबका निश्चित॥
तन यौवन धन वैभव परिजन, संयोगों का है क्षणिक नृत्य ।
चिंतन अनित्य भावना श्रेष्ठ, है आत्म द्रव्य ही एक नित्य ॥१॥

अशरण भावना-

सुत मात पिता भ्राता भगिनी, बांधव बेबस हो जाते हैं ।
चक्री देवादिक मंत्र तंत्र, मरने से रोक न पाते हैं ॥
अशरण है कोई शरण नहीं, है आत्म ज्ञान ही एक शरण ।
निज शरण प्राप्त करले चेतन, निश्चित होगा भवकष्टहरण॥२॥

संसार भावना-

यह जीव जगत में जन्म मरण, अरु जरा रोग से हुआ दुखी।
पर द्रव्यों की लिप्सा में लय, जग में देखा कोई न सुखी ॥
सुर नर तिर्यंच नारकी, सब जड़ कर्मों के आधीन हुए ।
जिसने स्वभाव को पहचाना, संसार त्याग स्वाधीन हुए ॥३॥

एकत्व भावना-

यह जीव अकेला आता है, यह जीव अकेला ही जाता ।
शुभ अशुभ कर्म का फल भी तो, यह जीव अकेला ही पाता॥
पर में कर्तृत्वबुद्धि मानी, इसलिए दुखी होता आया ।
पर से विभक्त निज शुद्ध रूप, एकत्व भाव अब उर भाया॥४॥

अन्यत्व भावना-

अपना तन अपना नहीं, अरे तो कोई क्या होगा अपना ।
सुत पत्नी वैभव राज्य आदि, अपनेपन का झूठा सपना ॥
पर द्रव्य नहीं कोई अपना, अपनत्व मोह मैंने त्यागा ।
मैं चिदानंद चैतन्य रूप, अन्यत्व भाव चिन्तन जागा ॥५॥

अशुचि भावना-

मल मूत्र मांस मज्जा लोहू से, देह अपावन भरी हुई ।
ढांचा है घृणित हड्डियों का, ऊपर से चमड़ी चढ़ी हुई ॥
दिन रात गलित मल बहता है, नव द्वारों से आती है घिन।
शुचिमय पवित्र मैं चेतन हूँ, है अशुचि भावना का चिन्तन ॥६॥

आश्रव भावना-

शुभ अशुभ भाव के द्वारा ही,कर्मों का आश्रव है होता ।
वसु कर्म बन्ध होते रहते, संसारी जीव दुखी होता ॥
आश्रव दुख का निर्माता है, परिवर्तन पंच कराता है ।
निज का जो अवलंबन लेता, आश्रव को सहज हराता है ॥७॥

संवर भावना-

आश्रव का रूकना संवर है, शुभ अशुभ भाव का नाशक है।
शुद्धोपयोग है धर्मध्यान संवर, निज ज्योति प्रकाशक है ॥
जग के विकल्प से रहितसदा, अविकल्प आत्मा शुद्ध विमल।
निश्चय से शुद्धस्वभावी है गुण ज्ञान अनंत सहित अविकल ॥८॥

निर्जरा भावना-

सविपाक अकाम निर्जरा तो, चारों गतियों में होती है ।
अविपाक सकाम निर्जरा ही, कर्मों के मल को धोती है ॥
मैं ज्ञान ज्योति प्रज्ज्वलित करूं, निर्जरा करूं तप के द्वारा।
निश्चय रत्नत्रय धारण से, निज सूर्य प्रकट हो उजियारा ॥९॥

लोक भावना-

जीवादिक छह द्रव्यों से, परिपूर्ण अनादि अनन्त लोक ।
पुद्गल अरु जीव अधर्म धर्म, आकाश काल मय सर्व लोक॥
इस लोक बीच चारों गति में, मैं तो अनादि से भटक रहा।
शुभ अशुभ के कारण ही, बिन ज्ञान लोक में अटक रहा ॥१०॥

बोधिदुर्लभ भावना-

अहमिन्द्र देवपद प्राप्ति, सरल पांचों इन्द्रिय के भोग सुलभ।
मिथ्यात्व मोह के कारण ही है, सम्यक् ज्ञान महा दुर्लभ ॥
निजपर विवेक जागृत हो तो निजको निज पर को पर मानूं।
हो सम्यक्ज्ञान सहजमुझको, निजआत्मतत्त्व ही को जानूं ॥११॥

धर्म भावना-

सद्दर्शन ज्ञान चरित्ररूप, रत्नत्रय धर्म महा सुखकर ।
उत्तम क्षमादिदश धर्मश्रेष्ठ, निज आत्मधर्म ही भवदुखहर ॥
मैं धर्म भावना चिंतन कर, भव रज को दूर हटाऊंगा ।
शाश्वत अविनाशी सिद्ध स्वपद, निजमें निज से प्रगटाऊंगा॥१२॥
द्वादश भावना चिंतवन से, वैराग्य भाव उर में आता ।
जो निज पर रूप जान लेता, वह स्वयं सिद्धवत हो जाता॥
निर्वाण प्राप्त हो जाता है, जग के बन्धन कट जाते हैं ।
निज अनादि अनंत समाधि प्राप्त, होते भवदुख मिट जाते हैं ॥

विनय पाठ

विनय पूर्वक श्री जिनेन्द्र के दर्शन से होता कल्याण ।
जिन प्रक्षाल पूर्वक पूजन करके करूं स्वयं का ध्यान ॥
काल अनादि बिता निगोद में त्रस पर्याय मिली स्वामी।
पशु गति भ्रमा स्वर्गगति पायी नर पर्याय मिली नामी ॥
रहा मोह मिथ्यात्व संग में दुर्लभ बोधि नहीं पायी ।
चार लब्धियाँ मिली पांचवीं लब्धि नहीं हे प्रभु आयी ॥
महा भाग्य से तुव चरणों की शरण प्राप्त कर धन्य हुआ।
तत्त्व ज्ञान की महिमा पायी तो आनंद अनन्य हुआ ॥
अब न कहीं जाऊंगा हे प्रभु आत्म बोधि मैंने पायी ।
भेद ज्ञान का अवसर पाया निज निधि ही अब दरशायी॥
सम्यक् दर्शन पाने का पाया उत्तम उपाय पावन ।
जिन दर्शन से निज दर्शन कर निज चिन्मय मन भावन॥
जिन दर्शन का फल पाऊँ मैं परम शान्त वैभव सम्पन्न।
बनूँ निराकुल शिवसुख पाऊं आत्म ध्यान द्वारा उत्पन्न॥
विनय पाठ पढ़ते ही हे प्रभु उर में हुआ परम आनंद ।
लक्ष्य त्रिकाली ध्रुव का पाकर हो जाऊं मैं शिव सुख कंद॥
जयति पंच परमेष्ठी जिनगृह जिनप्रतिमा जिनधर्म महान।
जय जगदम्बे दिव्य ध्वनि जय जय नवदेव महान प्रधान॥
सब सिद्धों को वन्दन करके अरहंतों को करूं प्रणाम ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा हे प्रभु पाऊं निज ध्रुवधाम॥

श्री प्रक्षाल पाठ

छंद-गीतिका

प्रक्षाल श्री जिन बिम्ब का नित हर्ष से सविनय करूँ ।
मूर्तिमान जिनेन्द्र प्रभु को भक्ति से वंदन करूँ ॥
अरहंत परमेष्ठी जिनेश्वर वीतराग स्वरूप हैं ।
सर्वज्ञ तीर्थंकर महा प्रभु परम सिद्ध अनूप हैं ॥
दिव्य ध्वनि दिन रात गूंजे नाथ मेरे हृदय में ।
ज्ञान धारा प्रवाहित हो आत्मा के निलय में ॥
भेद ज्ञान महान दो प्रभु आप से है प्रार्थना ।
मुक्ति का सन्मार्ग पाऊँ मात्र यह है याचना ॥
आत्म धर्म महान मंगलमय सभी को प्राप्त हो ।
विश्व का कल्याण हो प्रभु शान्ति जग में व्याप्त हो ॥
अहिंसा हो आचरण में सत्य हो व्यवहार में ।
सब सुखी आनंद मय हों दुख न हो संसार में ॥

अभिषेक पाठ

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वन्दन करूं।
मन वचन काय, त्रियोग पूर्वक शीष चरणों में धरूं।।१।।
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी की सुछवि उर में धरूं।
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूं।।२।।
उज्ज्वल दिगम्बर वेश दर्शन कर हृदय आनन्द भरूं।
अति विनय पूर्व नमन करके सफल यह नरभव करूं।।३।।
मै शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर करूं।
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभु जी का करूं।।४।।
मैं न्हवन प्रभु का भाव से कर सकल भव पातक हरूं।
प्रभु चरणकमल पखारकर सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरूं।।५।।

जिनेन्द्र स्तुति

छंद-गीतिका

अंत भव का निकट आया आपके दर्शन किये ।
पुष्प सम्यक् ज्ञान के प्रभु आपने मुझको दिये ॥
सदाचारी आचरण हे प्रभु सिखाया आपने ।
धर्म श्रावक तथा मुनि का बताया प्रभु आपने ॥
आपका उपकार स्वामी भूल सकता हूं नहीं ।
मिला सत्पथ अब कुपथ पर कभी जा सकता नहीं ॥
शरण पाकर आपकी मैं तत्त्व निर्णय करूँगा ।
नाथ समकित प्राप्त करके मोह भ्रम तम्र हरूँगा ॥
आज उर अम्बुज सहज जिन रवि किरण पाकर खिला।
जिन बिम्ब दर्शन का सुफल हे नाथ अब मुझको मिला॥

अभिषेक स्तुति

मैंने प्रभु के चरण पखारे ।
जनम, जनम के संचित पातक तत्क्षण ही निरवारे ॥१॥
प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढारे ।
वीतराग अरिहंत देव के गूंजे जय जय कारे ॥२॥
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे ।
पावन तन मन, नयन भये सब दूर भये अंधियारे ॥३॥

करलो जिनवर की पूजन

करलो जिनवर की पूजन, आई पावन घड़ी।
आई पावन घड़ी मन भावन घड़ी॥१॥
दुर्लभ यह मानव तन पाकर, कर लो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धों का सुमिरण, करके बनो महान॥करलो.॥२॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी, मोहनीय अंतराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय॥करलो.॥३॥
धन्य धन्य सिद्धों की महिमा, नाश किया संसार।
निज स्वभाव से शिवपद पाया, अनुपम अगम अपार॥करलो.॥५॥
रत्नत्रय की तरणी चढ़कर चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ हो जाओ भवपार॥करलो.॥६॥

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
अरिहंतों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वंदन।
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन।।१।।
और लोक के सर्वसाधुओं को है विनय सहित वन्दन।
पंच परम परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन।।२।।
ॐ ह्रीं श्री अनादि मूलमंत्रेभ्यो नमः पुष्पांजलि क्षिपामि।
मंगल चार, चार है उत्तम चार शरण में जाऊं मैं।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊं मैं।।३।।
श्री अरिहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्ध प्रभु हैं मंगल।
श्री साधु मुनि मंगल है, है केवलि कथित धर्म मंगल।।४।।
श्री अरिहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में है उत्तम।
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम।।५।।
श्री अरिहंत शरण में जाऊं, सिद्ध शरण में मैं जाऊं।
साधु शरण में जाऊं, केवलि कथित धर्मशरणा पाऊं।।६।।

ॐ ह्रीं नमो अर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि।

अर्घ्य

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिन प्रतिमा सम्मुख सहस्त्रनाम को नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं भगवत् जिन, सहस्त्रनामेभ्यो अर्घ्यं नि. ।

जल गंधाक्षत, पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ धरूँ।
जिन गृह में जिनराज पंच कल्याणक पाँचों नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं जिन पंच कल्याणकेभ्यो अर्घ्यं ।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य करूँ।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन बिम्बों को नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य संबंधी कृत्रिम, अकृत्रिम जिनालय जिन बिम्बेभ्यो अर्घ्यं ।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ करूँ।
जिन गृह में सर्वज्ञ दिव्यध्वनि जिनवाणी को नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भूत श्रुतज्ञानेभ्यो अर्घ्यं ।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फलं अर्घ करूँ।
जिन गृह में पाँचों परमेष्ठी के चरणों में नमन करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु पंच परमेष्ठीभ्यो अर्घ्यं ।

स्वस्ति मंगल

मंगलमय भगवान वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि मंगल जैन धर्म सुखकर॥१॥
मंगलमय श्री ऋषभदेव प्रभु मंगलमय श्री अजित जिनेश।
मंगलमय श्री संभव जिनवर मंगल अभिनंदन परमेश॥२॥
मंगलमय श्री सुमति जिनोत्तम मंगल पद्मनाथ सर्वेश।
मंगलमय सुपार्श्व जिन स्वामी मंगल चन्द्रप्रभु चन्द्रेश॥३॥
मंगलमय श्री पुष्पदंत प्रभु, मंगल शीतलनाथ सुरेश।
मंगलमय श्रेयांसनाथ जिन मंगल वासुपूज्य पूज्येश॥४॥
मंगलमय श्री विमलनाथ विभु, मंगल अनन्तनाथ महेश।
मंगलमय श्री धर्मनाथ जिन मंगल शांतिनाथ चक्रेश॥५॥
मंगल कुन्थुनाथ जिन मंगल मंगल श्री अरनाथ गुणेश।
मंगलमय श्री मल्लिनाथ प्रभु मंगल मुनिसुव्रत सत्येश॥६॥
मंगलमय नमिनाथ जिनेश्वर मंगल नेमिनाथ योगेश।
मंगलमय श्री पार्श्वनाथ प्रभु, मंगल वर्धमान तीर्थेश॥७॥
मंगलमय अरिहंत महाप्रभु, मंगल सर्व सिद्ध लोकेश।
मंगलमय आचार्य श्री जय मंगल उपाध्याय ज्ञानेश॥८॥
मंगलमय श्री सर्वसाधुगण , मंगल जिनवाणी उपदेश।
मंगलमय सीमन्धर आदिक, विद्यमान जिन बीस परेश॥९॥
मंगलमय त्रैलोक्य जिनालय, मंगल जिन प्रतिमा भव्येश।
मंगलमय त्रिकाल चौबीसी, मंगल समवशरण सविशेष॥१०॥
मंगल पंचमेरु जिन मंदिर, मंगल नन्दीश्वर द्वीपेश।
मंगल सोलह कारण दशलक्षण, रत्नत्रय व्रत भव्येश॥११॥
मंगल सहस्त्र कूट चैत्यालय मंगल मानस्तम्भ हमेश।
मंगलमय केवलि श्रुतकेवलि मंगल ऋद्धिधारि विद्येश॥१२॥
मंगलमय पांचों कल्याणक, मंगल जिन शासन उद्देश।
मंगलमय निर्वाण भूमि, मंगलमय अतिशय क्षेत्र विशेष॥१३॥
सर्व सिद्धि मंगल के दाता हरो अमंगल हे विश्वेश।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊं तब तक पूजूं हे ब्रह्मेश॥१४॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

राग रोग से ग्रसित आत्मा गहन चिकित्सा के है योग्य।
जब तक है मिथ्यात्व हृदय में, सुख पाने में पूर्ण अयोग्य॥

ॐ

श्री कार्त्तिकेय स्वामी पूजन

स्थापना

छंद कुन्डलिया

कार्त्तिकेय मुनि राज को बारंबार प्रणाम ।
अनुप्रेक्षा कर चिन्तवन पाऊं निज ध्रुवधाम ॥
पाऊं निज ध्रुवधाम सिद्ध पद प्रगट करूँ मैं ।
मोह राग द्वेषादि भाव सब विघट करूँ मैं ॥
भाव द्रव्य पूजन का भाव जगे उर पुनि पुनि ।
हों निमित्त कल्याण प्राप्ति में कार्त्तिकेय मुनि ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनि अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनि अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनि अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद सखी

शुभ भाव नीर मैं लाऊं। मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं ।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥
ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

मलयागिरि चंदन लाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं ।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥
ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

अक्षत धवलोज्ज्वल लाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊँ ।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥
ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

द्रव्य कर्म नो कर्म भाव कर्मों से रहित स्वरूप सहित।
फिर भी कर्मों से आच्छादित दर्शन ज्ञान समुद्र अमित॥

शुभ पुष्प सुरभि मय लाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

निज रस नैवेद्य सजाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं ।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नेवैद्यं नि. ।

श्रुतज्ञान दीप उर लाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं ।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

शुभ धूप भावमय लाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं ।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

शुभ फल ले थालसजाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

शुभ अर्घ्य अपूर्व बनाऊं । मुनि चरण समक्ष चढ़ाऊं ।
ऋषि कार्त्तिकेय को वन्दन । द्वादश अनुप्रेक्षा धन धन ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्त्तिकेय मुनिभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि. ।

जयमाला

छंद मानव

ऋषि कार्त्तिकेय स्वामी ने पुरुषार्थ किया अति पावन ।
बहु श्रमकर निज पर के हित यह ग्रंथ रचा मन भावन॥
द्वादश अनुप्रेक्षा लिक्खीं जनहति के लिए किया श्रम ।
हैं चार शतक सत्तासी गाथाएँ प्रभु सर्वोत्तम ॥

मोह राग द्वेषादि भाव का नाम कहीं भी शेष नहीं ।
अनुभव रस के कलश आत्म परिणति ने जाए हैं धन धन॥

जब कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का ग्रंथ भाग्य से भाया ।
इस पर विधान लिखने का उत्तम विचार उर भाया ॥
जिन आगम में बहु महिमा है द्वादशानुप्रेक्षा की ।
तीर्थंकर भी पाते हैं छवि द्वादशानुप्रेक्षा की ॥
वैराग्य सुदृढ़ होता है दीक्षा का भाव उमगता ।
जो भी दीक्षार्थी सुनता तत्काल असंयम भगता ॥
यह परिपाटी अनादि से अनवरत चली आई है ।
दीक्षा के पहिले सबने भावना यही भाई है ॥
हम भी तो नित पढ़ते है द्वादश भावना वचन से ।
फिर भी वैराग्य न जगता अपराध जुड़े जड़ तन से ॥
मुनि कार्तिकेय स्वामी की मुद्रा निर्ग्रंथ दिगंबर ।
गूंजती यशोध्वनि से ही अवनी भूतल नीलांबर ॥
पढ़ते ही क्षय होती है भव तन भोगादि वासना ।
इसमें तत्त्वों की चर्चा इसमें वैराग्य भावना ॥
अन्तर्नभ निर्मल होता स्वच्छता हृदय में आती ।
निज परिणति धीरे धीरे अन्तमन में छा जाती ॥
देहादिक जड़ पुदगल से अति भिन्न स्वरूप झलकता ।
निज से अभिन्न आत्मा का सौन्दर्य सशक्त ललकता ॥
निधि भेद ज्ञान पाते ही सम्यक् दर्शन आता है ।
दृढ़ सम्यक् ज्ञान संग में चारित्र सुदृढ़ लाता है ॥
रत्नत्रय की मंजुल छवि अनुभव रस से सजती है ।
तत्त्वार्थ साधना वाली वीणा द्रुम द्रुम बजती है ॥

जो आत्मीय लक्षणों से लक्षित है नित्य निरंजन देव।
देहमध्य रहने वाला जो उसमें इसमें कोई न भेद ॥

आनंद विभोर हृदय हो नचता है निज प्रांगण में ।
जप तप व्रत संयम करते हैं नृत्य ज्ञान आंगन में ॥
भेरी आनंद बजाते शत इन्द्र सुसज्जित होकर ।
पुण्यों का संचय होता अघ भगते लज्जित होकर ॥
है धन्य निज चिन्तन है धन्य धन्य अनुप्रेक्षा ।
निरपेक्ष आत्माएं है पर की है नहीं अपेक्षा ॥
मुनि कार्त्तिकेय चरणों में सविनय करता हूं वन्दन ।
अनुप्रेक्षाएं चिन्तन कर काटूं अविरति के बंधन ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामी कार्तिकेय मुनिभ्यों जयमाला पूर्णार्घ्य नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

कार्त्तिकेय मुनि के वचन दृढ़ करते वैराग्य ।
मुनि निर्ग्रंथ बनूं प्रभो जागे निज सौभाग्य ॥

इत्याशीर्वाद :

भजन

परम अतीन्द्रिय सुख प्रगटाकर सिद्धों ने शिवलोक लिया ।
वीतराग चारित्र पूर्णकर त्रिलोकाग्र निज लोक लिया ॥

पहिले गुणस्थान को क्षयकर चौथा गुणस्थान पाया ।
धीरे धीरे ऊपर चढ़कर चौदहवाँ भी विघटाया ॥

चार कषाय चौकड़ी क्षयकर आप हुए अरहंत महान ।
तीनों योग विनष्ट किए फिर अशरीरी हो गए प्रधान ॥

गुण अनंत से हुए सुसज्जित अष्ट स्वगुण के स्वामी बन ।
शक्ति अनंतानंत प्रगटकर सिद्ध हुए स्वामी धन धन ॥

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

वयोवद्ध विद्वान पं. फूलचंद जी झांझरी, उज्जैन
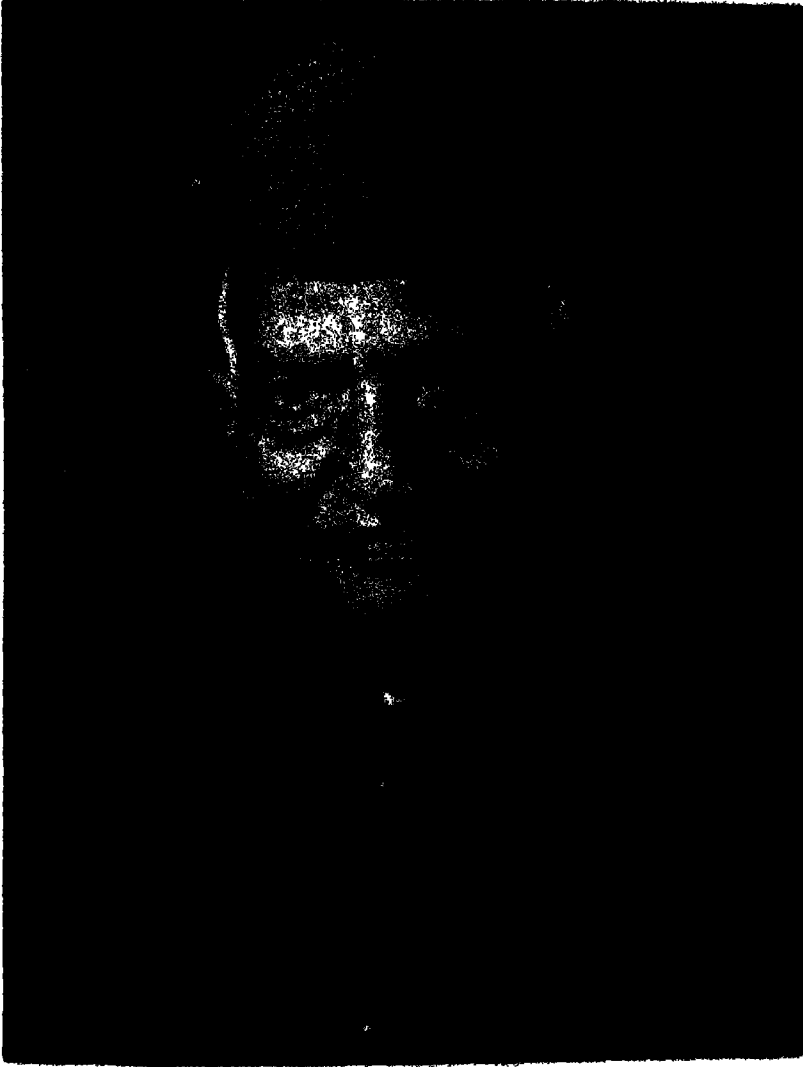
सीमंधर जिनालय क्षीर सागर, महावीर जिनालय मंडी चिमनगंज,
दि. जैन महावीर ट्रस्ट, जैन युवा फेडरेशन के संस्थापक उज्जैन में
श्री नेमिनाथ पंच कल्याणक के सूत्रधार

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

दि. जैन महावीर जिनालय मंडी चिमन गंज उज्जैन
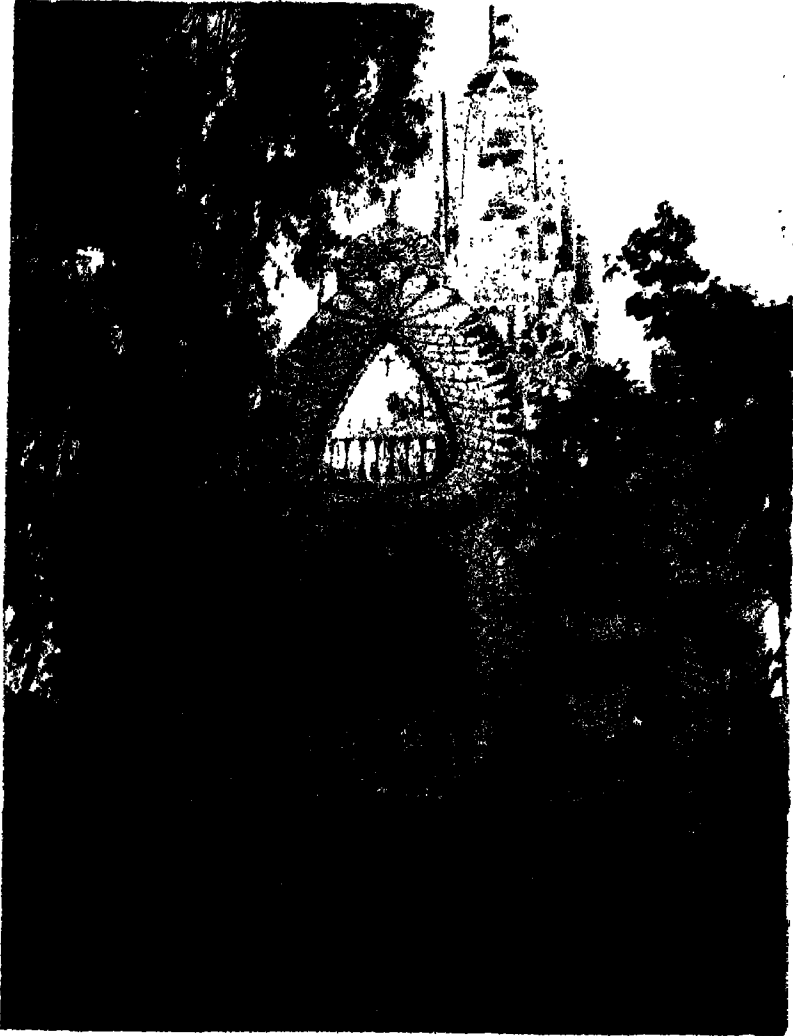
का मनोहारी भव्य जिन मंदिर

जब तक नहीं स्वभाव ज्ञान हो तब तक है निमित्त सब व्यर्थ ।
जब स्वभाव ज्ञान होता है तब होता है वही समर्थ ॥

ॐ

मंगलाचरण

छंद अनुष्टुप

मंगलं सिद्ध परमेष्ठी मंगलं तीर्थंकरं ।
मंगलं शुद्ध चैतन्यं आत्म धर्मोस्तु मंगलं ॥
मंगलं कार्तिकेयानुप्रेक्षा आगम मंगलं ।
मंगलं मुनि कार्तिकेय ज्ञान धारी मंगलं ॥
मंगलं सिद्ध चक्रस्य मंगलं अरहंत प्रभु ।
मंगलं सर्व आचार्य उपाध्याय सु मंगलं ॥
मंगलं सर्व साधुभ्यः पंच परमेष्ठी मंगलं ।
मंगलं चैत्य चैत्यालय वीरवाणी मंगलं ॥
मंगलं जैन धर्मोस्तु नव देव सुमंगलं ।
सर्व मंगल्यमांगल्यं सर्व आगम मंगलं ॥
मंगलं दर्शनं ज्ञानं मंगलं चारित्र जिन ।
मंगलं शुद्ध रत्नत्रय महामोक्ष सुमंगलं ॥

दोहा

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा मंगलमय वरदान ।
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा पर आधार विधान ॥
कार्तिकेय आचार्य को नमन करूं बहुबार ।
रचूं विधान महान यह सबको मंगलकार ॥
भूल चूक जो भी दिखें उनको लेंय सुधार ।
भक्ति भाव से लिख रहा यह विधान सुखकार॥
जिन शासन नव देव सब मुझको दें आशीष ।
सफल कार्य मेरा बने यही भाव उर ईश ॥

वीतरागता ही तो सुख है तथा राग है पूरा दुख ।
राग भाव में कहीं न सुख है निज स्वभाव में ही है सुख॥

मंगलमय पाऊं कृपा जिन आगम की आज ।
यही भावना है प्रभो पाऊं निज पद राज ॥
चिन्तूं द्वादश भावना कार्तिकेय मुनिराज ।
हो वैराग्य सुदृढ़ हृदय जय जय जय जिनराज॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

पीठिका

दोहा

कार्तियेक अनुप्रेक्षा पावन ग्रंथ महान ।
इसका ही आधार ले करता शुद्ध विधान ॥

छंद राधिका (लावनी)

यह दो सहस्र वर्षों पहिले की रचना ।
इसको पढ़कर भोगादि विषय से बचना ॥
इस पर आधारित है विधान मन भावन ।
वैराग्य भाव का निर्मल स्रोत सुपावन ॥
पहिले अनित्य भावना हृदय में भाऊं ।
अशरण है तीनों लोक भावना भाऊं ॥
संसार भावना भाकर शिव पद निरखूं ।
एकत्व भावना भाकर निज को परखूं ॥
अन्यत्व भावना से पर को पर जानूं ।
भावना अशुचिभा शुचिता निज पहचानूं ॥
आस्रव अनुप्रेक्षा बारबार मैं भाऊं ।
संवर अनुप्रेक्षा शुद्ध हृदय में लाऊं ॥
निर्जरा भावना शुद्ध तपोमय भाऊं ।
लोकानुप्रेक्षा चिन्तूं निज में आऊं ॥

अब सम्यक् श्रद्धा का बल ले मैंने प्रभु शिव पथ पाया।
परम ज्ञानघन ध्रुव चैतन्य स्वभावी का दर्शन पाया ॥

हे नाथ बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा पाऊं ।
धर्मानुप्रेक्षा भा उर धर्म जगाऊं ॥
द्वादश अनुप्रेक्षा मैंने भायीं स्वामी ।
महिमामय जिन आगम त्रिभुवन में नामी ॥
अब तो वैराग्य हुआ दृढ़ स्वामी मेरा ।
द्वादश तप करने को आगम ने टेरा ॥
है कार्तिकेय स्वामी को सादर वंदन ।
आत्माश्रित होकर नाशूंगा भव क्रंदन ॥
जय जय सर्वज्ञ देव की पावन वाणी ।
यह द्वादशांग की जननी मां कल्याणी ॥
निज अंतरंग में आज अवतरण हो प्रभु ।
तुव चरणों में ही आज भव हरण हो प्रभु ॥
जब तक न मुक्ति हो तब तक तुम्हीं शरण हो।
तुव कृपा सदा ही सबको सौख्य वरण हो ॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

गीत

आध्यात्मिक जीवन जीने को यदि निज निधि पाई होती ।
समकित के हित भेद ज्ञान की पावन विधि आई होती ॥
तो क्यों चारों गति में भ्रमता क्यों निगोद के दुख पाता ।
क्यों पर परिणति की चालों में फँसकर महाकष्ट पाता ॥
निज परिणति के संग रहता तो अंतरात्मा हो जाता ।
संयम तप की छाया में रह यथाख्यात उर प्रगटाता ॥
यथाख्यात उर प्रगटाता तो मैं अरहंत दशा पाता ।
फिर अघातिया भी विनष्ट कर सिद्ध स्वपद निश्चित पाता ॥

सम्यक् दर्शन प्रगटाया है परम शान्ति का ले उद्देश्य ।
वीतराग निर्ग्रंथ दिगम्बर मुद्रा धारूँ बनूं जिनेश ॥

ॐ ह्रीं द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

दीपक निज वैराग्य भाव का मेरे मन को भाया है ।
स्वपर प्रकाशक ज्ञान प्राप्ति का उत्तम अवसर आया है॥
नर भव पाकर भी दुर्लभ है मनुष्यत्व यह जान लिया ।
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा पढ़कर मनुष्यत्व पहचान लिया ॥

ॐ ह्रीं द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

ध्यान धूप वैराग्य भाव पाने का अवसर आया है ।
अष्टकर्म क्षय करने का उद्यम ही मन को भाया है ॥
नर भव पाकर भी दुर्लभ है मनुष्यत्व यह जान लिया ।
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा पढ़कर मनुष्यत्व पहचान लिया ॥

ॐ ह्रीं द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं नि.।

फल वैराग्य भाव का शिवमय मेरे मन को भाया है ।
महामोक्ष फल पाने का प्रभु पावन अवसर आया है ॥
नर भव पाकर भी दुर्लभ है मनुष्यत्व यह जान लिया ।
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा पढ़कर मनुष्यत्व पहचान लिया ॥

ॐ ह्रीं द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि.।

भाव अर्घ्य वैराग्य भाव का मेरे मन को भाया है ।
पद अनर्घ्य पाने का दुर्लभ अवसर हे प्रभु पाया है ॥
नर भव पाकर भी दुर्लभ है मनुष्यत्व यह जान लिया ।
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा पढ़कर मनुष्यत्व पहचान लिया ॥

ॐ ह्रीं द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

श्रद्धा ज्ञान चरित्र स्वरूपी पद सिद्धत्व परम सुखरूप ।
ज्ञानानंद आनंद स्वरूपी परमोत्तम परमात्म अनूप ॥

अर्घ्यावलि

श्री द्वादश अनुप्रेक्षा

मूल मंगलाचरण

(१)

तिहुवणतिलयं देवं, वंदित्ता तिहुवणिंदपरिपुज्जं ।
वोच्छ अणुपेहाओ, भवियजणाणंदजणणीओ॥१॥

अर्थ- तीन भुवन का तिलक तीन भुवन के इन्द्रों से पूज्य (ऐसे) देव को नमस्कार करके भव्य जीवों को आनंद उत्पन्न करने वाली अनुप्रेक्षायें कहूँगा ।

१. ॐ ह्रीं सद्‌चिद्रूपदेवस्वरूपनिजेन्द्राय नमः ।

चिदानंदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

तीन भुवन के तिलक इन्द्र शत पूज्य जिनेन्द्र देव वंदन।
भव्यों को आनन्दोत्पादक अनुप्रेक्षाएँ करूँ कथन ॥
कार्तिकेय स्वामी श्री जिनवर को सादर करते वन्दन ।
हम भी मन वच काय पूर्वक करते सविनय अभिनंदन॥
द्वादश अनुप्रेक्षा चिन्तन कर उर वैराग्य जगे भगवान ।
भव तन भोग उदास बनूं मैं मुक्ति मार्ग पर करूं प्रयाण॥१॥

ॐ ह्रीं श्री द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२)

अनुप्रेक्षा-सामान्य चिंतवन एक प्रकार है तो भी अनेक प्रकार है, भव्यजीवों को सुनते ही मोक्षमार्ग में उत्साह उत्पन्न हो, ऐसा चिंतवन संक्षेप से बारह प्रकार है, उनके नाम तथा भावना की प्रेरणा दो गाथाओं में कहते हैं -

अद्धुव असरण भणिया, संसारामेगमण्णमसुइत्तं ।
आसव संवरणामा, णिज्जरलोयाणुपेहाओ ॥२॥

सप्त तत्त्व का दृढ़ श्रद्धानी पदश्रावण्य परम परमेश ।
बोधि लाभ ले शक्ति प्राप्त कर मैं बन जाऊं निर्ग्रंथेश ॥

२. ॐ ह्रीं पर्यायस्वरूपानुप्रेक्षारहितनिजध्रुवाय नमः ।

ज्ञायकस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अध्रुव अशरण अरु संसार तथा एकत्व भावना जान ।
अनुप्रेक्षा अन्यत्व अशुचि आश्रव संवर निर्जरा महान ॥
लोक भावना तथा बोधि दुर्लभ अरु धर्म भावना जान।
यही भावना द्वादश पाकर वस्तु स्वरूप सर्व लूं जान ॥
द्वादश अनुप्रेक्षा चिन्तन कर उर वैराग्य जगे भगवान ।
भव तन भोग उदास बनूं मैं मुक्ति मार्ग पर करूं प्रमाण॥२॥

ॐ ह्रीं श्री द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३)

वही कहते हैं-

इय जाणिऊण भावह, दुल्लह-धम्माणुभावणाणिच्चं ।
मन-वयण-कायसुद्धी,एदा दस दोय भणिया हु ॥३॥

अर्थ-ये अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्य, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक अनुप्रेक्षायें बोधि दुर्लभ धर्म भावना यह बारह भावना कही गई हैं। इन्हें जानकर मनवचनकाय शुद्ध कर निरन्तर भावो ।

३. ॐ ह्रीं निजानंतधर्मस्वरूपचित्स्वरूपाय नमः ।

चेतनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मन वच काया शुद्धि पूर्वक अनुप्रेक्षा चिन्तवन करूं ।
वस्तु स्वभाव धर्म जानकर मैं अधर्म के भाव हरूं ॥
द्वादश अनुप्रेक्षा चिन्तन कर उर वैराग्य जगे भगवान ।
भव तन भोग उदास बनूं मैं मुक्ति मार्ग पर करूं प्रमाण॥३॥

ॐ ह्रीं श्री द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

श्रद्धा शून्य न मेरा चेतन मुझमें तो है सम्यक् ज्ञान ।
द्रव्यार्थिक नय का बल लेकर पाऊंगा निज पद निर्वाण॥

महाअर्घ्य

छंद ताटंक

निज वैराग्य सुदृढ़ करने को तीर्थंकर भी भाते है ।
वे वैराग्य भावना चिन्तन कर वैराग्य सजाते हैं ॥
अनेकान्त है धर्म आत्म का पर निज से एकत्व सदा ।
कोई नहीं किसी का जग में पर से है अन्यत्व सदा ॥
इस प्रकार निज चिन्तन करके महाव्रती हो जाते हैं ।
शुद्ध स्वभाव भाव में अपने निश्चय ही खो जाते हैं ॥
जितने भी मुनि मोक्ष गए हैं सबने ही ये भायी हैं ।
सोया निज पुरुषार्थ जगाने मेरे उर में आयी हैं ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं करूं आत्म कल्याण ।
प्रगटाऊं वैराग्य उर पाऊं पद निर्वाण ॥

ॐ ह्रीं द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय महाअर्घ्यं नि. ।

जयमाला

छंद ताटंक

प्रथम अनित्य भावना भाते तीर्थंकर निज अंतर में ।
नाशवान संसार जानकर आते हैं अभ्यंतर में ॥
अशरण अनुप्रेक्षा चिन्तन कर निज की शरण प्राप्त करते ।
धन परिवार राज्य आदि का राग निमिष भर में हरते॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन कर स्वभाव पर देते दृष्टि ।
चारों गति का कष्ट जानते सारा जग है दुख की सृष्टि॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन करते हैं लख वस्तु स्वरूप ।
एकाकी एकत्व भावना भाते हैं निज के अनुरूप ॥

कोई भी व्यवहार नहीं है इस प्राणी को उपकारी ।
असदभूत सद्भूत नहीं व्यवहार कभी भी हितकारी ॥

अनुप्रेक्षा अन्यत्व चिन्तवन कर करते हैं तत्त्व विचार ।
तन धन राज्य आदि वैभव पर पर है सब कुटुम्ब परिवार॥
अशुचि भावना भाते भाते निर्मल शुचिता उर लाते ।
ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल विरहित निज को ही ध्याते॥
आस्रव अनुप्रेक्षा चिन्तन कर निज स्वरूप में तपते हैं ।
सतत निरंतर निज स्वरूप को परम शुद्ध वे जपते हैं ॥
लोक भावना चिन्तन करते करते वस्तु स्वरूप विचार।
निज स्वरूप को भूल दुखी सब जीव यही तो हैं संसार॥
शुद्ध बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा करते बारंबार विचार ।
सब कुछ सुलभ मगर दुर्लभ है शुद्ध ज्ञान धारा की धार॥
धर्म भावना चिन्तन करते मात्र धर्म त्रिभुवन में सार ।
बिना याचना शिव सुख देता शेष सभी कुछ है निस्सार॥
ये ही द्वादश अनुप्रेक्षाएं सतत चिन्तवन करते हैं ।
इनका बल पाकर संसार त्यागते मुनिव्रत धरते हैं ॥
मैं भी द्वादश अनुप्रेक्षा चिन्तनकर तत्त्व विचार करूं ।
तीर्थंकर के पद चिन्हों पर चल कर उर वैराग्य धरूं॥
राग द्वेष मोहादि भाव का तत्क्षण ही परिहार करूं ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा यह दुखमय संसार हरूं ॥

ॐ ह्रीं द्वादश अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद

अनुप्रेक्षा का फल यही हो वैराग्य प्रधान ।
निज पुरुषार्थ स्वशक्ति से पाऊं पद निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद :

ज्ञानामृत आकंठ पान कर हो जाऊं मैं अमृत स्वरूप ।
विषपायी जीवन को तज दूँ सिद्ध स्वपद हो परम अनूप॥

पूजन क्रमांक २

प्रथम अधिकार अध्रुव अनुप्रेक्षा पूजन

(अनित्य भावना)

स्थापना

छंद दोहा

यह संसार अनित्य है नित्य एक निज रूप ।
इसको ही ध्याऊँ सदा पाऊं शुद्ध स्वरूप ॥
जिनगुण संपत्ति प्राप्ति हित जागा निज पुरुषार्थ ।
आत्म भावना पूर्वक पाऊं निज परमार्थ ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र अवतर अवतर संवौषट।
ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र तिष्ट तिष्ट ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छंद रोला

यह संसार अनित्य और मैं नित्य त्रिकाली ।
तीन भुवन में एकमात्र मैं वैभव शाली ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

जड़ चंदन को मैंने स्वामी शीष लगाया ।
शीतल शान्त स्वभाव नहीं प्रभु मुझको भाया ॥

रागादिक भावों के महलों में प्रभु आग लगा दूं आज ।
रागातीत अवस्था पाकर होऊं वीतराग जिनराज ॥

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

अक्षत शालि चढ़ाए मैंने श्री जिनवर को ।
पर अक्षय पद मिल न सका स्वामी पल भर को ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

काम भाव वर्धक ही मैंने पुष्प चढ़ाए ।
महा शील के पुष्प नहीं मैंने प्रभु पाए ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्पं नि. ।

शुद्ध भाव नैवेद्य नहीं मैंने प्रभु पाए ।
तृप्त स्वभावी भाव न मेरे उर में आए ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

जड़ दीपक से घर के अंधियारे को नाशा ।
घोर मोह मिथ्यात्व अंधेरा नहीं विनाशा ॥

ज्ञेय लुब्ध मत होना पगले ज्ञेय लुब्धता दुखदायी ।
ज्ञान लुब्ध ही होना चेतन ज्ञान लुब्धता सुखदायी ॥

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशना दीपं नि. ।

धूप ध्यान की एक बार भी कभी न पायी ।
अतः कर्म क्षय करने की वेला ना आयी ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. ।

महामोक्ष फल पाने का पुरुषार्थ न जाना ।
स्वर्ग फलों में रुचि करके पाए दुख नाना ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

शुभभावों के अर्घ्य चढ़ाए शुभ फल पाया ।
पद अनर्घ्य पाने का अवसर अतः न आया ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का मैं करूं चिन्तवन ।
भाऊं ऐसी अनित्य भावना क्षय हो बंधन ॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

(४)

पहले अध्रुव अनुप्रेक्षा का सामान्य स्वरूप कहते हैं :-

जं किंचिवि उप्पण्णं, तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि, ण य किंचि वि सासयं अत्थि॥४॥

ज्ञेयों के प्रति समभावी बन ज्ञायक का करके सन्मान।
मात्र शुद्ध ज्ञाता दृष्टा रह आत्म द्रव्य का कर ले ज्ञान॥

अर्थ- जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है उसका नियम से नाश होता है परिणामस्वरूप से तो कुछ भी नित्य नहीं है ।

४. ॐ ह्रीं अनित्यपर्यायरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शाश्वतस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश नियम से होता है ।
कोई नित्य नहीं है जग में नित्य मान दुख होता है ॥
यह प्राणी पर्याय बुद्धि है पर्यायों पर ही है दृष्टि ।
व्यय उत्पाद देख पर्यायों का करता है दुख की सृष्टि ॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥४॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५)

आगे इस ही को विशेष रूप से कहते हैं :-

जम्मं मरणेण समं, संपज्जइ जोव्वणं जरासहियं ।
लच्छी विणास सहिया, इय सव्वं भंगुरं मुणह ॥५॥

अर्थ- यह जन्म है सो मरण सहित है यौवन है सो जरा सहित उत्पन्न होता है लक्ष्मी है सो विनाश सहित उत्पन्न होती है इस प्रकार से सब वस्तुओं को क्षणभंगुर जानो।

५. ॐ ह्रीं जन्मादिदोषरहिताजरामरनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यलक्ष्मीस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मरण सहित है जन्म सभी का यौवन जरा सहित जानो।
लक्ष्मी नाश संग ले चलती क्षण भंगुर सबको मानो ॥
इष्ट प्राप्ति में हर्ष शोक होता अनिष्ट के पाने पर ।
ज्ञानी सम भावी रहता है कर्म उदय के आने पर ॥

व्यवहारी मदिरा मत पीना निश्चय रस पीना भरपूर ।
यही तुझे अनुभव रस द्वारा कर देगा निज रस में चूर॥

अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार॥५॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६)

वही कहते हैं :-

अथिरं परियण-सयणं, पुत्त-कलत्तं सुमित्त-लावण्णं ।
गिह-गोहणाइ सव्वं, णव-घण-विंदेण सारिच्छं ॥६॥

अर्थ- परिवार, बन्धुवर्ग पुत्र, स्त्री अच्छे मित्र शरीर की सुन्दरता गृह गोधन इत्यादि समस्त वस्तुएं नवीन मेघ के समूह के समान अस्थिर हैं ।

६. ॐ ह्रीं बन्धुवर्गरहितानादिनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानघनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

बंधु बांधव नारी सुत परिवार मित्र सब अस्थिर है ।
गृह गोधन तन की सुन्दरता आदि न कोई भी थिर हैं॥
नाशवान इन सबको जानो उर में करो न हर्ष विकार ।
अपना ज्ञान स्वभाव नित्य है एकमात्र है यह अविकार ॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥६॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७)

वही कहते हैं :-

सुरधणु-तडि व्व चवला, इंदिय-विसया सुभिच्च-वग्गा य।
दिट्ठ-पणट्ठा सव्वे, तुरय-गया रहवरादी य ॥७॥

अर्थ- इन्द्रियों के विषय अच्छे सेवकों का समूह और घोड़े, हाथी, रथ आदिक ये सब ही इन्द्रधनुष तथा बिजली के समान चंचल हैं दिखाई देकर नष्ट हो जाने वाले हैं ।

तेरा अगुरुलघुत्व सुगुण तेर ही भीतर करता वास ।
षड स्थान हानि वृद्धि भी सब कुछ तो है तेरे पास ॥

७. ॐ ह्रीं चंचलेन्द्रियविषयरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अक्षयस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

इन्द्रिय विषय दास दासी दल रथ गज अश्व आदि क्षय वान।
इन्द्र धनुष ज्यों विद्युत के सम चंचल नाशवान लो जान॥
आत्मोत्पन्न अतीन्द्रिय अविनाशी सुखकाही करो उपाय।
क्षण भंगुर पर दृष्टि न दो प्रभु ध्रुव निजात्म ही शिव सुखदाय॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥७॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(८)

अब बन्धुजनों का संयोग कैसा है सो दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं -

पंथे पहिय-जणाणं, जह संजोओ हवेइ खणमित्तं ।
बंधुजणाणं च तहा, संजोओ अद्धुओ होइ ॥८॥

अर्थ- जैसे मार्ग में पथिक जनों का संयोग क्षणमात्र होता है वैसे ही (संसार में) बंधुजनों का संयोग अस्थिर होता है ।

८. ॐ ह्रीं अध्रुवबन्धुजनसंयोगरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

असंयुक्तस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

बंधु बांधव कुटुम्ब आदि का जितना भी मिलता संयोग।
पथिकों के सम वह संयोग शीघ्र पाता है सदा वियोग ॥
अहं भाव से निज स्वरूप को भूल सदा करता अभिमान।
इनमें ही संतापित रह कर निज हित का करता अवसान॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥८॥

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

सहजात्म स्वरूप सर्वज्ञ देव परम गुरु के उपासक
श्री पूज्य कानजी स्वामी

वर्त्तमान काल में आध्यात्मिक क्रान्ति के जनक
जिन्होंने कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा पर भाव पूर्ण प्रवचन कर उसे प्रसिद्धि प्रदान की

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

अध्यात्म योगी मुनिराज श्री वीर सागर जी महाराज की सुयोग्य शिष्याएं

क्षुल्लिका द्वय श्री सुशीलमति जी एवं श्री सुव्रता जी (महाराष्ट्र)
जिन्होंने इस विधान के बीजाक्षर एवं ध्यानसूत्र रचे अभी तक लगभग
२४ विधानों के सूत्र आप रच चुकी हैं
तदर्थ धन्यवाद

मलिन वस्त्र धोने पर ज्यों निर्मल हो जाता है तत्काल।
तेरी मलिन अवस्था जाती भेद ज्ञान जल से सुविशाल॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९)

अब देहसंयोग को अस्थिर दिखाते हैं -

अइलालिओ वि देहो, ण्हाण-सुयंधेहिं विविह-भक्खेहिं।
खणमित्तेण वि विहडइ, जल-भरिओ आम-घडओ व्व॥९॥

अर्थ- यह देह स्नान तथा सुगन्धित पदार्थों से सजाया हुआ भी (तथा) अनेक प्रकार के भोजनादि भक्ष्य पदार्थों से अत्यन्त लालन पालन किया हुआ भी जल से भरे हुए कच्चे घड़े की तरह क्षणमात्र में ही नष्ट हो जाता है ।

९. ॐ ह्रीं अतिलालितदेहविकल्परहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अविनाशस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

देह बांधव कुटुम्ब आदि का जितना भी मिलता संयोग।
भोजनादि से पालन करता फिर भी क्षय हो जाता योग॥
कच्चे धट सम निमिष मात्र में तन घट फूट होय निर्मूल।
फिर भी सुस्थिर करने की है बुद्धि स्वयं की भारी भूल॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥९॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

अब लक्ष्मी की अस्थिरता दिखाते है

जा सासया ण लच्छी, चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं ।
सा किं बंधेइ रइं, इयर-जणाणं अपुण्णाणं ॥१०॥

अर्थ- जो लक्ष्मी पुण्य के उदय सहित चक्रवर्तियों के भी नित्य नहीं है वह (लक्ष्मी) पुण्यहीन अथवा अल्प पुण्यवाले अन्य लोगों से कैसे प्रेम करे ? अर्थात् नहीं करे।

विविध नयों से परिचय करके अब तो नयातीत हो जा।
हो जा तू पक्षातिक्रान्त अब अरु निश्चयातीत हो जा ॥

१०. ॐ ह्रीं प्रशस्तादाशस्तकर्मोदयप्राप्तधनादिरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः।
शाश्वतज्ञानलक्ष्मीस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पुण्य उदय युत चक्रवर्त्ति की लक्ष्मी भी हो जाती नाश।
पुण्य हीनया अल्प पुण्य वाले संग के क्यों करे निवास॥
त्रैकालिक ध्रुव आत्म लक्ष्मी ज्ञानानंदमयी निज पास ।
उसे भूल कर नश्वर जड़ लक्ष्मी का क्यों करता विश्वास॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥१०॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११)

आगे इसी अर्थ को विशेष रूप से कहते हैं -

कत्थ वि ण रमइ लच्छी, कुलीण-धीरे वि पंडिए सूरे।
पुज्जे धम्मिट्ठे वि य, सुवत्त-सुयणे महासत्ते ॥११॥

अर्थ- यह लक्ष्मी कुलवान्, धैर्यवान्, पंडित, सुभट पूज्य, धर्मात्मा रूपवान्, सुजन, महापराक्रमी इत्यादि किसी भी पुरुष से प्रेम नहीं करती है।

११. ॐ ह्रीं पौद्गलिकधनलक्ष्मीरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
अक्षयशिवलक्ष्मीस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

धैर्यवान कुलवान सुभट पंड़ित धर्मात्मा पूज्य सुजन ।
रूपवान बलवान योद्धा से न प्रेम इसको इक क्षण ॥
ऐसी लक्ष्मी के संग्रह हित जीवन भर करता है पाप ।
फिर भी साथ न देती है यह खोटी गति पाता है आप॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा चिन्तन में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥११॥

निर्विकार परमात्म तत्त्व उपलब्धि सहज ही मिलती है ।
सांसारिक दुख विनष्ट होते कली हृदय की खिलती है॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

अब कहते हैं कि जो लक्ष्मी मिली है उसका क्या करना चाहिये ? सो बतलाते हैं -

ता भुंजिज्जउ लच्छी, दिज्जउ दाणे दया-पहाणेण।
जा जल-तरंग चवला, दो तिण्णि दिणाणि चिट्ठेइ॥१२॥

अर्थ- जो लक्ष्मी पानी की लहर के समान चंचल है दो तीन दिन तक चेष्टा करती है अर्थात् विद्यमान हैं तब तक उसको भोगो दयाप्रधान होकर दान दो।

१२. ॐ ह्रीं चपलभोगविषयरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अचलचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जल तरंग सम चंचल लक्ष्मी पुण्योदय तक रहती है ।
धर्म कर्म में इसे लगा लो जिनवाणी यह कहती है ॥
दयादान दो भोग भोग लो पा कर लो कुछ पर उपकार।
यह तो जाने वाली ही है कृपण मत बनो बनो उदार ॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥१२॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

वही कहते हैं-

जो पुण लच्छिं संचदि, ण य भुञ्जदि णेय देदि पत्तेसु।
सो अप्पाणं वंचदि, मणुयत्तं णिप्फलं तस्स ॥१३॥

अर्थ- जो लक्ष्मी को इकट्ठी करता है न तो भोगता है और न पात्रों के निमित्त दान करता है वह अपनी आतमा को ठगता है उसका मनुष्यपना निष्फल है।

द्रव्य दृष्टि से नित्य सदा पर्याय दृष्टि से अनित्य है ।
युगपत उभय दृष्टि से तो यह सदैव ही अवक्तव्य है ॥

१३. ॐ ह्रीं धनसंचयरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अनंतगुणलक्ष्मीस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

लक्ष्मी संचित कर न भोगता ना पात्रों को देता दान ।
वह अपनी आत्मा को ठगता उसका नर भव व्यर्थ पिछान॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥१३॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

वही कहते हैं-

जो संचिऊण लच्छिं,धरणियले संठवेदि अइदूरे।
सो पुरिसो तं लच्छिं, पाहाण-समाणियं कुणइ ॥१४॥

अर्थ- जो पुरुष लक्ष्मी को संचय करके बहुत नीचे जमीन में गाड़ता है वह पुरुष उस लक्ष्मी को पत्थर के समान करता है ।

१४. ॐ ह्रीं विरागधामस्वरूपनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ब्रह्मानंदस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो धरती में इसे गाड़ते कर देते पाषाण समान ।
उनका पुण्य उदय धूरा सम मर जाते कर पाप महान॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥१४॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

वही कहते हैं-

निज स्वभाव से तो विभाव उत्पन्न न होने पाते हैं।
निज स्वरूप लक्षित होते ही ये विभाव मर जाते हैं॥

अणवरयं जो संचदि, लच्छिं ण य देदि णेय भुञ्जेदि।
अप्पणिया वि य लच्छी, पर-लच्छिसमाणिया तस्स॥१५॥

अर्थ- जो पुरुष लक्ष्मी को निरंतर संचित करता है न दान करता है न भोगता है उसके अपनी लक्ष्मी भी पर की लक्ष्मी के समान है।

१५. ॐ ह्रीं परलक्ष्मीरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः।

निजैश्वर्यसमृद्धोऽहं।

वीरछंद

लक्ष्मी संचित कर न भोगता ना देता है मूरख दान।
उसका चौकीदार बना है कोई पर भोगेगा आन॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार॥१५॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(१६)

वही कहते हैं

लच्छी-संसत्तमणो, जो अप्पाणं धरेदि कट्ठेण।
सो राइ-दाइयाणं, कज्जं साहेहि मूढप्पा॥१६॥

अर्थ- जो पुरुष लक्ष्मी में आसक्त चित्त होकर अपनी आत्मा को कष्ट सहित रखता है वह मूढात्मा राजा तथा कुटुम्बियों का कार्य सिद्ध करता है।

१६. ॐ ह्रीं धनलक्ष्मीसंसक्तमनरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः।

निर्लेपस्वरूपोऽहं।

वीरछंद

लक्ष्मी में आसक्त चित्त हो रक्षा हित पाता बहु कष्ट।
सगे कुटुम्बी या राजा का कार्य सिद्ध करता भी नष्ट॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार॥१६॥

निज स्वभाव परमात्म स्वरूपी का ही कर ले अब बहु मान।
कर्मोदय विपाक को क्षय कर सकल कर्म कर दे अवसान॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

वही कहते हैं-

जो वड्ढारदि लच्छिं बहु-विह-बुद्धीहिं णेय तिप्पेदि ।
सव्वारंभं कुव्वदि, रत्ति-दिणं तं पि चिंतेइ ॥१७॥

अर्थ- जो पुरुष अनेक प्रकार की कला चतुराई और बुद्धि के द्वारा लक्ष्मी को बढ़ाता है तृप्त नहीं होता है इसके लिए असिमसिकृषि आदिक सब आरंभ करता है रात इसी के आरंभ का चिंतवन करता है ।

१७. ॐ ह्रीं अतृप्तकारीधनलक्ष्मीरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सदानन्दस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

चतुराई से लक्ष्मी की करता नित बृद्धि न होता तृप्त ।
असिमसि कृषि आरंभ कर रहा फिर भी रहता सदा अतृप्त॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥१७॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

वही कहते हैं

ण य भुंजिद वेलाए, चिंतावत्थो ण सुवदि रयणीए।
सो दासत्तं कुव्वदि, विमोहिदो लच्छि-तरुणीए ॥१८॥

अर्थ- समय पर भोजन नहीं करता है चिंतित होता हुआ रात में सोता भी नहीं है वह पुरुष लक्ष्मी रूपी युवती से मोहित होकर उसका किंकरपना करता है।

१८. ॐ ह्रीं चिन्ताकारीधनलक्ष्मीरहितनित्यचैतन्यसस्वरूपाय नमः ।

निराकुलस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जिसमें रत्नत्रय की क्षमता उसको ही जिन दीक्षा है ।
जिसमें यह क्षमता न उसे जिन श्रुत पढ़ने की शिक्षा है॥

नहीं समय पर भोजन करता नहीं रात में सोता है ।
लक्ष्मी रानी पर मोहित हो उसका किंकर होता है ॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥१८॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

अब जो लक्ष्मी को धर्म कार्य में लगाता है उसकी प्रशंसा करते हैं -

जो वड्ढमाण लच्छिं, अणवरयं देदि धम्मकज्जेसु ।
सो पंडिएहिं थुव्वदि, तस्स वि सहला हवे लच्छी ॥१९॥

अर्थ- जो पुरुष बढ़ती हुई लक्ष्मी को निरंतर धर्म के कार्यों में देता है वह पुरुष पंडितों द्वारा स्तुति करने योग्य है और उसीकी लक्ष्मी सफल है।

१९. ॐ ह्रीं प्रासादप्रतिमादिदानविकल्परहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नम. ।

ग्रहणत्यागरहितोऽहं ।

ताटंक

पुण्योदय से लक्ष्मी बढ़ती धर्म कार्य में देता जो ।
उसकी ही है सफल लक्ष्मी बहुत प्रशंसा लेता वो ॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥१९॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

वही कहते हैं -

एवं जो जाणित्ता, विहलिय-लोयाण धम्म-जुत्ताणं ।
णिरवेक्खो तं देदि, हु तस्स हवे जीवियं सहलं ॥२०॥

अर्थ- जो पुरुष ऐसा जानकर धर्मयुक्त ऐसे निर्धन लोगों के लिए प्रत्युपकार की इच्छा से रहित होकर उस लक्ष्मी को देता है निश्चय से उसी का जन्म सफल होता है।

पकने योग्य आम जो होता वह रखते ज्यों पालों में ।
पकने योग्य नहीं जो होता फैंका जाता नालों में ॥

२०. ॐ ह्रीं उपकारवाञ्छारहितानित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरपेक्षोऽहं ।

वीरछंद

यही जानकर धर्म युक्त हो जो करता पर का उपकार।
उसका नर भव सफल जानना वह ही है सच्चा दातार॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥२०॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

अब मोह का माहात्म्य दिखाते हैं-

जल बुब्बुय-सारिच्छं, धणजोव्वण जीवियं पि पेच्छंता।
मण्णंति तो वि णिच्चं, अइ-बलिओ मोह-माहप्पो॥२१॥

अर्थ- (यह प्राणी) धन, यौवन,जीवन को जल के बुदबुदे के समान देखते हुए भी नित्य मानता है मोह का माहात्म्य बड़ा बलवान है।

२१. ॐ ह्रीं अनित्यधनयौवनादिरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अक्षरस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

धन यौवन जीवन जल बुदबुद के समान को माने नित्य।
महामोह की महिमा देखो माना है अनित्य को नित्य ॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥२१॥

ॐ ह्रीं अध्रुवनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

अब इस कथन का संकोच करते हैं-

चइऊण महामोहं, विसए मुणिऊण भंगुरे सव्वे ।
णिव्विसयं कुणह मणं, जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥२२॥

अर्थ- समस्त विषयों को विनाशीक जानकर महामोह को छोड़कर अपने मन को विषयों

त्यों ही पकने योग्य मात्र को श्री गुरु जिन दीक्षा देते ।
योग्य नहीं दीक्षा के जो हो उसे नहीं दीक्षा देते ॥

से रहित करो। जिससे उत्तम सुख को प्राप्त करो ।

२२. ॐ ह्रीं ममत्वपरिणामरहितनित्यचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्मोहस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

विषय सभी क्षण भंगुर जानो उनसे अरे मोह छोड़ो ।
मन को विषयों से विरहित कर निज सुख से नाता जोड़ो॥
अध्रुव अनुप्रेक्षा अनित्य में निज स्वभाव कर के स्वीकार।
यह संसार अनित्य जानकर प्रतिपल वस्तु स्वरूप विचार ॥२२॥

ॐ ह्रीं अध्रुवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्यं

छंद रोला

अस्थिर देह संयोग प्राप्त कर मैं हर्षाया ।
जब अवसर आया वियोग का बहु दुख पाया ॥
अस्थिर लक्ष्मी के पीछे यह जीवन खोया ।
अस्थिर पर पदार्थ अपना जीवन भर रोया ॥
यदि अनित्य भावना ध्यान से प्रभु में भाता ।
तो पर भावों में पड़ कर नर भव न गँवता ॥

दोहा

नित्य स्वभावी भाव है है अनित्य परभाव ।
महाअर्घ्य अर्पण करूं जागे आत्म स्वभाव ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षायां अनित्यानुप्रेक्षाधिकारे विनश्वरेन्द्रियभोगविषयरहित नित्यचैतन्यस्वरूपाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

वीरछंद

अध्रुव है जग के पदार्थ सब इन्हें नाथ मैं लूं पहचान ।
बंधु बांधव परिजन सब ही हैं अनित्य यह लूं अब जान॥

पूर्व पक्ष या अपर पक्ष की बातों में मत उलझ अरे ।
अब न समय केवल चर्चा का अब तो भव से सुलझ अरे॥

कोई सदा न जीवित रहता होता है सब का अवसान ।
मृत्यु अवश्यंभावी सबकी यह निश्चय लूं उर में ठान॥
अतः- सभी से मोह तजूं मैं निर्ममत्व सब से होऊं ।
परभावों से पर द्रव्यों से जो है राग उसे खोऊं ॥
अहंकार का भाव नाश दूं सर्व कषायें करूं विनाश ।
रागद्वेष के भाव त्याग दूं वीतराग बन करूं निवास ॥
जो आया है वह जाएगा इस पर करूं पूर्ण विश्वास ।
शाश्वत ध्रौव्य त्रिकाली मैं तो पाऊं अपनी नाथ सुवास॥
दर्शन ज्ञान स्वरूप शाश्वत इस का ही मै लूं आधार ।
निज स्वभाव की शक्ति जगाऊं हो जाऊं भव सागर पार॥
नित्य अनादि अनंत शाश्वत निज स्वरूप ही मंगलकार।
पर विभाव संपूर्ण त्याग दूं पर विभाव है भव दुखकार ॥
अविनाशी अविकारी चेतन द्रव्य त्रिकाली परम अनूप ।
अध्रुव से संबंध नहीं है मैं ध्रुव धामी हूं चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षायां अनितत्यानुप्रेक्षादिकारे विनश्वरेन्द्रिय बोग विषय रहित नित्य चैतन्य स्वरूपाय जयमाला पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

अशीर्वाद

अध्रुव अनुप्रेक्षा प्रथम का चिन्तवन महान ।
ध्रुव स्वभाव ही शाश्वत देता पद निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद :

जाप्य मंत्र ॐ ह्रीं अध्रुवनानुप्रेक्षाय नमः

गीत

देखो आया है अवसर महान अब तो यतन करो ।
धारो चरित्र उत्तम प्रधान निज को नमन करो ॥
देखो संयम की आयी बहार शिवपथ ग्रहण करो ।
यदि पाना है शिव सुख अपार भव दुख हरण करो ॥

स्वाभाविक सुख का समुद्र है अनाकुलत्व लक्षण तेरा ।
द्रव्य कर्म की उपाधि से हैं दूर सदा चिद्‌धन तेरा ॥

पूजन क्रमांक ३

द्वितीय अधिकार अशरणानुप्रेक्षा पूजन

(अशरण भावना)

स्थापना

दोहा

अशरण इस संसार में शरण न कोई अन्य ।
एकमात्र निज आत्मा परम शरण है धन्य ॥
भाऊं अशरण भावना हे स्वामी दिनरात ।
निज अंतर में सजा लूं कार्तिकेय की बात ॥
अशरण अनुप्रेक्षा करूं सतत चिन्तवन नाथ ।
एकमात्र निज शरण का कभी न छोडूं साथ ॥
अष्ट द्रव्य प्रासुक चढ़ा करूं आत्म कल्याण ।
अष्टकर्म नाशूं प्रभो पाऊं पद निर्वाण ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र तिष्ट तिष्ट ठः ठः ।

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद मानव

अशरण हैं चारों गतियां अशरण है सारी जगती ।
भ्रम भ्रम कर मैंने देखा है शरण रहित यह धरती ॥

स्वपर विवेक महान जगाओ करो आत्मा का उद्धार ।
हुआ नहीं है कोई प्राणी भेदज्ञान बिन भव के पार ॥

अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

परद्रव्य पदार्थ नहीं है पल भर भी किंचित सुखमय ।
चाहे जैसे देखो तुम सारे पदार्थ हैं दुखमय ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

परभाव रागद्वेषादिक प्रतिपल प्रतिक्षण दुखदाता ।
इनका फल तो दुख मिलता कोई न साथ में आता ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

जब मरण समय आता है कोई न काम आता है ।
सब मंत्र तंत्र रह जाते यह जीव चला जाता है ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. ।

इन्द्रादिक चक्रवर्त्ती की भी आयु नाश पाती है ।
सब संपत्ति रह जाती है कोई न संग जाती है ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

मरने से रोक सकेगा ऐसा है कौन बताओ ।
यह देह मरण धर्मा है यह निश्चय उर में लाओ ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

मरने की बातें छोड़ो जब रोग घेर लेता है ।
पत्नी सुत बंधु बांधव कोई न संग देता है ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्टम कर्म दहनाय धूपं नि. ।

कोई न शरण है जग में इतना तो निश्चय कर लो ।
अशरण धर्मा जग सारा इसको तुम अभी बिसर लो ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

निज शरण प्राप्त कर लो तुम यदि तुम को सुख पाना है ।
अशरण का संग छोड़ दो यदि मुक्ति सौख्य लाना है ॥
अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

ज्ञान मात्र ही मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन जानो ।
यह साधन ही मोक्षोपाय महान श्रेष्ठ है पहचानो ॥

अर्घ्यावलि

(२३)

अशरण अनुप्रेक्षाकहते हैं

तत्थ भवे कि सरणं,जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ ।
हरिहरबंभादीया, कालेण य कवलिया जत्थ ॥२३॥

अर्थ- जिस संसार में देवों के इन्द्र का नाश देखा जाता है जहां हरि कहिये नारायण हर कहिये रुद्र, ब्रह्मा कहिये विधाता आदि शब्द से बड़े-बड़े पदवीधारक सब ही काल द्वारा ग्रसे गये उस संसार में कौन शरण होवे ? कोई भी नहीं होवे ।

२३. ॐ ह्रीं अशरणरूपसुरेन्द्रादिविकल्परहितस्वतंत्रस्वरूपाय नमः ।

स्वाधीनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

हरिहर ब्रह्मा इन्द्र रुद्र आदिक भी काल ग्रसित होते ।
कोई नहीं शरण है जग में ये सब भी अशरण होते ॥
अशरण यह संसार विनश्वर नहीं आश्रय के है योग्य ।
अविनाशी अपना स्वभाव है अन्य सभी कुछ पूर्ण अयोग्य॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४)

अब इसका दृष्टांत कहते हैं -

सिंहस्स कमे पडिदं, सारंगं जह ण रक्खदे को वि।
तह मिच्चुणा य गहिदं, जीवं पि ण रक्खदे को वि॥२४॥

अर्थ- जैसे (वन में) सिंह के पैर नीचे पड़े हुए हिरण की कोई भी रक्षा करने वाला नहीं वैसे ही (संसार में मृत्यु के द्वारा ग्रहण किए हुए जीव की कोई भी रक्षा नहीं कर सकता है।

क्रिया कान्ड के आडंबर से होता नीच गोत्र का बंध ।
उच्च आयु तो कभी न मिलती रहता मिथ्याभ्रम में अंध॥

२४. ॐ ह्रीं मरणरहितामरस्वरूपस्वतंत्रस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानामृतस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सिंह पग तले पड़े हिरन की रक्षा में है कौन समर्थ ।
जिस प्राणी को मृत्यु ग्रहण करती वह रक्षा में असमर्थ॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण ॥२४॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५)

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं-

जइ देवो वि य रक्खदि, मंतो तंतो य खेत्तपालो य।
मियमाणं पि मणुस्सं, तो मणुया अक्खया होंति ॥२५॥

अर्थ- यदि मरते हुए मनुष्य को कोई देव, मंत्र, तंत्र, क्षेत्रपाल उपलक्षण से संसार जिनको रक्षक मानता है सो सब ही रक्षा करने वाले होंय तो मनुष्य अक्षय होवें, कोई भी मरे नहीं ।

२५. ॐ ह्रीं अरक्षकरूपमन्त्रतन्त्रक्षेत्रपालादिविकल्परहितस्वतंत्रस्वरूपाय नमः।

निरालंबस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

क्षेत्रपाल अरु मंत्र तंत्र देवेन्द्र आदि यदि रक्षक होंय ।
फिर तो कोई नहीं मरेगा सारे प्राणी अक्षय होंय ॥
पूर्ण नित्य निर्मोही ज्ञानानंद स्वभाव भूल यह जीव ।
वृथा मोह से ग्रसित हुआ है व्यर्थ विकल्प भाव रत जीव॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण॥२५॥

श्रद्धा को दर्शन कहते हैं शुद्ध ज्ञान को सम्यक् ज्ञान ।
राग रहित चारित्र कहाता रत्नत्रय का महा विमान ॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६)

आगे इसी अर्थ को और दृढ़ करते हैं -

अइ-बलिओ वि रउद्दो मरण-विहीणो ण दीसए को वि।
रक्खिजंतो वि सया रक्ख-पयारेहि विविहेहिं ॥२६॥

अर्थ- अत्यंत बलवान् तथा अत्यंत रौद्र और अनेक रक्षा के प्रकार उनसे निरन्तर रक्षा किया हुआ भी मरणरहित कोई भी नहीं दिखता है।

२६. ॐ ह्रीं परपेक्षारहितस्वतंत्रस्वरूपाय नमः ।

अनंतशक्तिस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

विविध भांति से रक्षा करने पर भी रुकती मृत्यु नहीं ।
मरण रहित न कोई जीव है कोई रक्षक नहीं कहीं ॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण ॥२६॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७)

अब शरण की कल्पना करे उसको अज्ञान बताते हैं -

एवं पेच्छंतो वि हु,गह-भूय-पिसाय-जोइणी-जक्खं ।
सरणं मण्णइ मूढो, सूगाढ-मिच्छत्त-भावादो ॥२७॥

अर्थ- ऐसे प्रत्यक्ष देखता हुआ भी मूढ प्राणी तीव्र मिथ्यात्वभाव से सूर्यादि ग्रह, भूत, व्यंतर, पिशाच, योगिनी, चंडिकादिक, यक्ष, मणिभद्रादिक को शरण मानता है ।

२७. ॐ ह्रीं अशरणरूपगृहभूतपिशाचयोगिनीयक्षादिविकल्परहितस्वतंत्र स्वरूपाय नमः ।

निर्मूढस्वरूपोऽहं ।

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

श्री कार्त्तिकेय अनुप्रेक्षा के. रचनाकार

जिसकी गाथा नं. ३२१-३२२ भारत प्रसिद्ध खानिया (जयपुर) चर्चा के लिए प्रसिद्ध हैं
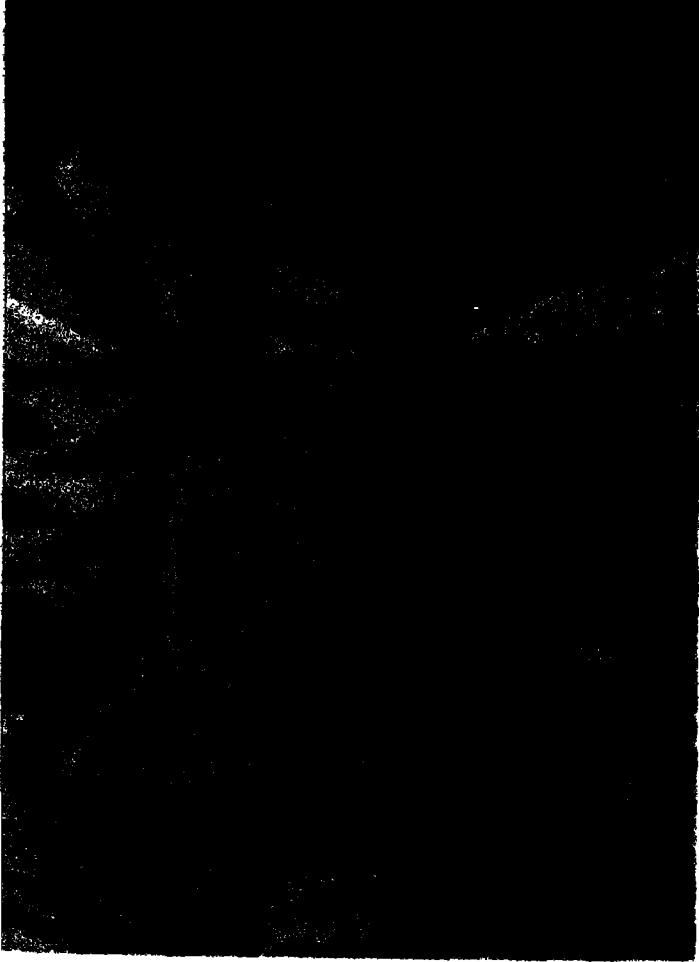
श्री कुमार स्वामी कार्त्तिकेय आचार्य

समयावधि द्वितीय शताब्दी

ॐ

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान

प्रातः स्मरणीय आचार्य कुन्दकुन्द देव

सर्व प्रथम बारस अणु प्रेक्षा और समयसार आदि चौरासी पाहुड़ के रचनाकार

समयावधि प्रथम शताब्दी से पूर्व

दर्शन मोह स्वभाव अंध है यह निगोद ले जाता है ।
सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर तक का बंध कराता है ॥

छंद ताटंक

व्यंतर भूत पिशाच योगिनी यक्ष सूर्य मणिचद्र किरण ।
घोर तीव्र मिथ्यात्व भाव से मान रहा है इन्हे शरण ॥
नहीं बचाने वाला कोई जान रहा है यह प्रत्यक्ष ।
फिर भी मंत्र तंत्र आदिक करने में बनता है यह दक्ष ॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण ॥२७॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२८)

अब मरण है सो आयु के क्षय से होता है यह कहते हैं -

आयु-क्खयेण मरणं, आउं दाऊं ण सक्कदे को वि ।
तह्मा देविंदों वि य, मरणाउ ण रक्खदे को वि ॥२८॥

अर्थ- आयु कर्म के क्षय से मरण होता है और आयुकर्म किसी को कोई देने में समर्थ नहीं इसलिए देवों का इन्द्र भी मरने से किसी की रक्षा नहीं कर सकता है ।

२८. ॐ ह्रीं आयुकर्मरहितस्वतंत्रस्वरूपाय नमः ।

अनाद्यनंतस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

आयु कर्म के क्षय से होता मरण सुदृढ़ निश्चय कर लो।
कोई आयु कर्म देने में नही समर्थ हृदय धर लो ॥
नहीं देवताओं का इन्द्र किसी की रक्षा कर सकता ।
यह विचार जो भी करता है वही व्यर्थ चिन्ता हरता ॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण ॥२८॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

गुप्त आध्यात्मिक तत्त्वों का जो देते हित कर उपदेश ।
वे ही सच्चे गुरु पहचानो वे ही सच्चे निर्ग्रंथेश ॥

(२९)

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं-

अप्पाणं पि चवंतं, जइ सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि ।
तो किं छंडदि सग्गं, सव्वुत्तम-भोय-संजुत्तं ॥२९॥

अर्थ- यदि देवों का इन्द्र भी अपने को चयते हुए रोकने में समर्थ होता तो सर्वोत्तम भोगों से संयुक्त स्वर्ग को क्यों छोड़ता ?

२९. ॐ ह्रीं अशरणरूपपसर्वोत्तमभोगसंयुक्तदेवलोकविकल्परहितस्वतंत्र स्वरूपाय नमः ।

अनंतसुखस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

यदि इन्द्रादिक अपना च्यवन रोकने में होते जु समर्थ ।
तो स्वर्गों के सर्वोत्तम क्यों भोग छोड़ते हो असमर्थ ॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण ॥२९॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३०)

अब परमार्थ शरण दिखाते हैं -

दंसण-णाण-चरित्तं, सरणं सेवेहि परम-सद्धाए ।
अण्णं किं पि ण सरणं, संसारे संसरंताणं ॥३०॥

अर्थ- परम श्रद्धा से दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप शरण का सेवन कर। इस संसार में भ्रमण करते हुए जीवों को अन्य कुछ भी शरण नहीं है।

३०. ॐ ह्रीं निजचैतन्यधामरूपस्वतंत्रस्वरूपाय नमः ।

श्रद्धागुणस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

भव्य परम श्रद्धा से पाले दर्शन ज्ञान चरित्र शरण ।
भ्रमण कर रहे संसारी जीवों को अन्य न कोई शरण ॥

मोक्ष मार्ग उपदेश दे रहे वे गुरु सम्यक् ज्ञानमयी ।
मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान तथा मिथ्याचारित्र जयी ॥

अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण॥३०॥

ॐ ह्रीं श्री अशरणानुप्रेक्षा प्ररुरुक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३१)

आगे इसी को दृढ़ करते हैं -

अप्पाणं पि य सरणं, खमादि-भावेहिं परिणदं होदि ।
तिव्व-कषायाविट्ठो, अप्पाणं हणदि अप्पेण ॥३१॥

अर्थ- जो अपने को क्षमादि दशलक्षणरूप परिणत करता है सो शरण है और जो तीव्रकषाययुक्त होता है सो अपने ही द्वारा अपने को हनता है।

३१. ॐ ह्रीं क्षमादिगुणयुक्तस्वतंत्रस्वरूपाय नमः ।

निष्कषायस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो अपने को क्षमा आदि से परिणत करता वही शरण।
तीव्र कषाय युक्त जो होता अपना करता सौख्य हरण ॥
स्वयं आत्मा अपना गुरु है अपना शिष्य भक्त भगवान।
स्वयं उपास्य उपासक जानो शत्रु मित्र भी स्वयं महान॥
निज आत्मा की अरुचि राग से रुचि हो तो है निश्चय क्रोध ।
अपना घात वही करता है जिसे नही है अपना बोध ॥
अशरण अनुप्रेक्षा का चिन्तन कर पाऊंगा प्रभु आत्म शरण।
निज की शरण प्राप्त करके प्रभु कर लूंगा भव कष्ट हरण॥३१॥

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

छंद मानव

अशरण स्वरूप जागा है है शरण आत्मा अपनी ।
अशरण सुभावना फल है निज आत्मा अपनी जपनी ॥
निज आत्मा के जपने से निज सिद्ध स्वपद मिलता है ।
परिपूर्ण सिद्ध सुख उर में पल भर में ही झिलता है ॥

सम्यक् दर्शन का धारी गुरु सम्यक् ज्ञान चरित्र सहित।
कोई शल्य नहीं है मन में परभावों से सदा रहित ॥

अशरण अनुप्रेक्षा उर में वैराग्य भाव लाती है ।
परमोत्तम आत्म शरण है यह हमको बतलाती है ॥

ॐ ह्रीं श्री स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षायां अशरणानुप्रेक्षाधिकारे स्वतंत्रस्वरूपाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छंद भुजंगी

तुम्हारा अगर स्वामी दर्शन न होता ।
तो निज आत्मा का सुदर्शन न होता ॥
अगर जान लेता कि यह आत्मा है ।
तुम्हारे ही सम पूर्ण परमात्मा है ॥
इसे जानते ही अदर्शन न होता ।
तुम्हारा अगर स्वामी दर्शन न होता ॥
तुम्हें देखते ही मैं जाग्रत जो होता ।
निजंतर में कोई अनात्मा न होता ॥
अगर निर्जरा होती संवर सहित प्रभु ।
तो फिर कोई भी नाथ बंधन न होता ॥
घड़ी आज पायी जो तुम को पिछाना ।
तुम्हें क्या पिछान स्वयं को ही जाना ॥
अगर पहिले करता तो क्रन्दन न होता ।
तुम्हारा अगर स्वामी दशन न होता

ॐ ह्रीं अशरण अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद

दोहा

अशरण अनुप्रेक्षा सुफल अपनी शरण महान ।
जो लेते निज की शरण पाते पद निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं अशरणानुप्रेक्षाय नमः

अंतरंग बहिरंग परिग्रह रहित तथा आरंभ रहित ।
भोजन में न रंच लोलुपता आत्म ध्यान की सुरुचि सहित॥

पूजन क्रमांक ४

तृतीय अधिकार संसारानुप्रेक्षा पूजन

(संसार भावना)

स्थापना

छंद दोहा

इस असार संसार में कहीं न कोई सार ।
शुद्ध आत्मा सार है शेष सभी निस्सार ॥
यह कुटुम्ब परिवार सब है दुख का आगार ।
शिव सुख संपत्ति प्राप्त कर पाऊं सौख्य अपार ॥
राग भाव दुखरूप है ज्ञान भाव सुखरूप ।
ज्ञानशरीरी द्रव्य हूं मैं चेतन चिद्रूप ॥
अष्ट द्रव्य प्रासुक चढ़ा करूं आत्म कल्याण ।
अष्ट कर्म नाशूँ प्रभो पाऊं पद निर्वाण ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट।

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र तिष्ट तिष्ट ठः ठः।

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद सार (जोगीरासा)

दुखमय है संसार सदा ही यहां न सुख है कोई ।
चारों गति में भ्रम भ्रम देखा पलभर सुख ना होई ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्मा की शुद्धोपयोग परिणति का ज्ञान।
जिन को होता वे निज में रम कर पाते हैं केवल ज्ञान॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

स्वर्गों में कुछ साता पायी नश्वर केवल दो दिन ।
जब मंदार माल मुरझायी पाया बहु दुख छिन छिन ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसार ताप विनाशनाय चदनं नि. ।

पशु गति में बध बंधन आदिक पाए दुक्ख घनेरे ।
मायाचारी का फल पाया कौन इसे निरवेरे ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

नरकों में प्रभु शीत उष्ण की पीड़ा पायी भारी ।
पापों का फल पाया मैंने अति भीषण दुखकारी ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

नरगति पायी महाभाग्य से भाव न निज का आया ।
दुक्खों में ही जीवन बीता लेश नहीं सुख पाया ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

हम तो उनके ही अनुयायी उनके पथ पर जाएंगे ।
जिन मुनि दशा प्राप्त कर के हम योगीश्वर बन जाएंगे॥

चारों गति से ऊबा तो फिर त्रस पर्याय विनाशी ।
पुनः निगोद के भीतर स्वामी पायी दुख मय फाँसी ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

फिर मानव तन पाया मैंने पाप किए बहु संचित ।
आत्म ज्ञान की छवि ना भायी रहा ज्ञान से वंचित ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं नि. ।

फिर बहु पुण्य उदय मम आया आए सदगुरु द्वारे ।
मंद कषाय हुई कुछ मेरी तो निज रूप निहारे ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

सम्यक् दर्शन पाया मैंने किया आत्म का चिन्तन ।
उर में दृढ़ विश्वास जगा फिर काटूंगा भव बंधन ॥
मैं संसार भावना भाऊं निज का कर लूं चिन्तन ।
कार्तिकेय की महा कृपा से नष्ट करूं भव क्रन्दन ॥

ॐ ह्रीं संसार अनुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

उन सम ही मुनि पद धारेंगे तेरह विध चारित्र सहित ।
रत्नत्रय की महिमा से हम अब होगें संसार रहित ॥

अर्घ्यावलि

(३२)

पहले दो गाथाओं में संसार का सामान्य स्वरूप कहते हैं-

एकं चयदि शरीरं, अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो ।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं, गिण्हदि मुंचेदि बहुवारं ॥३२॥

अर्थ– यह जीव एक शरीर को छोड़ता है फिर नवीन (शरीर) को ग्रहण करता है फिर अन्य अन्य शरीर को कई बार ग्रहण करता है और छोड़ता है वह ही संसार कहलाता है ।

३२. ॐ ह्रीं परभ्रिरमणरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निःसंसारस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

उर में तो मिथ्यात्व मोह है है कषाय भाव से युक्त ।
पुनः पुनः भव भ्रमण कर रहा अतः नहीं हो पाया मुक्त।
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३२॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३३)

वही कहते है ।

एवं जं संसरणं, णाणादेहेसु हवदि जीवस्स ।
सो संसारो भणणदि, मिच्छकसाएहिं जुत्तस्य॥३३॥

अर्थ– मिथ्यात्व कहिये सर्वथा एकान्तरूप वस्तु को श्रद्धा में लाना और कषाय कहिये क्रोध, मान, माया, लोभ इनसे युक्त इस जीवका जो अनेक शरीरों में संसरण कहिये भ्रमण होता है वह संसार कहलाता है ।

३३. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वादिविभावरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निष्क्रोधस्वरूपोऽहं ।

भव दुख नाशक ज्ञान प्रकाशक शिवसुखदायक शुद्धात्मा।
परमभाव संपदा प्रदायक एकमात्र निज परमात्मा ॥

ताटंक

नित नित नव तन ग्रहण त्याग कर बढ़ा रहा संसार भ्रमण।
भव संसरण अनादि काल से करता आया सदा ग्रहण॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३३॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४)

अब ऐसे संसार में संक्षेप से चार गतियाँ हैं तथा अनेक प्रकार के दुःख हैं। सो प्रथम ही नरकगति में दुःख हैं यह छह गाथाओं में कहते हैं--

पावोदयेण णरए, जायदि जीवो सहेदि बहुदुक्खं ।
पंच-पयारं विविहं, अणोवमं अण्ण-दुक्खेहिं ॥३४॥

अर्थ— यह जीव पापके उदय से नरक में उत्पन्न होता है । वहां कई तरह के, पंचप्रकार से, उपमारहित ऐसे बहुत से दुःख सहता है ।

३४. ॐ ह्रीं पञ्चप्रकारदुःखरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निरुपमचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पापोदय से सातों नरकों में होता रहता उत्पन्न ।
पंच प्रकार दुखों से पीड़ित उपमा रहित कष्ट संपन्न ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३४॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३५)

अब पांच प्रकार के दुःखों को कहते हैं-

असुरोदीरिय-दुक्खं, सारीरं माणसं तहा विविहं ।
खित्तुब्भवं च तिव्वं, अण्णोण्ण-कयं च पंचविहं ॥३५॥

तज बहिरात्मापन हो जाऊँ अन्तरात्मा सुखदायी ।
परमात्मा बन सिद्धात्मा बन निजपद पाऊं शिवदायी ॥

अर्थ– १. असुरकुमार देवों द्वारा उत्पन्न किया हुआ दु:ख, २. शरीर से उत्पन्न हुआ और ३. मनसे हुआ तथा ४. अनेक प्रकार क्षेत्र से उत्पन्न हुआ और ५. परस्पर में किया हुआ एसे पांच प्रकार के दु:ख हैं ।

३५. ॐ ह्रीं अशुभकर्मोदयजनितशूलारोपणादिनारकदु:खरहितसारस्वरूप चैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निजानंदस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

असुरकुमार सुरों के द्वारा तन मन के बहु दुख पाए ।
कष्ट कुक्षेत्रों में भी पाए सतत परस्पर दुख भाए ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३५॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३६)

आगे इसी को विशेष राप से कहते हैं

छिज्जइ तिलतिलमित्तं, भिंदिज्जइ तिल तिलंतरं सयलं ।
वज्जग्गिए कढिज्जइ, णिहिप्पए पूयकुंडम्हि ॥३६॥

अर्थ- (नरक में) तिलतिलमात्र छेद देते हैं शकल कहिये खण्डको भी तिलतिलमात्र भेद देते है। शकल कहिये खण्डको भी तिलतिलमात्र भेद देते हैं वज्राग्नि में पकाते हैं राधके कुण्ड में फेंक देते हैं ।

३६. ॐ ह्रीं छेदनभेदनादिदु:खरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

समतास्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

तिल तिल छेदा गया देह के खंड खंड प्रभु हुए सदा ।
दुख वज्राग्नी बीच जल पाया रक्त कुन्ड में गिरा सदा॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३६॥

विविध वेषभूषा से सज्जित त्रययोगों का आश्रय कर ।
आस्रव को आमंत्रित करके सतत बढ़ाया भवसागर ॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३७)

वही कहते हैं ।

इच्चेवमाइ-दुक्खं, जं णरए सहदि एयसमयम्हि ।
तं सयलं वण्णेदुं, ण सक्कदे सहस-जीहो वि ॥३७॥

अर्थ- इति कहिये ऐसे एवमादि कहिये पर्व गाथा में कहे गए उनको आदि लेकर जो दु:ख उनको नरक में एकसमय में जीव सहता है उन सबका वर्णन करने के लिए हजार जीभवाला भी समर्थ नहीं होता है ।

३७. ॐ ह्रीं रत्नप्रभादिनरकगतदु:खरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

सौख्यार्णवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पूर्वकथित दुख नरकों में गिर एक समय में पाए नाथ।
हों जिव्हाएं सहस्रतो भी शक्य न दुख का वर्णन नाथ ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३७॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३८)

अब कहते हैं कि नरक का क्षेत्र तथा नारकियों के परिणाम दु:खमयी ही हैं -

सव्वं पि होदि णरये, खित्तसहावेण दुक्खदं असुहं ।
कुविदा वि सव्वकालं, अण्णोण्णं होंति णेरइया॥३८॥

अर्थ- नरक में क्षेत्रस्वभाव से सब ही कारण दु:खदायक तथा अशुभ हैं । नारकी जीव सदा काल परस्पर में क्रोधित होते रहते हैं ।

३८. ॐ ह्रीं अप्रशस्तदु:खरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

शांतस्वरूपोऽहं ।

आस्रव द्वारा कर्मबंध कर भव अटवी में ही भटका ।
संवर भाव नहीं पहचाना कर्मास्रव में ही अटका ॥

वीरछंद

नरक क्षेत्र तो स्वभाव से ही अशुभ घृणामय दुख का धाम।
जीव नारकी सदा परस्पर लड़ कर दुख पाते वसु याम ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३८॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३९)

फिर वही कहते है

अण्ण-भवे जो सुयणो, सो वि य णरये हणेइ अइ-कुविदो।
एवं तिव्व-विवागं, बहु-कालं विसहदे दु:खं ॥३९॥

अर्थ- पूर्वभव में जो सज्जन कुटुम्बका था वह भी नरक में क्रोधित होकर घात करता है इस प्रकार तीव्र है विपाक जिसका ऐसा दु:ख बहुत काल तक नारकी सहता है।

३९. ॐ ह्रीं तीव्रविपाकरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

अवबोधसौधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पूर्व भवों का प्रिय परिजन भी नरकों में करता है घात।
बना नारकी बहुत काल तक दुख अनंत सहता कुख्यात॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥३९॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४०)

अब तिर्यंचगति सम्बन्धी दु:खों को साढ़े चार गाथाओं में कहते हैं -

तत्तो णीसरिदूणं, जायदि तिरएसु बहुवियप्पेसु ।
तत्थ वि पावदि दु:खं, गब्भे वि य छेयणादीयं ॥४०॥

अर्थ- उस नरक से निकल कर अनेक भेदवाले तिर्यंचों में उत्पन्न होता है वहां भी गर्भ

सद्‌गुरु का उपदेश सुना पर ध्यान नहीं देने पाया ।
जिनवाणी की बात न मानी चारो गति में भ्रम आया ॥

में दु:ख पाता है अपि शब्द से सम्मूर्च्छन होकर छेदनादिकका दु:ख पाता है।

४०. ॐ ह्रीं एकेन्द्रियादिपर्यायरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निर्दोषस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

नरकों से आ त्रियंच होता गर्भ वास के दुख पाता ।
सम्मूर्छन हो पर्याप्तक हो छेदनादि बहु दुख पाता ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४०॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४१)

फिर वही कहते हैं -

तिरिएहि खज्जमाणो, दुट्ठणुस्सेहिं हण्णमाणो वि ।
सव्वत्थ वि संतट्ठो, भय-दुक्खं विसहदे भीमं ॥४१॥

अर्थ- सिहव्याघ्रादिक से खाये जाने का तथा दुष्ट मनुष्य, म्लेच्छ व्याध धीवरादिक से मारे जाने का सब जगह दुखी होता हुआ रौद्र भयानक दु:ख को विशेष रूप से सहता है ।

४१. ॐ ह्रीं भीतिकृतदु:खरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निर्भयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सिंह व्याघ्र से खाया जाता दुष्टों से मारा जाता ।
सभी जगह के रौद्र ध्यान का कष्ट सहन कर दुख पाता॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४१॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

पाप पुण्य अवरोध बिना संवर कैसे आ सकता था ।
बिन संवर निर्जरा भाव कैसे उर में ला सकता था ॥

(४२)

फिर वही कहते हैं-

अण्णोण्णं खज्जंता, तिरियां पावंति दारुणं दुक्खं ।
माया वि जत्थ भक्खदि, अणणो को तत्थ रक्खेदि॥४२॥

अर्थ- यह तिर्यंच परस्पर में खाये जाने का उत्कृष्ट दु.ख पाता है। जहां जिसके गर्भ में उत्पन्न हुआ ऐसी माता भी भक्षण कर जाती है वहां दूसरा कौन रक्षा करे ?

४२. ॐ ह्रीं अन्यौन्यभक्षणस्वभावरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

अनशनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

गति त्रियंच में एक दूसरे को खा जाते हैं प्राणी ।
माता भी भक्षण कर जाती रक्षित नहीं कभी प्राणी ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४२॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४३)

वही कहते हैं

तिव्व-तिसाए तिसिदो, तिव्व-विभुक्खाइ भुक्खिदो संतो ।
तिव्वं पावदि दुक्खं, उयर-हुयासेण डज्झंतो ॥४३॥

अर्थ- तीव्र प्यास से प्यासा तीव्र भूख से भूखा होता हुआ उदराग्नि से जलता हुआ तीव्र दु:ख पाता है ।

४३. ॐ ह्रीं तीव्रतृषादिदु:खरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

ज्ञाननीरस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

तीव्र प्यास से प्यासा रहता तीव्र भख से भूखा नाथ ।
जलती है उदराग्नि सदा ही तीव्र दुखों का मिलता साथ॥

बिना निर्जरा कर्म क्षीण करना कैसे होता प्रारंभ ।
रत अकाम निर्जर हुआ तो फल में पाया पुण्यारंभ ॥

अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥४३॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४)

अब इसका संकोच करते हैं -

एवं बहुप्पयारं, दुक्खं विसहेदि तिरियजोणीसु ।
तत्तो णीसरदूणं, लद्धि-अपुण्णो णरो होदि ॥४४॥

अर्थ- ऐसे तिर्यंचयोनि में अनेक प्रकार के दु:ख सहता है उस तिर्यंचगति से निकल कर लब्धि-अपर्याप्त मनुष्य होता है ।

४४. ॐ ह्रीं अपर्याप्तिनामकमर्मरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निर्गतिस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

योनि त्रियंच विविध दुख सहता जब इससे बाहर आता।
लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य हो विविध भांति बहु दुख पाता॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४४॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४५)

अब मनुष्यगति के दु:ख बारह गाथाओं में कहते हैं सो प्रथम ही गर्भ में उत्पन्न होने की अवस्था बतलाते हैं ।

अह गब्भे वि य जायदि, तत्थ वि णिबडीकयंगपच्चंगो।
विसहदि तिव्वं दुक्खं, णिग्गममाणो वि जोणीदो॥४५॥

अर्थ- अथवा गर्भ में भी उत्पन्न होता है तो वहां भी सिकुड़ रहे हैं हाथ, पैर आदि अंग तथा उंगली आदि प्रत्यंग जिसके, ऐसा होता हुआ तथा योनि से निकलते समय भी तीव्र दु:ख को सहता है ।

पुण्यारंभ क्षीण होते ही संचय पाप किए सारे ।
पापों का फल नर्क निगोदादिक दुख भव समुद्र खारे॥

४५. ॐ ह्रीं अंगोपांगनामकर्मरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

ज्ञानशरीरस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अथवा गर्भ मध्य में सिकुड़े रहते मेरे अंग प्रत्यंग ।
मातृ योनि से बाहर आते समय तीव्र दुख होता संग ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४५॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६)

फिर कैसा होता है सो कहते हैं

बालोपि पियरचत्तो, परउच्छिट्ठेण बड्ढदे दुहिदो ।
एवं जायण-सीलो, गमेदि कालं महादुक्खं ।

अर्थ- गर्भ से निकलने के बाद में बाल अवस्था में ही माता-पिता मर जायं तब दूसरों की झूठन से बड़ा हुआ इस तरह भीख मांग-मांग कर उदरपूर्त्ति करके महादु:खी होता हुआ काल बिताता है।

४६. ॐ ह्रीं बालादिपर्यायरहितसारचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

एकोऽहं ।

छंद ताटंक

बाहर आता बचपन में यदि मात पिता वियोग पाता ।
उदर पूर्ति हित झूठन खाता भीख मांगता दुख पाता ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥४६॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७)

अब कहते हैं कि यह पाप का फल है-

बहिरात्मा अरु अंतरात्मा दोनों का जाना प्रभु भेद ।
द्रव्य दृष्टि से मैं परमात्मा शुद्ध त्रिकाली पूर्ण अभेद ॥

पावेण जणो एसो, दुक्कम्म-वसेन जायदे सव्वो ।
पुणरवि करेदि पावं, ण य पुण्णं को वि अज्जेदि॥४७॥

अर्थ- ये लौकिक जन सब ही पाप के उदय से असाता वेदनीय, नीच गोत्र, अशुभनाम आयु आदि दुष्कर्म के वश से ऐसे दुःख सहता है तो भी फिर पाप ही करता है पूजा, दान, व्रत, तप ध्यानादि लक्षण पुण्य को पैदा नहीं करता है, यह बड़ा अज्ञान है।

४७. ॐ ह्रीं पुण्यपापप्रकृतिरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

शुद्धोऽहं ।

छंद ताटंक

सब ही पाप उदय से तीव्र असाता नीच गोत्र पाते ।
अशुभ नाम अरु अशुभ आयु दुष्कर्म जनित पीड़ा पाते॥
फिर भी करते पापोपार्जन दया दान व्रत से रह दूर ।
पुण्य भाव करते न भूलकर यह अज्ञान दोष है क्रूर ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४७॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८)

फिर वही कहते हैं -

विरलो अज्जदि पुण्णं,सम्मादिट्ठी वएहिं संजुत्तो ।
उवसमभावे सहियो, णिंदणगरहाहि संजुत्तो ॥४८॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टि कहिये यथार्थ श्रद्धावान् और मुनि श्रावक के व्रतों से संयुक्त उपशम भाव कहिये मन्द कषायरूप परिणाम सहित निंदन कहिये अपने दोष याद कर पश्चाताप करना, गर्हण कहिये अपने दोष गुरु के पास जाकर प्रकट करना इन दोनों से युक्त विरला ही ऐसा जीव है जो पुण्य प्रकृतियों का बंध करता है ।

४८. ॐ ह्रीं निंदागर्हादिकविकल्परहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

शुद्धोऽहं ।

सम्यक्‌दर्शन प्राप्त हो गया झलका सम्यक्‌ ज्ञान हृदय।
सम्यक्‌चारित्र को धारण कर पाऊंगा मैं मुक्ति निलय ॥

वीरछंद

सम्यक्‌ दर्शन की श्री से मुनि श्रावक यदि होते संयुक्त ।
उपशम सहित दोष निन्दा कर होते पश्चाताप सुयुक्त ॥
विरले ऐसे प्राणी है जो पुण्य प्रकृति का करते बंध ।
बहुत जीव तो ऐसे हैं जो सतत्‌ पाप में रहते अंध ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४८॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४९)

अब कहते हैं कि पुण्यवान्‌ के भी इष्ट वियोगादि देखे जाते हैं -

पुण्णजुदस्स वि दीसइ, इट्ठविओयं अणिट्ठसंजोयं ।
भरहो वि साहिमाणो, परिज्जिओ लहुय-भायेण ॥४९॥

अर्थ- पुण्य उदय सहित पुरुष के भी इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग देखा जाता है अभिमान सहित भरत चक्रवर्त्ती भी छोटे भाई बाहुबली से पराजित हुआ।

४९. ॐ ह्रीं इष्टानिष्टवियोगसंयोगरूपार्तध्यानरहितसारस्वरूपचैतन्य रत्नाकराय नमः ।

शिवोऽहं ।

वीरछंद

पुण्य उदय में भी होता है इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग ।
भरत चक्रवर्ती तक ने पाया था मान भंग का योग ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥४९॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५०)

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं -

निर्मल ध्यान अवस्थित है जो कर्म कलंक भस्म कर्त्ता।
परमात्मा पद पाया जिनने उनको नमस्कार करता ॥

सयलट्ठ विसह-जोओ, बहुपुण्णस्स वि ण सव्वहा होदि ।
तं पुण्णं पि ण कस्स वि, सव्वं जेणिच्छिदं लहदि॥५०॥

अर्थ- इस संसार में समस्त जो पदार्थ, वे ही हुए विषय कहिये भोग्य वस्तु, उनका योग बड़े पुण्यवानों को भी पूर्ण रूप से नहीं मिलता है ऐसा पुण्य किसी के भी नहीं है जिससे सब ही मनवांछित मिल जाय।

५०. ॐ ह्रीं सकलार्थविषययोगवञ्छारहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः।

परिपूर्णोऽहं ।

वीरछंद

इच्छित विषय पदार्थ भोग पुण्यी जन को भी मिलें न पूर्ण।
ऐसा पुण्य नहीं होता है पूरी हों इच्छा सम्पूर्ण ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५०॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५१)

फिर वही कहते हैं-

कस्स वि णत्थि कलत्तं, अहव कलत्तं ण पुत्त-संपत्ती।
अह तेसिं संपत्ती, तह वि सरोओ हवे देहो ॥५१॥

अर्थ- किसी मनुष्य के तो स्त्री नहीं है किसी के यदि स्त्री है तो पुत्र की प्राप्ति नहीं है, किसी को पुत्र की प्राप्ति है तो शरीर रोग सहित है ।

५१. ॐ ह्रीं पुत्रकलत्रादिविकल्परहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निरामयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

किसी मनु को नहीं स्त्री, स्त्री है तो पुत्र नहीं ।
अगर पुत्र है तो शरीर भी रहता पूरा स्वस्थ नहीं ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५१॥

चारघातिया कर्म नष्ट कर किया अनंत चतुष्टय प्राप्त ।
उनको वंदन कर कहता हूं योगसार वच जिनवर आप्त॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५२)

फिर वही कहते हैं-

अह णीरोओ देहो, तो धण-धण्णाण णेय सम्पत्ति ।
अह धण-धण्णं होदि हु, तो मरणं झत्ति ढुक्केइ ॥५२॥

अर्थ- यदि किसी के नीरोग शरीर भी हो तो धनधान्य की प्राप्ति नहीं है यदि धन धान्य की भी प्राप्ति हो जाय तो शीघ्र मरण हो जाता है।

५२. ॐ ह्रीं नीरोगदेहविकल्परहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निर्देहस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अगर किसी का तन निरोग है पर धन धान्य नहीं है पास।
यदि धन धान्य प्राप्त भी हो तो शीघ्र मरण का पाता त्रास॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५२॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५३)

फिर वही कहते हैं

कस्स वि दुट्ठ-कलत्तं, कस्स वि दुव्वसण-वसणिओ पुत्तो ।
कस्स वि अरिसमबंधू, कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरिया ॥५३॥

अर्थ- इस मनुष्य भवन में किसी के तो स्त्री दुराचारिणी है किसी का पुत्र जुआ आदि दुर्व्यसनों में रत है किसी के शत्रु के समान कलही भाई है । किसी के पुत्री दुराचारिणी है ।

५३. ॐ ह्रीं दुराचारसंयोगविकल्परहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

नित्यानंदस्वरूपोऽहं ।

ज्ञान भुजाओं के बल से अब भव समुद्र को पार करूं।
तूफानों को नक्षत्रों से पूछे बिन संहार करूं ॥

छंद ताटंक

दुराचारिणी नार किसी की पुत्र मिला दुर्व्यसनी है ।
कलही भाई दुराचारिणी पुत्री भी दुर्व्सनी है ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५३॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५४)

फिर वही कहते हैं-

कस्स वि मरदि सुपुत्तो, कस्स वि महिला विणस्सदे इट्ठा।
कस्स वि अग्गिपलित्तं, गिहं कुडंबं च डज्झेइ ॥५४॥

अर्थ- किसी का सुपुत्र मर जाता है । किसी के इष्ट प्यारी स्त्री मर जाती है । किसी के घर और कुटुम्ब सब ही अग्नि से जल जाते हैं।

५४. ॐ ह्रीं इष्टमहिलादिमरणदु:खरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।
निर्ममस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पुत्र किसी का मर जाता अथवा प्रिय नारी मर जाती ।
अग्नि मध्य जल कुटुम्ब मरता विविध भांति पीड़ा आती॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५४॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५५)

फिर वही कहते हैं -

एवं मणुयगदीए, णाणा दुक्खाइं विसहमाणो वि ।
ण वि धम्मे कुणदि मइं, आरंभं णेय परिचयइ ॥५५॥

अर्थ- इस तरह मनुष्यगति में अनेक प्रकार के दु:खों को सहता हुआ भी यह जीव

जो भव से भयभीत हुए हैं जिनको जगी मोक्ष की चाह।
उनके ही संवर्धन के हित कहता हूं भर उर उत्साह ॥

धर्माचरण में बुद्धि नहीं करता है और पापारंभ को नहीं छोड़ता है ।

५५. ॐ ह्रीं मनुष्यगतियोग्यदु:खरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निर्मानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

इस प्रकार यह मनुष्य गति के दुख पाता है विवधि अनेक।
तो भी धर्माचरण न करता पापाचरण न तजता एक ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५५॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५६)

फिर वही कहते हैं -

सधणो वि होदि णिधणो, धण-हीणो तह य ईसरो होदि ।
राया वि होदि भिच्चो, भिच्चो वि य होदि णर णाही ॥५६॥

अर्थ- धन सहित तो निर्धन हो जाता है वैसे ही जो धन रहित होता है सो ईश्वर (धनी) हो जाता है राजा भी किंकर (नोकर) हो जाता है और जो किंकर होता है सो राजा हो जाता है ।

५६. ॐ ह्रीं सधननिर्धनादिविकलल्परहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

साम्यस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

धन पति निर्धन हो जाता है निर्धन हो जाता धनवान ।
राजा भी किंकर हो जाता किंकर होता नृपति महान ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५६॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

स्वपर विवेक दृष्टि सम्यक् ले सम्यक् पथ पर चला चलूँ।
ज्ञायक भाव हृदय में लेकर राग द्वेष सम्पूर्ण छलूँ ॥

(५७)

फिर वही कहते हैं -

सत्तू वि होदि मित्तो, मित्तो विय जायदे तहा सत्तू ।
कम्म-विवाय-वसादो, एसो संसार सब्भावो ॥५७॥

अर्थ- कर्म विपाक के वश से शत्रु भी मित्र हो जाता है और मित्र भी शत्रु हो जाता है ऐसा संसार का स्वभाव है ।

५७. ॐ ह्रीं शत्रुमित्रादिकविकल्पसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निष्कामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

कर्मोदय से शत्रु मित्र हो जाते तथा मित्र भी शत्रु ।
यह संसार स्वभाव दुखमयी सचमुच तो है यह जग शत्रु॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५७॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५८)

अब देवगति का स्वरूप कहते हैं -

अह कहवि हवदि देवो,तस्स य जायेदि माणसं दुक्खं।
दट्ठूण महड्ढीणं, देवाणं रिद्धिसंपत्ती ॥५८॥

अर्थ- बड़े कष्ट से देव भी होता है तो उसके बड़े ऋद्धिधारक देवों की ऋद्धि सम्पत्ति को देखकर मानसिक दुःख उत्पन्न होता है ।

५८. ॐ ह्रीं मानसदुःखरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

सहजानंदस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

बड़े कष्ट से सुर पद पाता ऋद्धि महर्धिक सुर की देख।
बहुत मानसिक दुख पाता है अन्य सुरों की संपत्ति देख॥

काल अनादि अनंत जीव है भव सागर है नाथ अनंत।
कभी न सुख पाया प्राणी ने पाए दुख ही दुख भगवंत ॥

अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥५८॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(५९)

फिर वही कहते हैं -

इट्ठविओगं दुक्खं, होदि महद्धीण विसय-तण्हादो ।
विसयवसादो सुक्खं, जेसिं तेसिं कुतो तित्ती ॥५९॥

अर्थ-- विषयों की तृष्णा से महर्द्धिक देवों को भी इष्ट (ऋद्धि, देवांगना आदि) वियोग का दु:ख होता है । जिनके विषयों के आधीन सुख है उनके कैसे तृप्ति होवे ? तृष्णा बढ़ती ही रहे ।

५९. ॐ ह्रीं विषयतृष्णारहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नम ।

निरातङ्कस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

विषयों की तृष्णा से सभी महिर्धिक सुर होते दुखिया ।
इष्ट वियोग यहाँ भी पाते विषयाधीन नहीं सुखिया ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥५९॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६०)

अब शारीरिक दु:ख से मानसिक दु:ख बड़ा है ऐसा कहते हैं-

सारीरियदुक्खादो, माणसदुक्खं हवेइ अइंपउरं ।
माणसदुक्खजुद हि, विसया वि दुहावहा हुंति ॥६०॥

अर्थ- कोई समझता होगा कि शरीर सम्बन्धी दु:ख बड़ा है, मानसिक दु:ख तुच्छ है, उसको समझाते हैं शारीरिक दु:ख से मानसिक दु:ख अतिप्रचुर (बहुत ज्यादा) है कई
गुना बढ़कर होता है (देखो) मानसिक दु:ख सहित पुरुष के अन्य विषय बहुत भी होवें

निज संयम तरणी का लंगर खोलो कर में ले पतवार।
भव लहरों से भय न करो तुम सम्यक् दिशा ग्रहो इस बार॥

तो भी वे उसको दुःखदाई ही दिखते हैं ।

६०. ॐ ह्रीं शारीरिकदुःखरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

सौख्यसिंधुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

शरीरिक दुख प्रबल किन्तु दुख प्रचुर मानसिक होता है।
अन्य विषय सुखदायी हो तो भी बहु दुखिया होता है ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥६०॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६१)

फिर वही कहते हैं-

देवाणं पिय सुक्खं, मणहरविसएहिं कीरदे जदि ही ।
विषयवसं जं सुक्खं, दुक्खस्स वि कारणं तं पि ॥६१॥

अर्थ- यदि देवों के मनोहर विषयों से सुख समझा जावे तो सुख नहीं है जो विषयों के आधीन सुख है वह दुख ही का कारण है ।

६१. ॐ ह्रीं विषयाधीनरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निजाधीनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

देवों के सुख मधुर न जानो उन मे रंच न सुख मानो।
विषयों के आधीन सुखों को दुखका ही कारण जानो ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥६१॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६२)

अब कहते हैं कि इस तरह विचार करने पर कहीं भी सुख नहीं है -

परमात्मा अरु अंतरात्मा अरु बहिरात्मा तीन प्रकार ।
अन्तरात्मा हो परमात्मा का कर ध्यान भ्रान्ति परिहार ॥

तथा एक भव में ही अट्ठारहनाते की कथा प्रसिद्ध ।
भव विडाबना अति विचित्र है मोहजाल में जग है बिद्ध॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥६५॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६६)

अब पाँच प्रकार के संसार के नाम कहते हैं -

संसारो पंचविहो, दव्वे खत्ते तहेव काले य ।
भवभमणो य चउत्थो, पंचमओ भावसंसारो ॥६६॥

अर्थ- संसार पांच प्रकार का है- १. द्रव्य (पुद्गल द्रव्य में ग्रहणत्य जनरूप परिभ्रमण) २. क्षेत्र (आकाश के प्रदेशो में स्पर्श करने रूप परिभ्रमण) ३. काल (काल के समयों में उत्पन्न होने नष्ट होने रूप परिभ्रमण) ४.भव (नारकादि भवका ग्रहण त्यजनरूप परिभ्रमण) ५. भाव अपने कषाययोगों के स्थानकरूप जे भेद उनका पलटने रूप परिभ्रमण) इस तरह पांच प्रकार का संसार जानना चाहिए।

६६. ॐ ह्रीं पञ्चपरिवर्तनरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

शिवधामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पंच परावर्त्तन मय यह संसार परिभ्रमण अति दुख रूप।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव परिवर्त्तनपांचों दुख कूप ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥६६॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६७)

अब इनका स्वरूप कहते हैं, पहिले द्रव्य परिवर्तन बतलाते हैं-

बंधदि मुंचदि जीवो, पडिसमयं कम्मपुग्गला विविहा।
णोकम्मपुग्गला वि य, मिच्छत्तकषायसंजुत्तो ६७॥

बहिरात्मापन त्याग अभी तू आत्म ध्यान में हो जा लीन।
एक मात्र अन्तर्मुहूर्त्त में हो जाएगा कर्म विहीन ॥

अर्थ- यह जीव (इस लोक में भरे हुए) अनेक प्रकार के पुद्गल जो ज्ञानावरणादि कर्मरूप तथा औदारिकादि शरीर नोकर्मरूप हैं उनको समय-समय प्रति मिथ्यात्व कषाय सहित होता हुआ बांधता है और छोड़ता है ।

६७. ॐ ह्रीं ज्ञानावरणादिकर्मपुद्गलरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

अवबोधसिंधुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

प्राणी पुदगल कर्म सहित्त नो कर्म आदि तन पाता है ।
हो मिथ्यात्व कषाय युक्त तजता बाँधता दिखलाता है ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥६७॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६८)

अब क्षेत्र परिवर्तन कहते हैं-

सो को वि णत्थि देसो, लोयायासस्स णिरवसेसस्स।
जत्थ ण सव्वो जीवो, जादो मरिदो य बहुवारं ॥६८॥

अर्थ- समस्त लोकाकाश के प्रदेशों में ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जिसमें ये सब ही संसारी जीव कई बार उत्पन्न न हुए हों तथा मरे न हों ।

६८. ॐ ह्रीं क्षेत्रपरिवर्तनरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

चैतन्यनिवासस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

लोकाकाश प्रदेशों में कोई भी एक प्रदेश नहीं ।
जहाँ न जन्मा बारबार यह अथवा पाप मरण नहीं ॥
ये ही क्षेत्र परावर्त्तन है अति दुख दायी तीनों काल ।
इसका जो उल्लंघन करते पाते वे सिद्धत्व विशाल ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥६८॥

मिथ्या दर्शन मोहित प्राणी नहीं जानता परमात्मा ।
अत: भव भ्रमण पुन: पुन: करता है ऐसा बहिरात्मा ॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(६९)

अब काल परिवर्त्तन को कहते हैं-

उवसप्पिणि अवसप्पिणि, पढमसमयादिचरमसमयंतं।
जीवो कमेण जम्मदि, मरदि य सव्वेसु कालेसु ॥६९॥

अर्थ- उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के पहिले समय से लगाकर अन्त के समय तक यह जीव अनुक्रम से सबही कालों में उत्पन्न होता है तथा मरता है ।

६९. ॐ ह्रीं कालपरिवर्तनररहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नम: ।

निर्बन्धस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

उत्सर्पिणी अव सर्पिणी के पहिले से लेकर अंत समय।
अनुक्रम से सब ही कालों में पाया जन्म मरण दुखमय॥
यही काल परिवर्त्तन है जो रुकता कभी नहीं पलभर।
जीव घोर दुख पाता रहता चैन नहीं मिलता अणुभर ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥६९॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७०)

अब भवपरिवर्त्तन को कहते हैं-

णेरइयादिगदीणं, अवर-ड्डिदो वरड्डिदी जाव ।
सव्वड्डिदिसु वि जम्मदि, जीवो गेवेज्जपज्जंतं ॥७०॥

अर्थ-संसारी जीव नरकादि चार गतियों की जघन्य स्थिति से लगाकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत (तक) सब अवस्थाओं में ग्रैवेयक पर्यन्त जन्म पाता है ।

७०. ॐ ह्रीं भवपरिवर्तनरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नम: ।

निश्चलस्वरूपोऽहं ।

पाप भाव को पाप समझने का यदि तू प्रयत्न कर ले ।
पुण्य भाव स्वयमेव प्रगट हो सारे पाप भाव हरले ॥

छंद ताटंक

संसारी नरकादि चार गति जघन्य उत्कृष्ट स्थिति तक।
सभी अवस्थाओं को पाता जाता है यह ग्रीवक तक ॥
इस भव परिवर्त्तन का है काल अनंतानंत सुनो दे ध्यान।
महामोह मदिरा को पीकर भव परिवर्त्तन पाता अनजान॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥७०॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७१)

अब भावपरिवर्त्तन कहते हैं-

परिणमदि सण्णिजीवो, विविहकसाएहि ट्ठिदिणिमित्तेहिं।
अणुभागणिमित्तेहि य, वट्टं तो भावसंसारे ॥७१॥

अर्थ- भावसंसार में वर्तता हुआ जीव अनेक प्रकार कर्म की स्थितिबन्ध को कारण और अनुभाग बन्ध को कारण अनेक प्रकार के कषायों से सैनी पंचेन्द्रिय जीव परिणमता है।

७१. ॐ ह्रीं भावपरिवर्तनरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

निर्योगस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

यह संसार भाव से पाता स्थिति बंध अरु बंध अनुभाग।
इस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय परिणमता हो प्रेरित राग ॥
यही भाव परिवर्त्तन जो होता रहता है तीनों काल ।
सम्यक् दर्शन हो जाए तो यह क्षय होता है तत्काल ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥७१॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

जो परमात्मा समझ सभी परभावों का करता है त्याग ।
वही जीव है अन्तरात्मा जो भव का करता परित्याग ॥

(७२)

अब पंचपरावर्त्तन के कथन का संकोच करते हैं -

एवं अणआइकाले, पंचपयारे भमेइ संसारे ।
णाणादुक्खणिहाणो, जीवो मिच्छत्त-दोसेण ॥७२॥

अर्थ- इस तरह अनेक प्रकार के दुःखों के निधान पांच प्रकार संसार में यह जीव अनादिकाल से मिथ्यात्व के दोष से भ्रमण करता है ।

७२. ॐ ह्रीं नानादुःखनिधानरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

ब्रह्मानंदस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

इस प्रकार यह पंच प्रकारी जग में भ्रमण कर रहा जीव।
यह अनादि से मिथ्याभ्रम युत प्रतिपल पाता कष्ट सदीव॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥७२॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७३)

अब संसार से छूटने का उपदेश करते हैं-

इय संसारं जाणिय मोहं सव्वायरेण चइऊण ।
तं झायह स-सरूवं, संसरणं जेण णासेइ ॥७३॥

अर्थ- इस तरह संसार को जानकर सब तरह के प्रयत्नपूर्वक मोहको छोड़कर (हे भव्यों !) उस आत्मस्वरूप का ध्यान करो जिससे संसार परिभ्रमण नष्ट हो जावे।

७३. ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मरहितसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय नमः ।

शुद्धबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

इस प्रकार संसार जानकर यत्न पूर्वक मोह हरो ।
यह भव भ्रमण नष्ट हो जाए निज स्वरूप का ध्यान करो॥

पुण्योदय में अन्तरंग भू स्वच्छ बना यदि लेगा तू ।
शुद्ध भाव का बीज स्वयं ही पलभर में बोलेगा तू ॥

अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य ॥७३॥

ॐ ह्रीं संसार भावना प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

सरसी

फल संसार भावना भाने का मैंने पाया ।
आत्म भावना जगी हृदय में उर में हर्षाया ॥
कार्तिकेय की परम कृपा पा सुख अपार पाया ।
मोक्षमार्ग जो बहुत दूर था आज निकट आया ॥

दोहा

एकमात्र संसार में शुद्ध आत्मा सार ।
तत्त्व विचार करूं सदा करूं आत्म उद्धार ॥
महाअर्घ्य अर्पण करूं करूं आत्म कल्याण ।
प्रगटाऊं वैराग्य उर पाऊं पद निर्वाण ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयनुप्रेक्षायां संसारानुप्रेक्षाधिकारेसारस्वरूपचैतन्यरत्नाकराय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छंद मानव

संसार चतुर्गति मय है इसमें दुख भरा अपार ।
बहु पुण्य संयोग मिला है भवदधि का तुम्हें किनारा ॥
संयम तरणी मिलती है इस धर्म घाट पर पावन ।
जो चढ़ जाते हैं इस पर वे हो जाते आनंदघन ॥
तरणी संयम की जाती भव पार तीव्र गति द्वारा ।
निज आत्म ध्यान ध्याते ही आ जाता मुक्ति किनार ॥

निर्मल निश्चल शुद्ध विष्णु जिन बुद्ध शान्त शिव जिसके नाम।
जिन प्रभु कहते वह परमात्मा नहीं भ्रान्ति का इसमें काम॥

संयम कीतराणी से फिर मुनिवर तत्काल उतरते ।
जाते हैं सिद्धपुरी में इस भांति भवोदधि तरते ॥
तनुवात वलय के ऊपर सजता इनका सिंहासन ।
ये एक समय में पाते पर्यकासन पद्मासन ॥
अचलित होते हैं निज में आनंद सुधा रस पीते ।
जीवत्व शक्ति के बल से निज के भीतर ही जीते ॥
अपने स्वभाव के द्वारा भव मुक्त हो गए हैं ये ।
अपनी स्वशक्ति के बल से गुण युक्त हो गए हैं ये ॥
भव रजसे बहुत दूर है है नहीं किसी का चिन्तन ।
है निजानंद रस लीनी परिपूर्ण शुद्ध आनंदघन ॥

ॐ ह्रीं संसार भावना प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

गीतिका

भावना संसार भायी और फल भी हुआ प्राप्त ।
विनलय करं संसार को मैं हो गया अर्हंत आप्त ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षाय नमः

गीत

जय हो जय हो जय हो जय हो जिनदेव आप की जय जय हो ।
जय हो जय हो जय हो जय हो जिनवाणी माता जय हो ॥
जय हो जय हो जय हो जय हो सुगुरु आपकी जय जय हो ।
जय हो जय हो जय हो जय हो देव शास्त्र गुरु की जय हो ॥

आह्वाहन अपने स्वभाव का करके तिष्ठ तिष्ठ कर ले।
उसको ही सन्निहित बना तू सारे मोह दोष हरले ॥

पूजन क्रमांक ५

चतुर्थ अधिकार एकत्वानुप्रेक्षा पूजन

एकत्व भावना

छंद कुन्डलिया

अनुप्रेक्षा एकत्व का चिन्तन न करूं सदैव ।
पर से भिन्न स्वरूप है ज्ञान करूं स्वयमेव ॥
ज्ञान करूं स्वयमेव आत्मा का सुखदायी ।
तज अनात्मा का संबंध महा दुखदायी ॥
परभावों से नहीं रखूं मैं कभी अपेक्षा ।
निज का चिन्तन करूं यही एकत्व अनुप्रेक्षा ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र अवतर अवतर संवोषट्।

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव वषट्।

अष्टक

छंद गीतिका

गुण अनंतानंत जल का स्रोत पाया अंतरंग ।
जन्म मृत्यु जरा विनाशूं ज्ञान की पाकर तरंग ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

देहादिक जो पर पदार्थ हैं उनको जाने जो आत्मा ।
वह संसार भ्रमण करता जिन वचन वही है बहिरात्मा ॥

गुण अनंतानंत चंदन की मिली पावन सुगंध ।
भवातप क्षय करूंगा मैं बनूंगा स्वामी अबंध ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

गुण अनंतानंत के अक्षय महान निजंतरंग ।
प्राप्त अक्षय पद करूंगा उठी उर में यह तरंग ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

गुण अंतानंत पुष्पों का मिला उपवन प्रभो ।
काम नाशक शील गुण प्रगटाउंगा मैं हे विभो ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं नि. ।

गुण अनंतानंत रस नैवेद्य का भंडार है ।
क्षुधारोग विनाश करने को स्व शक्ति अपार है ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

गुण अनंतानंत के दीपक प्रजालूँ अंतरंग ।
पूर्ण केवल ज्ञान पाऊं बनूं स्वामी मैं असंग ॥

मन मस्तिष्क घृणा से पीड़ित तो मानवता दुर्लभ है ।
ऋजुलाभाव न अंतरंग हो फिर पशुता ही तो सुलभ है॥

भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

गुण अनंतानंत की निज धूप भव नाशक मिली ।
अष्ट कर्म विनाश के हित दिव्य ध्वनि उर में झिली ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्ट कर्म दहनाय धूप नि. ।

गुण अनंतानंत तरू फल प्रकट करना है मुझे ।
मोक्ष फल को प्राप्त कर भव भार हरना है मुझे ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्ष फल प्राप्ताय फलं नि. ।

गुण अनंतानंत का यह अर्घ्य श्रेष्ठ महान है ।
पद अनर्घ्यं अपूर्व दाता मोक्ष का जलयान है ॥
भावना एकत्व भाऊँ शान्ति पाने के लिए ।
सुदृढ़ उर वैराग्य जागे मोक्ष जाने के लिए ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

(७४)

एकत्वानुप्रेक्षा

इक्को जीवो जायदि, इक्को गब्भम्मि गिह्णदे देह ।
इक्को बाल जुवाणो, इक्को वुढ्ढो जरागहिओ ॥७४॥

देह आदि जो पर पदार्थ हैं वे न आत्मा हैं लो जान ।
अतः जीव तू मात्र आत्मा को ही सदा आत्मा मान ॥

अर्थ- जीव एक ही उत्पन्न होता है वह ही एक गर्भ में देहको ग्रहण करता है वह ही एक बालक होता है, वह ही एक जवान होता है वह ही एक जरा से-बुढ़ापे से गृहीत वृद्ध होता है ।

७४. ॐ ह्रीं परमानंदैकत्वस्वरूपाय नमः ।

एकत्वविभक्तस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव एक उत्पन्नित होता एक गर्भ में देह ग्रहण ।
एकहि बालक तरुण एक ही करता रहता जरा ग्रहण ॥
अनुप्रेक्षा संसार चिन्तवन से उर मे जगता वैराग्य ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त कर पाता शिव पथ का सौभाग्य॥७४॥

ॐ ह्रीं संसारानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७५)

फिर वही कहते हैं -

इक्को रोई सोई, इक्को तप्पेई माणसे दुक्खे ।
इक्को मरदि वराओ, णरयदुहं सहदि इक्को वि ॥७५॥

अर्थ- एक ही जीव रोगी होता है, वह ही एक जीव शोक सहित होता है वह ही एक जीव मानसिक दुःख से तप्तायमान होता है वह ही एक जीव मरता है वह ही एक जीद दीन होकर नरक के दुःख सहता है।

७५. ॐ ह्रीं रोगशोकादिविकल्परहितैकत्वस्वरूपाय नमः ।

अशोकस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एक हि रोगी एक हि शोक सहित तप्ताय मानत रहता ।
एक हि मरता एक हि दीन बना नरकों के दुख सहता ॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥७५॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

पर विभाव परिणति फिर तुझको कभी न बहका पाएगी।
फिर न पुण्य की आवश्यकता भी तुझे सताने आएगी ॥

(७६)

फिर वही कहते हैं -

इक्को संचदि पुण्णं, इक्को भुंजेदि विविहसुरसोक्खं ।
इक्को खवेदि कम्मं, इक्को वि य पावए मोक्खं ॥७६॥

अर्थ- एक ही जीव पुण्यका संचित करता है वह ही एक जीव नाना प्रकार के देवगति के सुख भोगता है वह ही एक जीव कर्म को नष्ट करता है वह ही एक जीव मोक्ष को पाता है ।

७६. ॐ ह्रीं विविधसुरसौख्यादिविकल्परहितैकत्वस्वरूपाय नमः ।

परमदेवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

एक हि पुण्य सुसंचित करता एक हि पाता स्वर्ग प्रधान।
एक हि कर्म नष्ट करता है एक हि पाता है निर्वाण ॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥७६॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७७)

फिर वही कहते हैं-

सुयणो पिच्छंतो वि हु, ण दुक्खलेसंपि सक्कदे गहिदुं।
एवं जाणंतो वि हु, तो वि ममत्तं ण छंडेइ ॥७७॥

अर्थ- स्वजन (कुटुम्बी) भी जब यह जीव दुःख में फंस जाता है तब उसको देखता हुआ भी दुःख का लेश भी ग्रहण करने को समर्थ नहीं होता है इस तरह प्रत्यक्षरूप से जानता हुआ भी कुटुम्ब से ममत्व नहीं छोड़ता है ।

७७. ॐ ह्रीं मातृपितृभ्रातृपुत्राद्यात्मजनविकल्परहितैकत्वस्वरूपाय नमः ।

निजानंतवीर्यस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

यदि तू आत्मा को आत्मा समझेगा तो होगा निर्वाण ।
पर पदार्थ को आत्मा मानेगा तो भव दुख घोर महान ॥

कोई स्वजन न दुक्ख बँटाता अपन दुक्ख भोगता आप।
फिर भी यह अज्ञारी प्राणी पर ममत्व का तजे न पाप॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥७७॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७८)

अब कहते हैं कि इस जीव के निश्चय से धर्म ही स्वजन है-

जीवस्स णिच्चयादो, धम्मो दहलक्खणो हवे सुयणो ।
सो णेइ देवलोए, सो चिय दुक्खक्खयं कुणइ ॥७८॥

अर्थ- इस जीव के अपना हितू निश्चय से एक उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म ही है क्योंकि वह धर्म ही देवलोक (स्वर्ग) में ले जाता है वह धर्म ही दुःखों का क्षय (मोक्ष) करता है।

७८. ॐ ह्रीं निजधर्मैकत्वस्वरूपाय नमः ।

अचलबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एक हि उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म धारता है ।
देव लोक में ले जाता है धर्म मोक्ष का दाता है ॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥७८॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(७९)

अब कहते हैं कि इस तरह से अकेले जीव को शरीर से भिन्न जानना चाहिये -

सव्वायरेण जाणह, इक्कं जीवं सरीरदो भिण्णं ।
जम्हि दु मुणिदे जीवो, होदि असेसं खणे हेयं ॥७९॥

अर्थ- हे भव्यजीवो ! अकेले जीव को शरीर भिन्न (अलग) सब प्रकार के प्रयत्न करके

अन्यायों पर क्रोध न हो तो फिर तेरे पौरुष से क्या ।
चिर प्रचलित रूढ़ियाँ न नाशी तो उत्तम विचार से क्या॥

जानो जिस जीव के जान लेने पर अवशेष (बाकी बचे) सब परद्रव्य क्षणमात्र में त्यागने योग्य होते हैं ।

७९. ॐ ह्रीं कर्मनोकर्मादिरहितैकत्वस्वरूपाय नमः ।

शुद्धचिद्रूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एकाकी जब जीव देह से भिन्न स्वयं को जानेगा ।
पलभर में परद्रव्य त्याग कर निज स्वरूप को पाएगा ॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥७९॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

दोहा

अनुप्रेक्षा एकत्व ही शाश्वत शान्ति प्रदाय ।
एक आत्मा आप ही उत्तम शिव सुख दाय ॥
दर्शन ज्ञान स्वरूप है लक्षण है उपयोग ।
भव भावों से दूर है रंच न पर संयोग ॥
एकाकी निज आत्मा के अनात्मा संग ।
संगति छोड़ अनादिकी होना है निस्संग ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयनुप्रेक्षायां एकतत्वानुप्रेक्षाधिकारे शुद्धबुद्धैकस्वरूपाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

छंद गीतिका

ज्ञान गंगा सुतट से भी लाभ कुछ होता नहीं ।
ज्ञान गंगा में नव्हन बिन भ्रम कभी खोता नहीं ॥
तीर्थ क्षेत्रों में गया है तू अनंतो बारोही ।
आत्म तीरथ में गए बिन भ्रम न क्षय होता कहीं ॥

यदि इच्छा से रहित सुतप करके लेगा आत्मा को जान।
निश्चित शुद्ध परम गति होगी फिर भव भ्रमण न होगा मान ॥

आरती करता सदा तू याचना का भाव ले ।
याचना जब तक रहेगी स्वरुचि युत होता नहीं ॥
प्राग्भरा धरा शिखर कल्याण कर सकता नहीं ।
मुक्ति का परिपूर्ण सुख पल मात्र दे सकता नहीं ॥
मुक्ति सुख तो आत्मा का सहज शुद्ध स्वभाव है ।
सहज शुद्ध स्वभाव बिन प्रभु मुक्ति हो सकती नहीं ॥
प्राग्भरा गया अनंतो बार तू पा कर निगोद ।
आत्मा के भान बिन ध्रुव शक्ति हो सकती नहीं ॥

ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्य नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

अनुप्रेक्षा एकत्व ही सिद्ध स्वपद दातार ।
भव भावों से हो प्रथक पाऊं सौख्य अपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं एकत्वानुप्रेक्षाय नमः

भजन

तप न कर्म की दुख देती है सुख हरती है ।
लगन धर्म की सुख देती है दुख हरती है ॥
जो आत्मा में प्रतपन करते सुख पाते हैं ।
पुण्य पाप में जब तक रहते दुख पाते हैं ॥
दोनों में से क्या उत्तम है निर्णय कर लो ।
निर्णय करके सम्यक् पत्त पा भव दुख हर लो ॥
मुक्ति वधू की मुसकानों पर यदि रीझोगे ।
तो तुम अलप समय में हीं लीझोगे ॥
भव तन भोगों के चक्कर से जब खीजोगे।
निज अनुभव रस में तुम तुम पूरे भीजोगे ॥

दृष्टि स्वयं केवल अपने ज्ञायक पर तेरी रीझेगी ।
इस उपाय से ही निजात्मा इक मुहूर्त्त में सीझेगी ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ६

पंचम अधिकार अन्यत्वानुप्रेक्षा पूजन

अन्यत्व भावना

स्थापना

छंद गीतिका

आत्मा को छोड़ कर पर द्रव्य सारे अन्य है ।
भावना अन्यत्व जो भाते वही तो धन्य हैं ॥
विनय से पूजन करूं मैं विनय से वंदन करूं ।
भावना अन्यत्व भाकर सर्व भव बंधन हरूं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र मम सन्निहितों भव वषट्।

अष्टक

छंद भुजंगी

सभी से पृथक हूं सभी से अलग हूं ।
त्रिविध रोग क्षय के लिए मैं सजग हूँ ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

परिणामों से बंध कहा है परिणामों से मोक्ष कहा ।
इसे जानकर निज परिणामों की संभाल कर यही कहा॥

विभावों से संपूर्ण मैं तो अलग हूं ।
भवातप के क्षय को सदा मैं सजग हूं ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

शुभाशुभ मयी आस्रव से अलग हूँ ।
स्व पद शुद्ध अक्षय के हित मैं सजग हूं ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

प्रभो काम की भावना से अलग हूं ।
महादुष्ट कंदर्प क्षय को सजग हूं ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. ।

मैं रागों के भोजन से स्वामी अलग हूं ।
सुचरु ज्ञान पाने को प्रभु मैं सजग हूँ ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

महा मोह मिथ्यात्व से मैं अलग हूं ।
परम ज्ञान पाने को मैं प्रभु सजग हूं ॥

स्वर्णिम वाक्य सुने मुनियों के किन्तु उतारे नहीं ह्रदय।
अकर्मण्य जीवन जीता है कैसे पाए ज्ञान निलय ॥

प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

सकल कर्म रज से सदा मैं अलग हूं ।
परम शुद्ध होने को मै प्रभु सजग हूं ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. ।

प्रभो दुष्ट संसार फल से अलग हूं ।
महा मोक्ष फल पाने को मैं सजग हूं ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्ष फल प्राप्ताय फलं नि. ।

सदा ही कुध्यानों से मैं प्रभु अलग हूं ।
अनर्घ्य स्वपद के लिए मैं सजग हूं ॥
प्रभो भावना नित्य अन्यत्व भाऊँ ।
सदा भिन्न पर से स्वयं को ही ध्याऊं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

(८०)

अन्यत्वानुप्रेक्षा

अण्णं देहं गिह्णदि, जणणी अण्णा य होदि कम्मादो।
अण्णं होदि कलत्तं, अण्णो विय जायदे पुत्तो ॥८०॥

योगसार की पावन महिमा उर अंतर में जगे प्रवीण ।
यदि आत्मा को ना जानेगा पुण्य पुण्य में ही रह लीन ॥

अर्थ- यह जीव संसार में देहको ग्रहण करता है सो अपने से अन्य (भिन्न) है और माता भी अन्य है स्त्री भी अन्य होती है पुत्र भी अन्य ही उत्पन्न होता है ये सब कर्म संयोग से होते हैं ।

८०. ॐ ह्रीं देहपुत्रादिसम्बन्धरहितनिजचित्स्वरूपाय नमः ।

स्वरूपसिद्धोऽहं ।

वीरछंद

देह गृहीत अन्य है पाता अन्य मातु पत्नी भी अन्य ।
यह सब कर्म संयोग जानना पुत्र आदि सब कुछ हैं अन्य॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥८०॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(८१)

फिर वही कहते हैं-

एवं वाहिरदव्वं, जाणदि रूवादु अप्पणो भिण्णं ।
जाणंतो वि हु जीवो, तत्थेव य रच्चदे मूढो ॥८१॥

अर्थ- इस तरह पहिले कहे अनुसार सब बाह्य वस्तुओं को अपने (आत्म) स्वरूप से भिन्न जानता है तो भी प्रत्यक्षरूप से जानता हुआ भी यह मूढ (मोही) जीव उन पर द्रव्यों में ही राग करता है। सो यह बड़ी मूर्खता है ।

८१. ॐ ह्रीं धनधान्यादिबाह्यद्रव्यविकल्परहितनिजचित्स्वरूपाय नमः ।

निजद्रूपोऽहं ।

वीरछंद

बाहय वस्तु अपने स्वरूप से भिन्न सदा जानो प्रत्यक्ष ।
फिर भी पर द्रव्यों में करता राग मूढ़ यह कैसा दक्ष ॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥८१॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

पुन: पुन: भव में भटकेगा सिद्ध स्वसुख से सदा विहीन॥
कब तक मूढ़ परिस्थिति बदलेगा तू जड़ तन के द्वारा।

(८२)

फिर वही कहते हैं-

जो जाणिऊण देहं, जीवसरूवादु तच्चदो भिण्णं ।
अप्पाणं पि य सेवदि, कज्जकरं तस्स अण्णत्तं ॥८२॥

अंर्थ- जो जीव अपने स्वरूप से देहको परमार्थ से भिन्न जानकर आत्मस्वरूपको सेता है (ध्यान करता है) उसके अन्यत्वभावना कार्यकारिणी है ।

८२. ॐ ह्रीं शरीरगेहविकल्परहितनिजचित्स्वरूपाय नमः ।

शिवगेहस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो अपनो स्वरूप को तन से भिन्न सदा करता परमार्थ।
आत्म स्वरूप ध्यान करता है वह अन्यत्व भाव सत्यार्थ॥
अनुप्रेक्षा एकत्व चिन्तवन परमावश्यक प्राणी को ।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्त हो जाता है इस प्राणी को ॥८२॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

दोहा

आर्तरौद्र दुर्ध्यान का कीजे आप अभाव ।
धर्म ध्यान की शक्ति से लखिये शुद्ध सस्वभाव ॥
शुक्ल ध्यान फिर ध्याइये कीजे कर्म अभाव ।
महामोक्ष पद पाइये प्रगटा आत्म स्वभाव ॥
ध्रौव्य त्रिकाली शुद्ध पर दीजे अपनी दृष्टि ।
फिर सक्रिय हो जाइये निज में हो सम दृष्टि ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षायां अन्यत्वानुप्रेक्षाधिकारे निजचितस्वरूपाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम आत्मदर्शन ही केवल मोक्ष प्राप्ति का कारण एक।
अन्य न कारण मोक्ष प्राप्ति का कहीं कभी भी कोई एक॥

जयमाला

छंद ताटंक

कल कल करते करते हमने लाखों कल्प गंवाए हैं ।
अब तक नहीं आज को जाना इसीलिए दुख पाए हैं ॥
अगर जागते तो सुख होता, दूर हमारा भव दुख होता।
पाप पुण्य भावों से बचते यही भाव अब भाए है ॥
जागा आत्म स्वभाव हमारा, भागा सकल विभाव हमारा।
हमने तो निज शुद्धात्मा के गीत आज से गाए हैं ॥
मोह गरल हमने त्यागा है, चिर मिथ्यात्व त्वरित भागा है।
ज्ञानामृत रस धारा पायी उर में आनंद छाए हैं ॥
पाया है संसार किनारा, प्रगटा सम्यक् दर्शन प्यारा ।
संयम की तरणी पाते ही अनुभव रस बरसाए हैं ॥
शुक्ल ध्यान की पवन मिली है, यथाख्यात की शक्ति झिली है।
केवल ज्ञान सूर्य के दर्शन देखो हमने पाए हैं ॥
युगपत लोकालोक झलकता, सिद्ध स्वपद निज हृदय ललकता।
निजानंद रसलीन हुए हैं निज के गीत सुनाए हैं ॥
भव दुख सारा विघट हुआ है, सिद्ध स्वपद अब निकट हुआ हैं।
नयातीत पक्षातिक्रान्त हो सिद्ध पुरी में आए हैं ॥

ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

अनुप्रेक्षा अन्यत्व ही भेद ज्ञान का मूल ।
भेद ज्ञान निधि प्राप्त कर क्षय कर कर्म समूल ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मंत्र ॐ ह्रीं अन्यत्वानुप्रेक्षाय नमः

सत्याचरण सहज अपना कर सारे पापों को हरले।
त्वरित स्वरूपाचरण शक्ति से पुण्यों के कसबल हरले॥

ॐ

पूजन क्रमांक ७

षष्टम अधिकार अशुचित्वानुप्रेक्षा पूजन

(अशुचि भावना)

स्थापना

छंद राधिका

नव द्वार घृणितं तन में घिनकारी बहते।
जो ज्ञानी होते हैं इन संग ना रहते॥
शुचिमय स्वभाव अपना ध्रुव है त्रैकालिक।
परिपूर्ण समुज्ज्वल है पूरा अकषायिक॥
इसका ही आश्रय लेकर शिव सुख पाओ।
भव भाव मलिन तज दो ध्रुव शुचिता लाओ॥

ॐ ह्रीं शुचित्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं शुचित्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं शुचित्वानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव वषट्।

अष्टक

ताटंक

पर परणति से सम्मोहित हो इस भव जल का पान किया।
जन्म जरादिक मरण व्याधि का नही कभी अवसान किया॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय जन्म जरा मृत्यु

गुणस्थान मार्गणा आदि का कथन कहाता है व्यवहार ।
परमेष्ठी पद पाना है तो निज आत्मा का करो विचार ॥

विनाशनाय जलं नि. ।

पर परिणति से सम्मोहित चंदन पाया तन ज्वर नाशक।
अब तो मैंने पाया प्रभु शीतल चंदन भव ज्वर नाशक ॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय संसार ताप विनाशनाय चदनं नि. ।

पर परिणति से सम्मोहित हो भव वर्धक तंदुल लाया।
अक्षय सुख देखा न कभी अक्षय पद पास नहीं आया॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

पर परिणति से सम्मोहित कामाग्नि बढ़ायी प्रभु प्रतिपल।
कुसुमांजलि यह शील स्वगुण की निज को कभी न की अर्पण॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. ।

पर परिणति से सम्मोहित हो षट रस व्यंजन ही खाए ।
क्षुधा रोग क्षय के अवसर प्रभु मैंने कभी नहीं पाए ॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

मानव को तृष्णा का ओछापन ही प्रतित कराता है ।
तृष्णाओं को जब जय करता हृदयकमल मुसकाता है ॥

पर परिणति से सम्मोहित हो भ्रम अज्ञान हृदय भाया।
निज विज्ञान ज्ञानघन भूला भव विभ्रम में भरमाया ॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

पर परिणति से सम्मोहित हो धूप न शुद्ध सुहाई है ।
कर्मो के क्षय की बेला भी आयी किन्तु गंवायी है ॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं नि. ।

पर परिणति से सम्मोहित हो भव फल ही खाए दुखमय।
मुझे न अब तक ज्ञात हुआ है महामोक्ष फल ही सुखमय॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

पर परिणति से सम्मोहित हो अर्घ्य बनाए दुखदायी ।
पद अनर्घ्य कैसे पाता देखी न आत्मा सुखदायी ॥
अशुचि भावना अंतरंग से मैंने कभी नहीं भायी ।
निज की अजर अमर अविनाशी स्वछवि नहीं प्रभु दर्शायी ॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

घर में रह जो उपादेय अरु हेय आदि सम जानेगे ।
वे ही शिवपद को पाएंगे जो जिनवर को ध्याएंगे ॥

अर्घ्यावलि

(८३)

अशुचित्वानुप्रेक्षा

सयलकुहियाण पिंडं, किमिकुलकलियं अउव्वदुग्गंधं।
मलमुत्ताणं य गेहं, देहं जाणेहि असुइमयं ॥८३॥

अर्थ- हे भव्य ! तू इस देहको अपवित्रमयी जान। कैसा है देह? १. सकल (सब) कुत्सित निंदनीय) पदार्थों का पिंड (समूह) है २. कृमि (पेट में रहने वाले लट आदि) तथा अनेक प्रकार के निगोदादिक जीवों से भरा है ३. अत्यन्त दुर्गंधमय है ४. जो मलमूत्र का घर है।

८३. ॐ ह्रीं अशुचिमयदेहविकल्परहितपवित्रसस्वरूपाय नमः ।

शुचिस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अशुचि घृणित अपवित्र देह यह कृमिकुल कलित कोष दुर्गंध।
मल मूत्रादिक का यह गृह है बहु जीवों से भरा कुरन्ध्र॥
अनुप्रेक्षा अशुचित्व चिन्तवन तन ममत्व का करता नाश।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्ति में सक्षम देता विमल प्रकाश॥८३॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय नि. ।

(८४)

अब कहते हैं कि यह देह अन्य सुगन्धित वस्तुओं को भी अपने संयोग से दुर्गंधित करता है-

सुट्ठु पवित्तं दव्वं, सरस-सुगंधं मणोहरं जं पि।
देह-णिहित्तं जायदि, घिणावणं सुट्ठु-दुग्गंधं ॥८४॥

अर्थ- इस शरीर में लगाये गये अत्यन्त पवित्र सरस और सुगन्धित मनको हरने वाले द्रव्य भी घिनावने तथा अत्यन्त दुर्गंधित हो जाते है।

मानवता की आभा के बिन मानवता का नाम नहीं ।
मानव यदि सत्संगी हो तो फिर कुसंग का काम नहीं ॥

८४. ॐ ह्रीं सुगंधदुर्गंधविकल्परहितपवित्रस्वरूपाय नमः ।

अगंधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

शुद्ध पवित्र पदार्थ धृणित बन जाते पा इसका संबंध ।
मनहर द्रव्य घिनौने बनते त्याग योग्य आती दुर्गन्ध ॥
अनुप्रेक्षा अशुचित्व चिन्तवन तन ममत्व का करता नाश।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्ति में सक्षम देता विमल प्रकाश॥८४॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय नि. ।

(८५)

और भी इस शरीर को अशुचि दिखाते हैं-

मणुयाणं असुइमयं, विहिणा देहं विणिम्मियं जाण ।
तेसिं विरमण-कज्जे, ते पुण तत्थेव अणुरत्ता ॥८५॥

अर्थ- हे भव्य ! यह मनुष्यों का देह कर्म के द्वारा अशुचि रचा गया जान । यहां ऐसी उत्प्रेक्षा (सम्भावना) करते हैं कि यह देह इन मनुष्यों को वैराग्य उत्पन्न होने के लिए ही ऐसा बनाया है परन्तु ये मनुष्य उसमें भी अनुरागी होते हैं सो यह अज्ञान है ।

८५. ॐ ह्रीं अपवित्रदेहानुरक्ततारहितपवित्रस्वरूपाय नमः ।

निर्मलस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मनुज देह कर्मों के द्वारा रची गई यह अशुचि सुजान ।
यह वैराग्य हेतु है फिर भी इससे मोह महा अज्ञान ॥
अनुप्रेक्षा अशुचित्व चिन्तवन तन ममत्व का करता नाश।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्ति में सक्षम देता विमल प्रकाश॥८५॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय नि. ।

(८६)

और भी इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं-

आत्म देव का चिन्तन सुमिरण ध्यान सदा जो करते है।
क्षण भर में पद परम प्राप्त कर सारे भवदुख हरते है॥

एवं विहं पि देहं, पिच्छंता वि य कुणंति अणुरायं ।
सेवंति आयरेण य, अलद्धपुव्वं त्ति मण्णंता ॥८६॥

अर्थ- इस तरह पहिले कहे अनुसार अशुचि शरीर को प्रत्यक्ष देखता हुआ भी यह मनुष्य उसमें अनुराग करता हैं जैसे ऐसा शरीर कभी पहिले न पाया हो ऐसा मानता हुआ आदरपूर्वक इसकी सेवा करता है सो यह बड़ा अज्ञान है ।

८६. ॐ ह्रीं मलमूत्रादिसप्तधातुविकल्परहितपवित्रस्वरूपाय नमः ।

विमलचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अशुचि देह प्रत्यक्ष जानकर जो करता तन से अनुराग।
जैसे पहिले कभी न पायी हो अतएव बहुत है राग ॥
यह अज्ञान महादुखमय है दुखदाता है निस्संदेह ।
ज्ञानी इसमें राग न करते क्षण भर करते नहीं सनेह ॥
अनुप्रेक्षा अशुचित्व चिन्तवन तन ममत्व का करता नाश।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्ति में सक्षम देता विमल प्रकाश॥८६॥

ॐ ह्रीं अशुचियानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय नि. ।

(८७)

अब कहते है कि इस शरीर से विरक्त होने वाले के अशुचि भावना सफल है-

जो परदेहविरत्तो, णियदेहे ण य करेदि अणुरायं ।
अप्पसरूव सुरत्तो, असुइत्ते भावणा तस्स ॥८७॥

अर्थ- जो भव्य परदेह (स्त्री आदिक की देह) से विरक्त होकर अपने शरीर में अनुराग नहीं करता है अपने आत्मस्वरूप में अनुरक्त रहता है उसके अशुचि भावना सफल है।

८७. ॐ ह्रीं परदेहममत्वरहितपवित्रस्वरूपाय नमः ।

अमलबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मिथ्या अहंकार क्षय हो तो मानव गरिमा पाता है ।
सदाचरण से आत्म लोक के ही प्रकाश को पाता है ॥

जो प्राणी पर देह रहित हो करते नहीं देह से राग ।
आत्म स्वरूप रत्त रहते हैं अशुचि भावना पाय विराग ॥
देह स्वरूप विचार हृदय में तब वैराग्य भाव झिलता ।
तब सत्यार्थ भावना होती अशुचि भावना फल मिलता ॥
अनुप्रेक्षा अशुचित्व चिन्तवन तन ममत्व का करता नाश।
ज्ञान ध्यान वैराग्य प्राप्ति में सक्षम देता विमल प्रकाश॥८७॥

ॐ ह्रीं अशुच्यिानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्यं

गीतिका

अशुचिता हर ध्रुव स्वभावी रूप का ही ध्यान कर ।
गर्जना जिनराज की सुन कर्म का अवसान कर ॥
लक्ष्य में ले ध्रुव त्रिकाली फिर सहज प्रारंभ कर ।
मुक्ति पद को प्राप्त कर ले कषायों के दंभ हर ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयनुप्रेक्षायां अशुचित्वानुप्रेक्षाधिककारे पवित्रस्वरूपाय महाअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

चेतन कुमार चलो भव सागर पार ।
चेतन कुमार चलो सिद्धों के द्वार ॥
निज आत्मा का तुम निश्चय करो ।
अपने स्वरूप का निर्णय करो ॥
चेतन कुमार खोलो अन्तर के द्वार ।
चेतन कुमार चलो भव सागर पार ॥
निज आत्मा का ही करो आप ध्यान ।
छोड़ो दुर्ध्यान सभी दुखमय पिछान ॥
चेतन कुमार करो निज का शृंगार।

मोक्ष मार्ग में हे योगीजन निश्चय से तुम यह जानो ।
शुद्धात्मा में अरु जिनवर में भेद नहीं कुछ भी मानो ॥

चेतन कुमार चलो भव सागर पार ॥
अनुभव रस पान करो होकर निर्द्वंद ।
हो जाओगे साम्य भाव से अद्वंद ॥
चेतन कुमार करो तत्त्व विचार ।
चेतन कुमार चलो भव सागर पार ॥
संयम का आनंद ही और है ।
रत्नत्रय त्रिभुवन में सिर मौर है ॥
चेतन कुमार हदो सारे विकार ।
चेतन कुमार चलो भव सागर पार ॥
निज पर्याय दृष्टि तजो दुख से भरी ।
है द्रव्य दृष्टि पूर्ण सुख से भरी ॥
चेतन कुमार लो सुख अपरंपार ।
चेतन कुमार चलो भव सागर पार ॥
सिद्धों ने भेजा निमंत्रण तुम्हें ।
दर्शाया निज पद विलक्षण तुम्हें ॥
चेतन कुमार करो कर्मो को क्षार ।
चेतन कुमार चलो भव सागर पार ॥
शिव सौख्य पाने का तुमको अधिकार ।
थोड़े से श्रम से लो शुचिता अपार ॥
चेतन कुमार करो भव दुख संहार ।
चेतन कुमार चलो भव सागर पार ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयनुप्रेक्षायां अशुचित्वानुप्रेक्षाधिककारे पवित्रस्वरूपाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अशुचि भावना सबल से शुचिता कर ले प्राप्त ।
कुछ दिन में हो जाएगा तू भी जिनवर आप्त ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मंत्र- अशुचित्वानुप्रेक्षाय नमः

इन्द्र धनुष की भांति विनश्वर दिवा स्वप्न कर्मो के तज।
तू तो केवल ज्ञायक ही है ज्ञायक के धर्मो को भज ॥

पूजन क्रमांक ८

सप्तम अधिकार आस्रवानुप्रेक्षा पूजन

(आस्रव भावना)

दिग्वधू

आस्रव अनुप्रेक्षा की महिमा को पहचानो ।
सब पाप पुण्य आस्रव दुखदायी हैं मानो ॥
पापास्रव नरकों में ले जाता प्राणी को ।
पुण्यास्रव स्वर्गो में ले जाता प्राणी को ॥
पर दोनों ही दुखमय यह बात नहीं जानी ।
इनमें जो भेद करे वह तो है अज्ञानी ॥
जो भेद नहीं करता वह हो जाता ज्ञानी ।
अर्हंत स्वपद पाता होता केवल ज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छंद रोला

अर्चनीय शुद्धात्म तत्त्व उर में दर्शाया ।
आस्रव अनुप्रेक्षा चिन्तन अब मुझको भाया ॥
अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व जल कैसे पाऊं ।
जन्म जरा मरणादि रोग कैसे विनशाऊं ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

जिन आगम का सार श्रेष्ठ माया तज योगी जन जानो।
शुद्धातम अरु श्री जिनेन्द्र में अन्तर नहीं सत्य मानो ॥

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व चंदन कब पाऊं ।
भव ज्वर को क्षय कर शीतलता उर में लाऊं ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसारताप विनाशनाय चदनं नि. ।

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व अक्षत कब पाऊं ।
अक्षय पद भावना सफल कैसे कर पाऊं ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व के पुष्प सुहाए ।
कामबाण क्षय कर्त्ता शील स्वगुण ना भाएं ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि.।

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व नैवेद्य चाहिए ।
क्षुधा रोग का नाश सर्वथा अभी चाहिए ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व की ज्योति न पायी ।
जड़ दीपक की लौ में प्रभु शुद्धात्म जलायी ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व की धूप न भायी ।
कर्म नाश की सकल क्रिया है नाथ भुलायी ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्ट कर्म विध्वंसनाय धूपं नि. ।

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व के फल न मिले प्रभु ।
महा मोक्ष फल के तरुवर भी नहीं फले प्रभु ॥

मोक्षमार्ग में मंथर गति से कार्य न होने पाता है ।
सतत अनवरत गति हो तो ही लक्ष्य पूर्ण हो जाता है॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि.।

अविनाशी शुद्धात्म तत्त्व के अर्घ्य बनाता ।
तो अनर्घ्य पद निमिष मात्र में प्रभु मैं पाता ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि. ।

अर्घ्यावलि

(८८)

आस्रवानुप्रेक्षा

मणवयणकायजोया, जीवपयेसाणफंदणविसेसा ।
मोहोदएण जुत्ता, विजुदा वि य आसवा होंति ॥८८॥

अर्थ- मन वचन काय योग हैं वे ही आस्रव हैं। कैसे हैं? १. जीव के प्रदेशों का स्पंदन (चलायमान होना, कांपना) विशेष है वह ही योग है २. मोहके उदय सहित हैं और ३. मोह के उदय रहित भी हैं ।

८८. ॐ ह्रीं मनवचनकाययोगजनितास्रवरहितनिरास्रवस्वस्वरूपाय नमः ।

अयोगस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जीव प्रदेशों का स्पंदन जो विशेष है वह है योग ।
यही आस्रव कहलाता जब होता मन वच काय संयोग ॥
यह मिथ्यात्व कषाय सहित है यही सांपरायिक आस्रव ।
मोह उदय से रहित आस्रव होता ईर्या पथ आंस्रव ॥८८॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररुरूक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(८९)

अब मोह के उदय सहित आस्रव हैं ऐसा विशष कहते हैं

मोहविवागवसादो, जे परिणामा हवंति जीवस्स ।
ते आसवा मुणिज्जसु मिच्छत्ताई अणेय-विहा ॥८९॥

अर्थ- मोह के उदय से जो परिणाम इस जीवके होते हैं वे ही आस्रव हैं तू प्रत्यक्षरूप

जो परमात्मा है वह मैं हूं जो मैं हूं वह परमात्मा ।
हे योगी सब विकल्प छोड़ो जानो अपना परमात्मा ॥

से ऐसे जान । वे परिणाम मिथ्यात्वको आदि लेकर अनेक प्रकार के हैं ।

८९. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वाद्यनेकविधशुभाशुभास्रवरहितनिरास्रवस्वरूपाय नमः ।

निष्कायस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मोह उदय से जो परिणाम जीव के होते वह आस्रव ।
मिथ्यात्वादिक के परिणाम इन्हें प्रत्यक्ष जान आस्रव ॥
आस्रव अनुप्रेक्षा का चिन्तन आस्रव का निरोध करता ।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर रागों का विरोध करता ॥८९॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९०)

अब पुण्य पाप के भेद से आस्रव को दो प्रकार का कहते हैं-

कम्मं पुण्णं पावं हेउ, तेसिं च होंति सच्छिदरा ।
मंदकसाया सच्छा, तिव्वकसाया असच्छा हु ॥९०॥

अर्थ- कर्म, पुण्य, पाप के भेद से दो प्रकार का है और उनके कारण भी सत् (प्रशस्त) इतर (अप्रशस्त) दो ही होते हैं उनमें मंदकषाय परिणाम तो प्रशस्त (शुभ) हैं और तीव्र कषाय परिणाम अप्रशस्त (अशुभ) हैं ।

९०. ॐ ह्रीं कषायनोकषायरहितनिरास्रनस्वरूपाय नमः।

निर्मलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पुण्य पाप दो भेद कर्म के इक प्रशस्त दूजा अप्रशस्त ।
मंद कषायी तो प्रशस्त है तीव्र कषाय भाव अप्रशस्त ॥
पंच प्रकार आस्रव चिन्तन करके तज दो राग विकार ।
नित्य निरंजन निज स्वरूप ध्या यही भावना का है सार॥
आस्रव अनुप्रेक्षा का चिन्तन आस्रव का निरोध करता ।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर रागों का विरोध करता ॥९०॥

एक मात्र अंतमुहूर्त में हो जाता है केवलज्ञान ।

फिर उसके पश्चात प्राप्त कर एक समय में पद निर्वाण॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९१)

अब मंद तीव्रकषाय को प्रगट दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं-

सव्वत्थ वि पियवयणं, दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं।

सव्वेसि गुणगहणं, मंदकसायाण दिट्ठंता ॥९१॥

अर्थ- १. सब जगह शत्रु तथा मित्र आदि में तो प्रिय हितरूप वचन २. दुर्वचन सुनकर दुर्जन में भी क्षमा करना ३. सब जीवों के गुण ही ग्रहण करना ये मन्दकषाय के दृष्टान्त हैं ।

९१. ॐ ह्रीं मन्दकषायकारणप्रियवचनविकल्परहतनिरास्रवस्वरूपाय नमः ।

निर्वचनस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सभी जगह पर शत्रु मित्र प्रिय दुर्वच सुनकर क्रोध न होय।

क्षमा भाव हो सदा गुण ग्रहण मंद कषाय भाव ही होय॥

पंच प्रकार आस्रव चिन्तन करके तज दो राग विकार ।

नित्य निरंजन निज स्वरूप ध्या यही भावना का है सार॥

आस्रव अनुप्रेक्षा का चिन्तन आस्रव का निरोध करता ।

भाव शुभाशुभ का अभाव कर रागों का विरोध करता ॥९१॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९२)

फिर वही कहते हैं -

अप्पपसंसणकरणं पुज्जेसु वि दोसगहणसीलत्तं ।

वेरधरणं च सुइरं, तिव्वकसायाण लिंगाणि ॥९२॥

अर्थ- १. अपनी प्रशंसा करना २. पूज्य पुरुषों में भी दोष ग्रहण करने का स्वभाव ३. और बहुत समय तक बैर धारण करना ये तीव्रकषाय के चिन्ह हैं ।

९२. ॐ ह्रीं तीव्रकषायकारणात्मप्रशंसनादिविकल्परहितनिरास्रवस्वरूपाय नमः।

निर्विकल्पोऽहं ।

लोकाकाश प्रमाण असंख्य प्रदेश पूर्ण है निज आत्मा ।
इसका श्रम निशदिन करते ही हो जाओगे परमात्मा ॥

वीरछंद

आत्म प्रशंसा परके दोष ग्रहण का भाव महा दुखरूप ।
बहुत समय तक बैर धारना तीव्र कषाय भाव दुखरूप॥
पंच प्रकार आस्रव चिन्तन करके तज दो राग विकार ।
नित्य निरंजन निज स्वरूप ध्या यही भावना का है सार॥
आस्रव अनुप्रेक्षा का चिन्तन आस्रव का निरोध करता ।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर रागों का विरोध करता ॥९२॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९३)

अब कहते हैं कि ऐसे जीव के आस्रव का चितवन निष्फल है-

एवं जाणंतो वि हु, परिचयणीये वि जो ण परिहरइ ।
तस्सासवाणुवेक्खा, सव्वा वि णिरत्थया होदि ॥९३॥

अर्थ- इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से जानता हुआ भी जो त्यागने योग्य परिणामों को नहीं छोड़ता है उसके सब ही आस्रव का चिंतन निरर्थक है। कार्यकारी नहीं होता।

९३. ॐ ह्रीं अकायस्वरूपनिरास्रवस्वरूपाय नमः ।

चितृस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

यह प्रत्यक्ष जानकर भी ऐसे परिणाम नहीं तजता ।
उसका आस्रव चिन्तन करना सदा निरर्थक ही रहता ॥
पंच प्रकार आस्रव चिन्तन करके तज दो राग विकार ।
नित्य निरंजन निज स्वरूप ध्या यही भावना का है सार॥
आस्रव अनुप्रेक्षा का चिन्तन आस्रव का निरोध करता ।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर रागों का विरोध करता ॥९३॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

केवलज्ञान दिशा प्राची से देखो उगने वाला है ।
दर्शन अरु चारित्र मोह निज क्रम से उड़ने वाला है ॥

(९४)

फिर वही कहते हैं-

एदे मोहय-भावा, जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो ।
हेयं ति मण्णमाणो, आसव अणुपेहणं तस्स ॥९४॥

अर्थ- जो पुरुष उपशम परिणामों में (वीतराग भावों में) लीन होकर ये पहिले कहे अनुसार मोहसे उत्पन्न हुए मिथ्यात्वादिक परिणामों को हेय (त्यागने योग्य) मानता हुआ छोड़ता है उसके आस्रवानुप्रेक्षा होती है।

९४. ॐ ह्रीं मोहकर्मजनितपरणामरहितनिरास्रवस्वरूपाय नमः ।

सहजसुखस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

उपशम परिणामों में लय हो मोहोत्पन्न सबल परिणाम ।
हेय जान जो तज देता है वह आस्रव अनुप्रेक्षा जान ॥
पंच प्रकार आस्रव चिन्तन करके तज दो राग विकार ।
नित्य निरंजन निज स्वरूप ध्या यही भावना का है सार॥
आस्रव अनुप्रेक्षा का चिन्तन आस्रव का निरोध करता ।
भाव शुभाशुभ का अभाव कर रागों का विरोध करता ॥९४॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

आस्रव के वृक्ष को जड़ से अभी तू नष्ट कर ।
पुण्य पाप विकार जो हैं आज सर्व विनष्ट कर ॥
शुद्ध संवर के बिना होता न कुछ भी धर्म है ।
जप तपादिक प्रबल संयत क्रिया सर्व अधर्म है ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षायां आस्त्रवानुप्रेक्षाधिकारे निरास्त्रवस्वरूपाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

निश्चय लोक प्रमाण आत्मा देह प्रमाण कथन व्यवहार।
आत्म स्वभाव मनन करने से क्षय हो जाता है संसार ॥

जयमाला

गीत

सम्यक्त्व सूर्य देख अंधेरा चला गया ।
मिथ्यात्व मोह आज ही पूरा छला गया ॥
अनिभिज्ञ जो भी रहा भेद ज्ञान से अब तक ।
मिथ्यात्व से वह जीव हमेशा छला गया ॥
संयम की नाव जिसने कभी भी नहीं पायी ।
इस भव समुद्र में वही बहता चला गया ॥
जिसने प्रमाद को ही बसाया हो अपने घर ।
वह निज स्वभाव को भी भुलाता चला गया ॥
जितनी कषाय हैं सभी जिस को लगीं अच्छी ।
सम भाव बिना नरकों में ही बहता चला गया ॥
त्रैलोक्य तीन काल में सम्यक्त्व ही उत्तम ।
सम्यक्त्व तो श्रद्धान के द्वारा ढला गया ॥
अतएव अब सम्यक्त्व प्राप्ति हीका करें श्रम ।
सम्यक्त्व बिना व्यर्थ यह जीवन चला गया ॥

ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्य नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

आस्रव अनुप्रेक्षा मनन कर्म नाश का मूल ।
इसका ही लो आश्रय अब मत करना भूल ॥

इत्याशीर्वाद :

जाप्य मंत्र ॐ ह्रीं आस्रवानुप्रेक्षाय नमः

पाप पुण्य परभाव नाश में तो अन्तमुहूर्त जानो ।
सर्व कषायों के दहने में एक मुहूर्त शेष मानो ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ९

अष्टम अधिकार संवरानुप्रेक्षा पूजन

(संवर भावना)

दिग्वधू

भव सागर क्षय करने निज का ही ध्यान करो ।
सेवा के द्वारा तुम भव दुख अवसान करो ॥
अब तुम को पाना है संवर भावना प्रथम ।
कर्मों के क्षय का ही श्रम होता है उत्तम ॥
संवर का बल लेकर आस्रव का नाश करो ।
शुद्धात्म तत्त्व द्वारा कैवल्य प्रकाश वरो ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र अवतर अवतर संवौष्ट।
ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र तिष्ट तिष्ट ठः ठः ।
ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छंद सरसी

क्षीरोदधि सम शुद्ध भावना नीर हृदय में पाया ।
जन्म जरा मरणादि नाश करने का अवसर आया ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

योनि लाख चौरासी में तो बीताकाल अनंतानंत ।
पर पाया सम्यक्त्व न अब तक यह निर्भ्रान्त कथन भगवंत॥

मलयसमीर सुरभि सम निज गुण चंदन मुझको भाया ।
भवा ताप ज्वर क्षय करने का उर उत्साह जगाया ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

गिरि विजयार्ध शलि पा अपना शुद्ध स्वभाव सुहाया ।
अक्षय पद पाने का उर उत्साह अचंचल भाया ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

वन सौमनस पुष्प सम अपना शुद्ध भाव ही भाया ।
महा शील की गंध सुहायी काम शत्रु विनशाय ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वसंनाय पुष्पं नि. ।

क्षीरोदधि जल निर्मित चरु सम मिष्ट स्वभाव सुहाया ।
क्षुधा वेदना नष्ट हो गई तृप्त रूप निज पाया ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

विद्युन्माली रत्न दीप सम आत्म ज्योति प्रभु पायी ।
मोह तिमिर अज्ञान नाश कर निज की छवि दर्शायी ॥

चारों घाति विनष्ट करो अब कुछ मत सोच विचार करो।
चउ अघाति के क्षय करते ही यह दुखमय संसार हरो॥

संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

चंदन धूप सुनंदन वन पा ध्यान धूप उर भायी ।
अष्ट कर्म क्षय करने को अब मैंने सुमति जगायी ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्टम कर्म दहनाय धूपं नि.।

पाडुंक वन फल के समान शुद्धात्म भाव फल पाए ।
महामोक्ष फल पाने के दिन अब तो मेरे आए ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि.।

अर्घ्य बनाए शुद्ध भाव के प्रभु के चरण चढ़ाए ।
पद अनर्घ्य के सिंहासन ही अब तो प्रभु दरशाए ॥
संवर अनुप्रेक्षा ने मेरा साहस बहुत बढ़ाया ।
गुण स्थान श्रेणी क्षायिक पर हे प्रभु मुझे चढ़ाया ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्तार्य अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(९५)

संवरानुप्रेक्षा

सम्मत्तं देसवयं, महव्वयं तह जओ कसायाणं ।
एदे संवरणामा, जोगाभावो तहा चेव ॥९५॥

मुक्ति चाहते हो तो शुद्ध चेतनामयी ज्ञान जानो ।
केवल ज्ञानमयी निज आत्मा परम बुद्ध को पहचानो ॥

अर्थ- सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायों का जीतना तथा योगों का अभाव ये संवर के नाम हैं ।

९५. ॐ ह्रीं क्रोधादिनिग्रहविकल्परहितचित्स्वरूपाय नमः ।

सहजबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

है सम्यक्त्व देश व्रत पंचम महासुव्रत कषाय जय रूप।
योगों का भी अभाव होता यह है सच्चा संवर रूप ॥
संवर अनुप्रेक्षा का चिन्तन राग द्वेष से रखता दूर ।
संवर से प्रारंभ धर्म का होता अंतर में भरपूर ॥९५॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९६)

अब इसीको विशेष रूप से कहते हैं-

गुत्ती समिदी धम्मो, अणुवेक्खा तह परीसहजओ वि।
उक्किट्ठं चारित्तं, संवरहेदू विसेसेण ॥९६॥

अर्थ- मन वचन कायकी गुप्ति ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापना इस तरह पांच समिति उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्म अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा तथा क्षुधा आदि बाईस परीषह का जीतना सामायिक आदि उत्कृष्ट पांच प्रकार का चारित्र ये विशेष रूप से संवर के कारण हैं ।

९६. ॐ ह्रीं गुप्तिसमित्यादिविकल्परहितचित्स्वरूपाय नमः ।

नित्यस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

गुप्ति समिति दश धर्म भावना द्वादश तथा परीषह जय।
सामायिक चारित्र पांच का धारण संवर कारण मय ॥
संवर अनुप्रेक्षा का चिन्तन राग द्वेष से रखता दूर ।
संवर से प्रारंभ धर्म का होता अंतर में भरपूर ॥९६॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

संग तुम्हारे निज परिणति ही मुक्ति भवन में जाएगी ।
निजानंद रस लीन अवस्था शुद्ध आत्मा पाएगी ॥

(९७)

अब इनको स्पष्ट रूप से कहते हैं-

गुत्ती जोगणिरोहो,समिदी य पहाद-वज्जणं चेव ।
धम्मो दयापहाणो, सुतत्त-चिंता अणुप्पेहा ॥९७॥

अर्थ- योगों का निरोध गुप्ति है प्रमाद का वर्जन, यत्नपूर्वक प्रवृत्ति समिति है दयाप्रधान धर्म है जीवादिक तत्वतथा निजस्वरूपका चिंतवन अनुप्रेक्षा है ।

९७. ॐ ह्रीं प्रमादादिविकल्परहितचित्स्वरूपाय नमः ।

निरालसस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

योगों का निरोध गुप्ति है समिति प्रमादों का वर्जन ।
दया धर्म है तत्त्व ज्ञान युत अनुप्रेक्षा निज का चिन्तन ॥
संवर अनुप्रेक्षा का चिन्तन राग द्वेष से रखता दूर ।
संवर से प्रारंभ धर्म का होता अंतर में भरपूर ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९८)

फिर वही कहते हैं-

सो वि परीसहविजओ, छुहादि-पीडाण अइरउद्दाणं ।
सवणाणं च मुणीणं, उवसमभावेण जं सहणं ॥९८॥

अर्थ- जो अतिरौद्र (भयानक) क्षुधा आदि पीड़ाओं को उपशमभावों (वीतरागभावों) से सहना सो ज्ञानी महामुनियों के परीषहोंका जीतना कहलाता है ।

९८. ॐ ह्रीं क्षुधादिपरीषहविकल्परहितचित्स्वरूपाय नमः ।

चैतन्यामृताहारस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

भीषण क्षुधा आदि पीड़ाएँ उपशम भावों से सहना ।
ज्ञानी महा मुनीश्वर परिषह जयी सदा निज में रहना ॥
संवर अनुप्रेक्षा का चिन्तन राग द्वेष से रखता दूर ।
संवर से प्रारंभ धर्म का होता अंतर में भरपूर ॥९८॥

निर्मल आत्म स्वभाव भावना जब तक जीव न भाएगा ।
जी चाहे तू वहाँ चला जा मोक्ष नहीं तू पाएगा ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(९९)

फिर वही कहते हैं-

अप्पसरूवं वत्थुं, चत्तं रायादिएहिं दोसेहिं ।
सज्झाणम्मि णिलीणं, तं जाणसु उत्तमं चरणं ॥९९॥

अर्थ- हे भव्य ! जो आत्मस्वरूप वस्तु है उसका रागादि दोषों से रहित धर्म शुक्ल ध्यान में लीन होना है उसको तू उत्तम चारित्र जान।

९९. ॐ ह्रीं रागद्वेषादिदोषरहितचित्स्वरूपाय नमः ।

निर्द्वेषस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

वस्तु स्वरूप आत्मा का है रागादिक से रहित स्वरूप ।
धर्म शुक्ल निज ध्यान लीन होना उत्तम चारित्र अनूप॥
संवर अनुप्रेक्षा का चिन्तन राग द्वेष से रखता दूर ।
संवर से प्रारंभ धर्म का होता अंतर में भरपूर ॥९९॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१००)

अब कहते हैं कि जो ऐसे संवर का आचरण नहीं करता है वह संसार मे भटकता है-

एदे संवरहेदुं, वियारमाणो वि जो ण आयरइ ।
सो भमइ चिरं कालं, संसारे दुक्खसंतत्तो ॥१००॥

अर्थ- जो पुरुष इन (पहिले कहे अनुसार) संवर के कारणों को विचारता हुआ भी आचरण नहीं करता है वह दुःखों से तप्तायमान होकर बहुत समय तक संसार में भ्रमण करता है ।

१००. ॐ ह्रीं आस्रवनिरोधकारणविकल्परहितचित्स्वरूपाय नमः ।

स्वचिदानन्दस्वरूपोऽहं ।

शिवपुर के तोरण द्वारों पर स्वागत होने वाला है ।
मुक्ति वधू सजधज आएगी कर में ले वरमाला है ॥

ताटंक

जो संवर के कारण जाने किन्तु आचरण करे नहीं ।
दुक्खों से तप्ताय मान हो जगत भ्रमण से बचे नहीं ॥
संवर अनुप्रेक्षा का चिन्तन राग द्वेष से रखता दूर ।
संवर से प्रारंभ धर्म का होता अंतर में भरपूर ॥१००॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०१)

अब कहते हैं कि संवर कैसे पुरुष के होता है-

जो पुण विसयविरत्तो, अप्पाणं सव्वदा वि संवरइ ।
मणहरविसएहिंतो तस्स फुडं संवरो होदि ॥१०१॥

अर्थ- जो मुनि इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होता हुआ मनको प्रिय लगने वाले विषयों से आत्मा को सदाकार (हमेशा) संवररूप करता है उसके प्रगट रूप से संवर होता है।

१०१. ॐ ह्रीं मनोहरवषयविकल्परहितचित्स्वरूपाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निजपरमदेवस्वरूपोऽहं ।

जो मुनि इन्द्रिय विषयों से होकर विरक्त आत्मा ध्याता ।
सदाकाल संवर स्वरूप हो संवर उर में प्रगटाता ॥
संवर अनुप्रेक्षा का चिन्तन राग द्वेष से रखता दूर ।
संवर से प्रारंभ धर्म का होता अंतर में भरपूर ॥१०१॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्यं

छंद मानव

शुभ अशुभ आस्रव नाशक संवर ही धर्म बताया ।
स्वर्गादिक सुख को सबने ही तो भव कर्म बताया ॥
यदि धर्म तुझे पाना है तो संवर उर में प्रगटा ।
संवर की महा शक्ति से आस्रव भावों को विघटा ॥

संवर निर्जरा मूल है आस्रव को जय करता है ।
यह पुण्य पाप के पर्वत पलभर में क्षय करता है ॥

ॐ ह्रीं स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षायां संवरानुप्रेक्षाधिकारे चित्स्वरूपाय महाअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

गीत

भावना राग की होती है तो दुख होता है ।
भावना ज्ञान की होती है तो सुख होता है ॥
कोई दुख देता नहीं कोई सुख न देता है ।
जैसी हो भावना वैसा ही सदा होता है ॥
भेद विज्ञान से स्वभाव जब विदित होता ।
आत्मा तब अनात्मा से प्रथक होता है ॥
सभी सम्यक्त्व की महिमा हृदय में जगती है ।
ज्ञान संपूर्ण निज हृदय में उदित होता है ॥
मोह संपूर्ण स्वपरिजन सहित चला जाता ।
शुद्ध चैतन्य निजानंद मुदित होता है ॥
भावना का प्रताप महा शक्ति वाला है ।
बंध होता है भावना से मोक्ष होता है ॥

ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

संवर भाव महान है जिनआगम का सार ।
जो संवर उर धारता हो जाता भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं संवरानुप्रेक्षाय नमः

त्रिभुवन के जीवों के द्वारा ध्यान योग्य जिनदेव महान।
यह परमार्थ कथन निर्भ्रान्त जान लेना भावना प्रधान ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १०

नवम अधिकार निर्जरानुप्रेक्षा पूजन

(निर्जरा भावना)

छंद मानव

अब कर्म निर्जरा कर के भव के सब झंझट हरता ।
अपने स्वभाव का चिन्तन जाग्रत हो चेतन करता ॥
मस्तकपर तिलक लगाओ निज गुण चंदन का पावन ।
शुद्धात्म तत्त्व को ध्याने यह त्रिभुवन में मन भावन ॥
ऋषि मुनि निज को ही ध्याते अपने स्वभाव में आते ।
अपनी स्वशक्ति के द्वारा वे शीघ्र मोक्ष में जाते ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा अत्र अवतव अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा अत्र तिष्ठ तिष्ट ठः ठः ।
ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छंद विजया

खोज सम्यक्त्व के नीर की मैंने की ।
चारों गतियों में भटका गरल ही पिया ॥
जन्म क्षण मृत्यु क्षण के सहे कष्ट बहु ।
किन्तु अन्तर न अब तक सरल ही किया ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

शुद्ध सम्यक्त्व चंदन की भी खोज की ।
आश्रय इन विभावों का मैंने लिया ॥

क्षण क्षण करता भाव मरण मैं महाभयंकर दुखदायी ।
द्रव्य मरण तो मात्र उसी भव का वह भी ना सुखदायी॥

ताप संसार का कैसे जाता प्रभो ॥
शुद्ध भावों को अब तक न संग में लिया ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

शुद्ध सम्यक्त्व अक्षत की भी खोज की ।
शालि भव भाव के ही चढ़ाए प्रभो ॥
शुद्ध अक्षय स्वपद था त्रिलोकाग्र पर ।
मैंने सुरपुर को पद निज बढ़ाए प्रभो ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षयं नि.।

शुद्ध सम्यक्त्व के पुष्प पाए नहीं ।
काम वर्धक सदा ही सुहाए प्रभो ॥
नष्ट कंदर्प दर्प न मैं कर सका ।
कर्म फल चेतना फल ही भाए विभो ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. ।

शुद्ध सम्यक्त्व के चरु की भी खोज की ।
फिर भी जठराग्नि मेरी तो बढ़ती रही ॥
तृप्त शाश्वत स्वभाव तो भाया नहीं ।
बेल पापों की मंडप पै चढ़ती रही ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

शुद्ध सम्यक्त्व के दीप जोए नहीं ।
जड़ प्रदेशों की दीपावली भा गयी ॥
मोह मिथ्यात्व तम कैसे जाता प्रभो ।
ज्ञान पाने की वेला भी आकर गयी ॥

इन दोनों में कोई भी तो मरण नहीं है सुखदायी ।
भाव मरण क्षय हो जाए तो द्रव्य मरण ना दुखदायी ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

शुद्ध सम्यक्त्व की धूप है ध्यानमय ।
फिर भी ध्रुव धाम का न किया ध्यान प्रभु ॥
शुद्ध भावों की धूप बनायी नहीं ।
कैसे करता मै कर्मो का अवसान प्रभु ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कर्म दहनाय धूपं नि. ।

शुद्ध सम्यक्त्व फल की भी तो खोज की ।
स्वर्ग के कल्प वृक्षों में पाए नहीं ॥
मोक्षफल के सुहाने सलोने सुतरु ।
मेरी दृष्टि में तो नाथ आए नहीं ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

शुद्ध सम्यक्त्व के गुणमयी अर्घ्य भी ।
सारी दुनिया में खोजे मगर ना मिले ॥
पद अनर्घ्य की महिमा न देखी प्रभो ।
ज्ञान अबुंज नहीं आज तक प्रभु खिले ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

(१०२)

निर्जरानुप्रेक्षा

बारसविहेण तवसा, णियाणरहियस्स णिज्जरा होदि।
वेरग्गभावणादो, णिरहंकारस्स णाणिस्स ॥१०२॥

अर्थ- निदान रहित अहंकार (अभिमान) रहित ज्ञानी के बारह प्रकार के तपसे तथा वैराग्यभावना (संसार देहभोग से विरक्त परिणाम) से निर्जरा होती है ।

भाव मरण का मूल एक मिथ्यात्व भाव है दुखदायी ।
एक मात्र निज शुद्ध भाव ही है ध्रुव शाश्वत सुखदायी॥

१०२. ॐ ह्रीं द्वादशविधतपादिविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नमः ।

बोधामृताहारस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

रहित निदान मान विरहित हो जो द्वादश तप उर धरता।
वह वैराग्य भाव में रहता वही निर्जरा बहु करता ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०२॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०३)

अब निर्जरा का स्वरूप कहते हैं-

सव्वेसि कम्माणं, सत्तिविवाओ हवेई अणुभाओ ।
तदणंतरं तु सडणं, कम्माणं णिज्जरा जाण ॥१०३॥

अर्थ- समस्त ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मों की शक्ति (फल देने की सामर्थ्य) विपाक अनुभाग कहलाता है उदय आने के अनन्तर ही झड़ जाने को कर्मों की निर्जरा जानना चाहिए।

१०३. ॐ ह्रीं पुद्गलफलदानपरिणतिविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

स्वबोधसाम्राज्यस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

सर्व कर्म की शक्ति विपाकोदय में कहलाता अनुभाग।
उदय समय पर कर्मो की झड़ना ही है निर्जरा स्वभाव ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०३॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०४)

अब कहते हैं कि यह निर्जरा दो प्रकार की है-

सा पुण दुविहा णेया, सकालपत्ता तवेण कयमाणा।
चादुगदीणं पढमा, वयजुत्ताणं हवे बिदिया ॥१०४॥

जब तक केवल परम पवित्र आत्मा को ना जाने जीव।
तब तक व्रत तप संयम शील मुक्ति के कारण नहीं कदीव॥

अर्थ- वह पहिले कही हुई निर्जरा दो प्रकार की है एक तो स्वकाल प्राप्त दूसरी तप द्वारा की गई उनमें पहिली स्वकाल प्राप्त निर्जरा तो चारों ही गति के जीवों के होती है व्रतसहित जीवों के दूसरी तप द्वारा की गई होती है ।

१०४. ॐ ह्रीं सविपाकविपाकनिर्जराविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

आनंदघनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

इस प्रकार निर्जरा स्वकाली चारों गति के पाते हैं ।
दूजी तप के द्वारा होती व्रत धारी ही पाते हैं ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०४॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०५)

अब निर्जरा किससे बढ़ती हुई होती है सो कहते हैं-

उवसमभावतवाणं, जह जह वड्ढी हवेइ साहूणं ।
तह तह णिज्जर वड्ढी, विसेसदो धम्मसुक्कादो॥१०५॥

अर्थ- मुनियो के जैसे-जैसे उपसमभाव तथा तपकी बढ़वारी होती है वैसे-वैसे ही निर्जरा की बढ़वारी होती है धर्मध्यान और शुक्लध्यान से विशेषता से बढ़वारी होती है ।

१०५. ॐ ह्रीं आज्ञापायादिधर्मध्यानविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

स्वधर्मस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जैसे जैसे उपशम होता तप की बढ़वारी होती ।
वैसे वैसे मुनियों की निर्जरा सुअविकारी होती ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०५॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

चारों गतियों के दुख से तो हुई परेशानी मुझको ।
फिर भी करता नहीं उपाय यही है हैरानी मुझको ॥

(१०६)

अब इस वृद्धि के स्थानों को बताते हैं

मिच्छादो सद्दिट्ठी, असंखगुणकम्मणिज्जरा होदि ।
तत्तो अणुवयधारी, तत्तो य महव्वई णाणी ॥१०६॥

अर्थ- प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में करणत्रयवर्ती विशुद्ध परिणामयुक्त मिथ्यादृष्टि से असंयत सम्यग्दृष्टि के असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती है उससे देशव्रती श्रावक के असख्यात गुणी होती है ।

१०६. ॐ ह्रीं असंख्यगुणकर्मनिर्जराविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

सद्बोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

समकित सन्मुख मिथ्यादृष्टि की होती निर्जरा विशेष ।
सम्यक दृष्टि की होती उससे असंख्यात गुणी विशेष ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०६॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०७)

फिर वही कहते हैं -

पढमकसायचउण्हं, विजोजओ तह य खवयसीलो य।
दंसणमोहतियस्स य, तत्तो उवसमग-चत्तारि ॥१०७॥

अर्थ- उससे महाव्रती मुनियों के असंख्यात गुणी होती है । उससे अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन (अप्रत्याख्यानादि रूप परिणमाना) करने वाले के असंख्यात गुणी होती है उससे दर्शनमोह के क्षय करने वाले के असंख्यात गुणी होती है उससे उपशम श्रेणी वाले तीन गुणस्थानों में असंख्यात गुणी होती है।

१०७. ॐ ह्रीं अनंतानुबंधीवियोजकविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

शुद्धबोधस्वरूपोऽहं ।

जिनवर कथन शील व्रत से संयुक्त आत्मा को ले जान।
जो जानेगा निजात्मा को पायेगा शिव पद निर्वाण ॥

ताटंक

उससे देश व्रती की होती असंख्यात गुणी यही विशेष ।
महाव्रती की इससे असंख्यात गुणी हो निर्जरा विशेष ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०७॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०८)

फिर वही कहते हैं-

खवगो य खीणमोहो, सजोइणाहो तहा अजोईया ।
एदे उवरिं उवरिं, असंखगुणकम्मणिज्जरया ॥१०८॥

अर्थ- उससे उपशान्तमोह ग्यारहवें गुणस्थान वाले के असंख्यात गुणी होती है, उससे क्षपक श्रेणी वाले तीन गुणस्थानों में असंख्यात गुणी होती है उससे क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान में असंख्यात गुणी होती है उससे सयोग केवली के असंख्यात गुणी होती है उससे अयोगकेवली के असंख्यात गुणी होती है ये ऊपर ऊपर असंख्यात गुणाकार हैं इसलिए इनको गुणश्रेणी निर्जरा कहते हैं।

१०८. ॐ ह्रीं क्षपकक्षीणमोहादिजनितनिर्जराविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः।

निरायुधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

आगे आगे गुणस्थान में असंख्यात गुणी होती ।
असंख्यात गुणाकार यही गुण श्रेणी निर्जरा होती ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०८॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१०९)

अब गुणाकाररहित अधिकरूप निर्जरा जिससे होय सो कहते हैं -

जब तब केवल परम पवित्र आत्मा को ना जाने जीव ।
सभी शील व्रत संयम तब तक नहीं कार्यकारी है जीव॥

जो विसहदि दुव्वयणं, साहम्मिय-हीलणं च उवसग्गं।
जिणऊण कसायरिउं, तस्स हवे णिज्जरा विउला ॥१०९॥

अर्थ- जो मुनि दुर्वचन सहता है साधर्मी जो अन्य मुनि आदिक उनसे किए गए अनादर को सहता है तथा देवादिकों से किए गए उपसर्ग को सहता है कषायरूप बैरीको जीतकर जो ऐसे करता है उसके विपुल (बड़ी) निर्जरा होती है ।

१०९. ॐ ह्रीं दुर्वचनोपसर्गादिविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

निराकारोऽहं ।

ताटंक

जो मुनि दुर्वचनों को सहता तथा अनादर सहता है ।
उपसर्गों को भी सहता है अरि कषाय जय करता है ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१०९॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११०)

फिर वही कहते हैं-

रिणमोयणं व मण्णइ, जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं ।
पावफलं मे एदं, मया वि जं संचिदं पुव्वं ॥११०॥

अर्थ- जो मुनि उपसर्ग तथा तीव्र परिषह को ऋण (कर्ज) की तरह मानता है कि ये (उपसर्ग और परिषह) मेरे द्वारा पूर्व जन्म में संचित किए गये पाप कर्मों का फल है सो भोगना चाहिये इस समय व्याकुल नहीं होना चाहिये ।

११०. ॐ ह्रीं पापफलविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

निष्कलस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

उपसर्गों परिषह को ऋण की भांति मान चिन्तन करता।
पूर्व जन्म के पापों का फल जान न आकुलता करता ॥

महावीर के धर्म तीर्थ में शुद्ध धर्म क्यों प्राप्त नहीं ।
शुद्ध परम अनुभूति आत्मा की अंतर में व्याप्त नहीं ॥

अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥११०॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१११)

फिर वही कहते हैं-

जो चिंतेइ सरीरं, ममत्तजणयं विणस्सरं असुइं ।
दंसणणाणचरित्तं, सुहजणयं णिम्मलं णिच्चं ॥१११॥

अर्थ- जो मुनि शरीर को ममत्व (मोह) को उत्पन्न कराने वाला विनाशीक तथा अपवित्र मानता है और सुख को उत्पन्न करने वाले निर्मल तथा नित्य दर्शनज्ञान-चारित्ररूपी आत्मा का चिंतवन (ध्यान) करता है उसके बहुत निर्जरा होती है ।

१११. ॐ ह्रीं ममत्वजनकशरीरविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

अमलस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो शरीर को मोहोत्पादक अथिर अशुचि नाशमय जान।
दर्शन ज्ञान स्वरूप आत्मा को सुख देने वाली मान ॥
निर्मल नित्य जान निज का ही चिन्तन करता है निजरूप।
वही निर्जरा उत्तम पाता हो जाता है मोक्ष स्वरूप ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥१११॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११२)

फिर वही कहते हैं-

अप्पाणं जो णिंदइ, गुणवंताणं करेदि बहुमाणं।
मणइं दियाण विजई, सरूवपरायणो होउ ॥११२॥

अर्थ- जो साधु अपने किए हुए दुष्कृत की निंदा करता है गुणवान् पुरुषों का प्रत्यक्ष परोक्ष

शुद्ध आत्म अनुभूति यही जिनधर्म श्रेष्ठ मंगलमय है ।
आत्मा की अनुभूति यही शिव सौख्य प्रदाता शिवमय है॥

बड़ा आदर करता है अपने मन व इन्द्रियों को जीतने वाला होता है वह अपने स्वरूप में तत्पर होत है । उसीके बहुत निर्जरा होती है ।

११२. ॐ ह्रीं आत्मनिंदादिविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

अस्पृष्टस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

गुणवानों का आदर करता दुष्कृत की निन्दा करता ।
मन इन्द्रिय जय कर स्वरूप तत्पर निर्जरा शुद्ध करता॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥११२॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११३)

फिर वही कहते हैं-

तस्स य सहलो जम्मो, तस्स वि पावस्स णिज्जरा होदि ।
तस्स वि पुण्णं वड्ढदि, तस्स वि सोक्खं परं होदि ॥११३॥

अर्थ- जो साधु ऐसे (पहिले कहे अनुसार) निर्जरा कारणों में प्रवृत्ति करता है उसीका जन्म सफल है उसी के पाप की निर्जरा होती है उस ही के पुण्यकर्म का अनुभाग बढ़ता है और उसीको उत्कृष्ट सुख (मोक्ष) प्राप्त होता है ।

११३. ॐ ह्रीं पाप कर्म निर्जराविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

समतासौख्यस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो निर्जरा कारणों में करता प्रवृत्ति वह जन्म सफल ।
पाप निर्जरा करता पुण्यों का अनुभव करता उज्ज्वल ॥
स्वर्गादिक के सौख्य भोग कर एक दिवस पा लेता मोक्ष।
वह उत्कृष्ट शान्ति पाता है वह ही पाता शाश्वत मोक्ष ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥११३॥

महावीर क्या करें भूल से चेतन पर में उलझा है।
बिना आत्म अनुभूति न कोई प्राणी भव से सुलझा है॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११४)

अब उत्कृष्ट निर्जरा कहकर उसके कथन को पूर्ण करते हैं-

जो समसोक्खणिलीणो, वारंवार सरेइ अप्पाणं ।
इंदियकसायविजई, तस्स हवे णिज्जरा परमा ॥११४॥

अर्थ- जो मुनि वीतराग भावरूप साम्यरस्प-सुख में लीन होकर बार-बार आत्मा का स्मरण करता है तथा इन्द्रिय और कषायों को जीतता है उसके उत्कृष्ट निर्जरा होती है ।

११४. ॐ ह्रीं इन्द्रियकषायविजयविकल्परहितज्ञानस्वभावाय नमः ।

अरसस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो मुनि वीतराग भावों से साम्य भाव सुख में तल्लीन।
बार बार आत्मा को ध्याता मन इन्द्रिय कषाय से हीन ॥
उसको ही उत्कृष्ट निर्जरा गुण श्रेणी होतीं है प्राप्त ।
वही निर्जरा का स्वामी है वही हमारा जानो आप्त ॥
अनुप्रेक्षा निर्जरा चिन्तवन पूर्व बंध क्षय करता है ।
अष्ट कर्म से रहित बनाता भव समुद्र दुख हरता है॥११४॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासत्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

छंद मानव

निर्जरा शक्ति जब जगती तब बंधों का क्षय होता ।
संसार विजय होता है भव भाव पूर्ण जय होता ॥
निर्जरा घाति कर्मो की सबसे पहिले होती है ।
फिरतो अघाति की द्युति भी पल में ही क्षय होती है ॥
पद मोक्ष सहज मिल जाता जो सादि अनंत कहाता ।
तनु वात वलय से ऊपर चेतन का ध्वज लहराता ॥

इस मनुष्य भव रूपी नंदनवन में रत्नत्रय के फूल ।
पर अज्ञानी चुनता रहता है अधर्म के दुखमय शूल ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षां निर्जरानुप्रेक्षाधिकारे ज्ञानस्वभावाय ममहाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छंद हरिगीता

परिणाम. मोहासक्ति के आकुलमयी पहचानिये ।
इनमें अगर सुख बुद्धि रस है तो पतन ही मानिये ॥
स्वानुभव का मूल नित स्वाध्याय का अभ्यास है ।
तत्त्व निर्णय के बिना अनुभूति तो आभास है ॥
आत्मा को निरखकर श्रद्धान उस का आनिये ।
परिणाम मोहासक्ति के आकुलमयी पहचानिये ॥
जब तलक संसार रुचि तब तक नहीं कृत निश्चयी।
वेश कोई साधरे पर है महा दुख भव मयी ॥
विभावों की वासनाएँ पूर्णत: सब हानिये ।
परिणाम मोहासक्ति के आकुलमयी पहचानिये ॥
अकृत्रिम चैतन्य प्रतिमा विराजित है देह में ।
पर पड़ा है तू सदा से अनात्मा के नेह में ॥
तुम स्वयं आनंद घन हो सजग हो यह मानये ।
परिणाम मोहासक्ति के आकुलमयी पहचानिये ॥

ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

कर्म निर्जरा मूल है शुद्ध निर्जरा भाव ।
जब स्वभाव निज जागता होता सौख्य अपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मंत्र ॐ ह्रीं निर्जरानुप्रेक्षाय नमः

वस्तु स्वभाव धर्म मंगलमय आत्मा का आनंद स्वरूप ।
निजानंद चैतन्य प्राणमय समभावी चेतन चिद्रूप ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ११

दशम अधिकार लोकानुप्रेक्षा पूजन

(लोक भावना)

छंद सखी

संसार स्वरूप विचारो । लोकानुप्रेक्षा धारो ॥
अपना स्वरूप कर चिन्तन । काटो कर्मों के बंधन ॥
शिव मार्ग परम सुखदायी । भव मार्ग परम दुखदायी ॥
भव पथ तज शिव पथ पाओ । शुद्धात्म तत्त्व को ध्याओ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ:।
ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छंद सोरठा

सहज भाव जल धार त्रिविध रोग हरती सदा ।
शुद्ध भाव अविकार अविनाशी कीजे प्रगट ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

सहज भाव की गंध मलयागिर से श्रेष्ठ है ।
भव ज्वर हारी नित्य निज स्वरूप ही जानिये ॥

पुण्य भाव से स्वर्गादिक सुख पाप भाव से नरक जु दुख।
आत्म ध्यान से मुक्ति वधू मिलती है मिलता शाश्वत सुख॥

लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं नि.।

सहज भाव के शालि अक्षत गुण भंडार हैं ।
अक्षय पद दातार जो कि अडोल अकंप ध्रुव ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि.।

सहज भाव के पुष्प काम विनाशक सर्वदा ।
शील स्वगुण शिवकार निष्कषाय सो ध्याइये ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि.।

सहज भाव नैवेद्य साम्य भाव रस पूर्ण हैं ।
तृप्त स्वभावी ज्ञान शुद्ध आत्मा में बसा ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

सहज भाव के दीप जगमग ज्योतिर्मय सतत ।
मोह तिमिर का नाश इस क्षण ही अब कीजिये ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

अपनी भूल मिटाने पर ही निज अनुभूति प्रकट होती।
कर्म पंक की सकल कलुषता पल भर में पूरी धोती ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

सहज भाव की धूप अष्ट कर्म क्षय हेतु है ।
नित्य निरंजन शुद्ध निज स्वरूप ही पाइये ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्ट कमर्म दहनाय धूपं नि. ।

शुद्ध भाव फल श्रेष्ठ महा मोक्ष दातार है ।
त्रिकोलाग्र के शीर्ष वातवलय तनु अंत में ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय प्राम्ताय फलं नि. ।

शुद्ध भाव के अर्घ्य पद अनर्घ्य दातार है ।
शुद्ध अचंचलरूप अपना ही शुद्धात्मा ॥
लोक स्वरूप विचार यही लोक अनुप्रेक्षा ।
ज्ञान भाव उर धार परम पूर्ण कल्याणमय ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

लोकानुप्रेक्षा

(११५)

अब लोकाकाश का स्वरूप कहते है

सव्वायासमणंतं, तस्स य बहुमज्झसंठिओ लोओ ।
सो केण विणेय कओ, ण य धरिओ हरिहिरादीहिं॥११५॥

अन्तस्तल शिव सुख समृद्धि से भरा हुआ है विमल विशाल ।
एक बार झुककर तो देखो पाओगे शिव सुख तत्काल॥

अर्थ- आकाश द्रव्य का क्षेत्र अनन्त है उसके बहुमध्यदेश में स्थित लोक है वह किसी के द्वारा बनाया हुआ नहीं है तथा किसी हरिहरादि के द्वारा धारण किया हुआ नहीं है ।

११५. ॐ ह्रीं षट्द्रव्यनिर्माणरहित चैतन्यस्वरूपाय नमः ।

टङ्कोत्कीर्णस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

इस अनंत आकाश प्रदेश मध्य में जो सुस्थित वह लोक।
नहीं किसी के द्वारा निर्मित नहीं किसी से रक्षित लोक॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥११५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११६)

वही कहते हैं-

अण्णोण्णपवेसेण य, दव्वाणं अच्छणं भवे लोओ ।
दव्वाणं णिच्चत्तो, लोयस्स वि मुणह णिच्चत्तं ॥११६॥

अर्थ- जीवादिक द्रव्यों का परस्पर एक क्षेत्रावगाह प्रवेश लोक है द्रव्य हैं वे नित्य हैं इसलिए लोक भी नित्य है ऐसा जानना ।

११६. ॐ ह्रीं अनाद्यनंतचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

नित्यब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीवादिक छह द्रव्यों का समुदाय यही कहलाता लोक।
सभी द्रव्य छह सदा नित्य हैं अतः नित्य जानो यह लोक॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥११६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अर्घ्यं नि. ।

रुचि अनुयायी वीर्य काम करता है निज रुचि को पा लो।
वाममार्ग को छोड़ बावरे अब तो भवदुख सुलझा लो॥

(११७)

अब यदि कोई तर्क करे कि जो नित्य है तो फिर उत्पत्ति व नाश किसका होता है? उसका समाधान करने के लिए गाथा कहते हैं—

परिणामसहावादो, पडिसिमयं परिणमंति दव्वाणि ।
तेसिं परिणामादो, लोयस्स वि मुणह परिणामं ॥११७॥

अर्थ- द्रव्य परिणामस्वभावी हैं इसलिए प्रतिसमय परिणमते हैं उनके परिणमन के कारण लोक को भी परिणामी जानो ।

११७. ॐ ह्रीं नरनारकादिविभावव्यञ्जनपर्यायरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सदाचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सभी द्रव्य परिणाम स्वभावी प्रतिक्षण परिणमते मानो ।
इसी परिणमन के कारण परिणामी लोक सदा जानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥११७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११८)

अब लोक का विस्तार कहते हैं -

सत्तेक पंच इक्का, मूले मज्झे तहेव बंभंते ।
लोयन्ते रज्जूओ, पुव्वावरदो य वित्थारो ॥११८॥

अर्थ- लोक का पूर्व पश्चिम दिशा में मूल (नीचे) और मध्य (बीच) में क्रम से सात राजू और एक राजू का विस्तार है ऊपर ब्रह्मस्वर्ग के अन्त में पांच राजू का विस्तार है और लोक के अन्त में एक राजू का विस्तार है ।

११८. ॐ ह्रीं त्रैलोक्यविस्तारविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शाश्वतचैतन्यस्वरूपोऽहं ।

तप व्रत संयम शील सभी है मुक्ति मार्ग व्यवहार कथन।
तीन लोक में सदा आत्मा निश्चय से चारित्र सघन ॥

छंद ताटंक

लोक पूर्व पश्चिम में राजू सात मध्य में इक विस्तार ।
ब्रह्म स्वर्ग तक पांच राजू लोकान्त इक राजू विस्तार ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥११८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(११९)

अब दक्षिण उत्तर के विस्तार व ऊंचाई को कहते हैं-

दक्खिण उत्तरदो पुण, सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ।
उड्ढं चउदहरज्जू सत्त वि रज्जूघणो लोओ ॥११९॥

अर्थ- लोक का दक्षिण उत्तर दिशा में सब ऊंचाई पर्यन्त सात राजू का विस्तार है । ऊंचा चौदह राजू है और सात राजू का घनप्रमाण है। इस तरह लोक का धन फल करने पर तीन सौ तिरालीस (३४३) राजू होता है।

११९. ॐ ह्रींत्रझैलोक्यक्षेत्रधनधामादिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निराकारचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

दक्षिण उत्तर ऊंचाई पर्यंत सात राजू विस्तार ।
ऊंचा चौदह राजू सात राजू है घन प्रमाण विस्तार ॥
धनफल करने पर यह राजू तीन शतक अरु तिरतालीस।
जिन आगम की निश्चय कथनी है सर्वज्ञ कथित जिनईश॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥११९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२०)

अब ऊंचाई के भेद कहते हैं -

भव्य जीव में मोक्ष प्राप्ति की है योग्यता सदैव त्रिकाल।
यदि पुरुषार्थ करे तो प्राणी पा सकता शिव सुख तत्काल॥

मेरुस्स हिट्ठभाये,सत्त वि रज्जू हवेइ अहलोओ ।
उड्ढम्हि उड्ढलोओ, मेरुसमो मज्झिमो लोओ ॥१२०॥

अर्थ- मेरु के नीचे के भाग में सात राजू अधोलोक है ऊपर सात राजू ऊर्ध्वलोक है। मेरु समान मध्य लोक है।

१२०. ॐ ह्रीं अधऊर्ध्वमध्यरचनाविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अचलशिवस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

गिरि सुमेरु के अधोभाग में आधो लोक है राजू सात।
भली भांति से यह तुम जानो अर्ध्व लोक भी राजू सात॥
इसमें ही यह मध्य लोक है जिसका इक राजू विस्तार।
ठीक मध्य में एक लाख योजन ऊंचा सुमेरु विख्यात ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२१)

अब लोक शब्द का अर्थ कहते हैं-

दंसंति जत्थ अत्था, जीवादीया स भण्णदे लोओ ।
तस्स सिहरम्मि सिद्धा, अंतविहीणा विरायंते ॥१२१॥

अर्थ- जहां जीवादिक पदार्थ देखे जाते हैं वह लोक कहलाता है उसके शिखर पर अन्तरहित (अनन्त) सिद्ध विराजमान हैं ।

१२१. ॐ ह्रीं द्रव्यभावनोकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरञ्जनपरमात्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीवादिक नो पदार्थ जिसमें पाये जाते वह है लोक ।
इसके उच्च शिखर पर जो रहते अनंत सिद्धों का लोक॥

जिन को निज चैतन्य तत्त्व की सुन्दरता का अनुभव हो।
उदासीनता उनके उर हो उनका ही तो क्षय भव हो ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२२)

अब लोक के जीवादिक छह द्रव्यों का वर्णन करेंगे।
पहिले जीव द्रव्य का कहते हैं

एइंदियेहिं भरिदो, पंचपयारहिं सव्वदो लोओ।
तसनाडीए वि तसा, ण बाहिरा होंति सव्वत्थ ॥१२२॥

अर्थ- यह लोक पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति पंच प्रकार कायके धारक एकेन्द्रिय जीवों से सब जगह भरा हुआ है त्रसजीव त्रसनाड़ी में ही है बाहर नहीं हैं ।

१२२. ॐ ह्रीं पञ्चप्रकारैकेन्द्रियविकलल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
सदाशिवस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पंच प्रकार काय के धारी जीवों से यह लोक भरा ।
त्रस नाड़ी में त्रस रहते हैं त्रस बाहर रहते न कदा ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२३)

अब बादर सूक्ष्मादि भेद कहते हैं

पुण्णा वि अपुण्णा विय, थूला जीव हवंति साहारा।
छविहा सुहमा जीवा, लोयायासे वि सव्वत्थ ॥१२३॥

अर्थ- आधारसहित जीव स्थूल (बादर) होते हैं वे पर्याप्त हैं और अपर्याप्त भी हैं लोकाकाश में सब जगह अन्य आधाररहित हैं वे सूक्ष्म जीव हैं और छह प्रकार के हैं।

परभावों का परित्याग कर आत्मा में अपनत्व करो ।
यह जिन वच है मुक्ति पुरी में हे योगी सिद्धत्व वरो ॥

१२३. ॐ ह्रीं त्रसस्थावरनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निश्चलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

आधार सहित स्थूल जीव होते पर्याप्त अपर्याप्तक है ।
अन्य जीव आधार बिना छह भांति के सूक्षम होते है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२४)

अब बादर सूक्षम कौन कौन से है

पुढवीजलग्गिवाऊ, चत्तारि वि होंति बायरा सुहमा ।
साहारणपत्तेया, वणप्फदी पंचमा दुविहा ॥१२४॥

अर्थ- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, ये चार तो बादर भी होते हैं तथा सूक्ष्म भी होते हैं पांचवी वनस्पति साधारण और प्रत्येक के भेद से दो प्रकार की है ।

१२४. ॐ ह्रीं साधारणप्रत्येकवनस्पतिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निराकुलचैतन्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चारों में बादर जीव कहे ।
सूक्ष्म भी ये पांच कहे अरु वनस्पति दो भेद कहे ॥
एक साधारण कहा जीव दूसरा जीव प्रत्येक कहा ।
कथन यही सर्वज्ञों का है जो आनंद प्रदाय कहा ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

प्राग्द्वार सम्यक् दर्शन का निर्मल भेदज्ञान विज्ञान ।
इसको पाने का प्रयत्न है स्वाध्याय अभ्यास महान ॥

(१२५)

अब साधारण प्रत्येक के सूक्ष्मता कहते हैं -

साहारण वि दुविहा, अणाइकाला य साइकाला य ।
ते वि य बादरसुहमा, सेसा पुण बायरा सव्वे ॥१२५॥

अर्थ- साधारण जीव दो प्रकार के हैं १. अनादिकाला २. सादिकाला वे दोनों ही बादर भी हैं और सूक्ष्म भी हैं और शेष सब बादर ही हैं।

१२५. ॐ ह्रीं बादरसूक्ष्मनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अक्षयब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव बताए साधारण हैं दो प्रकार जु निगोद कहे ।
नित्य निगोद अनादि काल है सादि इतर निगोद कहे ॥
दोनों में बादर भी है अरु सूक्षम भी हैं यह जान ।
शेष जो बादर बतलाये हैं उनको बादर ही जानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२६)

वही कहते हैं

साहारणाणि जेसिं, आहारुस्सासकायआऊणि ।
ते साहारणजीवा, णंताणंतप्पमाणाणं ॥१२६॥

अर्थ- जिन अनंतानंत प्रमाण जीवों के आहार उच्छ्वास, काय, आयु, साधारण है वे साधारण जीव है जहां एक साधारण निगोदिया जीव उत्पन्न होता है वहां उसके साथ ही अनन्तानन्त जीव उत्पन्न होते हैं और जहां एक निगोदिया जीव मरता है वहां उसके साथ ही अनन्तानन्त समान आयु वाले मरते हैं ।

तत्त्वों का निर्णय आल्हाद प्रदायक निज बल देता है ।
विविध विभाव व्याधियों को यह पल भर में हर लेता है॥

१२६. ॐ ह्रीं साधारणाहारोच्छ्वासादिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

आनपानपर्याप्तिरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव अनंतानंत सर्व प्रमाण जीव को है आहार ।
उस्वास काय आयु साधारण जु साधारण कहे विचार ॥
जीव जु साधारण निगोदिया संग अनंतानंत कहे ।
जन्मे मरण पाते इक संग ही ऐसे जीव अनंत कहे ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२७)

अब सूक्ष्म और बादर का स्वरूप कहते हैं-

ण य जेसिं पडिखलणं, पुढवीतोएहिं अग्गिवाएहिं ।
ते जाण सुहुमकाया, इयरा पुण थूलकाया य ॥१२७॥

अर्थ- जिन जीवों का पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन इनसे रुकना नहीं होता है उनको सूक्ष्म जीव जानो और जो इनसे रुक जाते हैं उनको बादर जानो ।

१२७. ॐ ह्रीं बादरसूक्ष्मजीवप्रतिस्खलनलक्षणविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

नित्यचिद्विलासस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव जो रुकते नहीं किसी से अग्नि जल अरु पवन से।
सूक्षम है ये अरु बादर हैं जो रुकते है इन सब से ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

शुद्ध स्वरूपाचरण स्वगति से शिवपथ पर बढ़ता जाता।
नहीं छलावा मिथ्याभ्रम का कहीं देखने में आता ॥

(१२८)

अब प्रत्येक और त्रस को कहते हैं

पत्तेया वि य दुविहा, णिगोदसहिदा तहेव रहिया य ।
दुविहा होंति तसा विय, वि-तिचउरक्खा तहेव पंचक्खा॥१२८॥

अर्थ- प्रत्येक वनस्पति भी दो प्रकार की है १. निगोदसहित और २. निगोदरहित त्रस भी दो प्रकार के हैं १. विकलत्रय (दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) तथा २. पंचेन्द्रिय।

१२८. ॐ ह्रीं सप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिशरीरविकल्परहित चैतन्य स्वरूपाय नमः ।

विष्णुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

वनस्पति दो भेद कहे इक युत निगोद इक रहित कहे।
त्रस दो विकलत्रय अरु पांचों इन्द्रिय सहित सदेव कहे॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१२९)

अब पंचेन्द्रियों के भेद कहते हैं-

पंचक्खा विय तिविहा, जलथल आयासगामिणो तिरिया ।
पत्तेयं ते दुविहा, मणेण जुत्ता अजुत्ता य ॥१२९॥

अर्थ- पंचेन्द्रिय तिर्यंच्च भी जलचर, थलचर, नभचर के भेद से तीन प्रकार के हैं वे प्रत्येक (तीनों ही) दो दो प्रकार के हैं १. मनसहित (सैनी) और २. मनरहित (असैनी)।

१२९. ॐ ह्रीं जलस्थलाकाशगामितिर्यंचविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

गमनरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

पंचेन्द्रिय तिर्यंच भेद त्रय जल चर थल चर अरु नभचर।
तीनों ही दो दो प्रकार है सेनी तथा असेनी पर ॥

पुद्गलादि पांचों द्रव्यों को सदा अचेतन जड़ जानो ।
इसे जानकर भवदधि तर लो मुक्ति मार्ग यह पहचानो॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१२९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३०)

अब इनके भेद कहते हैं -

ते वि पुणो वि य दुविहा, गब्भजजम्मा तहेव संमुच्छा।
भोगभुवा गब्भभुवा, थलयर-णहगामिणो सण्णी ॥१३०॥

अर्थ- वे छह प्रकार के तिर्यंच गर्भज और सम्मूर्च्छन के भेद से दो दो प्रकार के हैं इनमें जो भोगभूमि के तिर्यंच हैं वे थलचर नभचर ही हैं, जलचर नहीं हैं और सैनी ही हैं, असैनी नहीं हैं ।

१३०. ॐ ह्रीं संमूर्च्छनगर्भजन्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अजन्मास्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

ये त्रियंच गर्भज सम्मूर्छन के दो दो प्रकार जानो ।
भोग भूमि के त्रियंच नभचर थलचर हैं सेनी मानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३१)

अब अठ्याणवे जीवसमासों को तथा तिर्यंचों के पिच्यासी भेदों को कहते हैं-

अट्ठ वि गब्भज दुविहा, तिविहा सम्मुच्छिणो वि तेवीसा ।
इदि पणसीदी भेया, सव्वेसिं होंति तिरियाणं ॥१३१॥

अर्थ- गर्भज के आठ भेद, ये पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह हुए सम्मूर्च्छन के तेईस भेद, ये पर्याप्त, अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त के भेद से उनहत्तर हुए इस प्रकार से सब तिर्यंचों के पिच्यासी भेद होते हैं ।

जो भी सब व्यवहार छोड़कर निज आत्मा को भाएगा ।
निज अनुभव कर सबल बनेगा महामोक्ष पद पाएगा ॥

१३१. ॐ ह्रीं पञ्चाशीतिभेदरूपतिर्यंचविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शुद्धबुद्धस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जलचर भेद आठ पर्याप्त अपर्याप्त सोलह जानो ।
सम्मूर्छन तेईस भेद त्रय से गुण उनहत्तर मानो ॥
पर्याप्त अपर्याप्त लब्ध्य पर्याप्ति भेद त्रय पहचानो ।
इस प्रकार तिर्यंचों के पच्चासी भेद हुए मानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३२)

अब मनुष्यों के भेद कहते हैं-

अज्जव मिलेच्छखंडे, भोगभूमीसु वि कुभोगभूमीसु ।
मणुआ हवंति दुविहा, णिव्वित्ति अपुण्णगा पुण्णा॥१३२॥

अर्थ- मनुष्य आर्यखंड में, म्लेच्छखंड में भोगभूमि में तथा कुभोगभूमि में हैं ये चारों ही पर्याप्त और निवृत्ति अपर्याप्त के भेद से दो दो प्रकार के होकर सब आठ भेद होते हैं ।

१३२. ॐ ह्रीं आर्यम्लेच्छखण्डविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अखण्डचैतन्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

मनुज आर्य अरु म्लेच्छ खंड अरु भोग कुभोग भूमि के चार।
ये सबलब्ध्य पर्याप्तक होते देव तथा नारकी विचार ॥
पर्याप्तक निवृत्य पर्याप्तक के भेदों से चार प्रकार ।
ये सब आठ भेद होते हैं आगे और सु भेद विचार ॥

तुनक मिजाजी पर परिणति को क्षय कर निज को जो ध्याता।
मिथ्यातम का धरणीधर भी खंड खंड फिर हो जाता॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३३)

फिर वही कहते हैं-

सम्मुच्छणा मणुस्सा, अज्जवखंडेसु होंति णियमेण ।
ते पुण लद्धि अपुण्णा, णारय देवा वि ते दुविहा॥१३३॥

अर्थ- सम्मूर्च्छन मनुष्य आर्यखंड में ही नियम से होते हैं वे लब्ध्यपर्याप्तक ही हैं नारकी तथा देव, पर्याप्त और निर्वृत्य पर्याप्त के भेद से चार प्रकार के हैं । इस तरह जीवसमास का वर्णन किया ।

१३३. ॐ ह्रीं संमूर्च्छितमनुष्यविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

पवित्रचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

आर्य खंड में सम्मूर्छन होते मनुष्य लब्धय पर्याप्त ।
देव नारकी चार भेद हैं अपर्याप्त और पर्याप्त ॥
तिर्यंचों के पच्चासी मनुजों के नौ नारक सुर चार ।
सब मिल अट्ठानवे भेद हैं ये ही जीव समास विचार ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३४)

अब पर्याप्ति का वर्णन करते हैं -

आहारसरीरिंदियणिस्सासुस्साससमास-मणसाणं ।
परिणइ वावारेसु य, जाओ छच्चेव सत्तीओ ॥१३४॥

अर्थ- आहार, शरीर, इन्द्रिय, स्वासोस्वास, भाषा और मन इनकी परिणमन की प्रवृत्ति

धर्म आश्रय लेने वाला अपने में खो जाता है ।
हार मान सारा विभाव पल भर में ही सो जाता है ॥

में सामर्थ्य सो छह प्रकार की पर्याप्ति है ।

१३४. ॐ ह्रीं आहारादिषट्पर्याप्तिरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निराहारस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

शरीर आहार इन्द्रिय स्वासोस्वास जु भाषमन पर्याप्ति।
परिणमन की प्रवृत्ति में सक्षम वह ही है छह पर्याप्ति ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३५)

अब शक्ति का कार्य कहते हैं-

तस्सेव कारणाणं,पुग्गलखंधाण जा हु णिप्पत्ति ।
सा पज्जत्ती भण्णदि, छब्भेया जिणवरिंदेहिं ॥१३५॥

अर्थ- उस शक्ति प्रवृत्ति की पूर्णता को कारण जो पुद्गल स्कन्धों की निष्पत्ति (पूर्णता होना) वह जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा छह भेद वाली पर्याप्ति कही गई है ।

१३५. ॐ ह्रीं पर्याण्तिनिष्पत्तिकारणपुद्गलस्कन्ध विकल्प रहित चैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शुद्धचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

शक्ति प्रवृत्ति पूर्ण का कारण पुद्गल स्कंधो की निष्पत्ति।
जिनवर द्वाराकही गई यह छह भेदों की पर्याप्ति ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

जीव अजीव भेद को जो भी जानेगा सुख पाएगा ।
मोक्षमार्ग को वह जानेगा शुद्ध मोक्ष पद पाएगा ॥

(१३६)

अब पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त के काल को कहते हैं -

पज्जत्तिं गिह्णंतो, मणुपज्जत्तिं ण जाव समणोदि ।
ता णिव्वत्ति अपुण्णो, मणपुण्णो भण्णदे पुण्णो॥१३६॥

अर्थ- यह जीव पर्याप्ति को ग्रहण करता हुआ जब तक मनपर्याप्ति को पूर्ण नहीं करता है तब तक निर्वृत्यपर्याप्तक कहलाता है जब मनपर्याप्ति पूर्ण हो जाती है तब पर्याप्तक कहलाता है ।

१३६. ॐ ह्रीं निर्वृत्त्यपर्याप्तनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

भरितावस्थोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव ग्रहण पर्याप्ति करता जब तक मन पर्याप्ति पूर्ण ।
निर्वृत्पर्याप्तक है पर्याप्तक मन पर्याप्ति जब पूर्ण ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३७)

अब लब्ध्यपर्याप्तका स्वरूप कहते हैं-

उस्सासट्ठारसमे, भागे जो मरदि ण य समाणेदि ।
एका वि य पज्जत्ती, लद्धि-अपुण्णो हवे सो दु ॥१३७॥

अर्थ- जो जीव स्वास के अठारहवें भाग में मरता है एक भी पर्याप्ति को पूर्ण नहीं करता है वह जीव लब्ध्यपर्याप्तक कहलाता है।

१३७. ॐ ह्रीं लब्धयपर्याप्तनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शाश्वतबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव स्वास के अट्ठारहवें भाग एक में मरता है ।
लब्ध अपर्याप्तक होता है पर्याप्ति पूर्ण न करता है ॥

गीत गुनगुनाती निज परिणति पंच ताल में गाती है ।
रुन झुन रुन झुन नाच नाच कर निज छवि लखती जाती है॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३८)

अब एकेन्द्रियादि जीवों के पर्याप्तियों की संख्या कहते हैं -

लद्धियपुण्णे पुण्णं, पज्जत्ती एयक्खवियलसण्णीणं।
चदु पण छक्कं कमसो, पज्जत्तीए वियाणेह ॥१३८॥

अर्थ- एकेन्द्रिय, विकलत्रय तथा संज्ञी जीव के क्रम से चार, पांच, छह पर्याप्तियां जानो लब्ध्यपर्याप्तक अपर्याप्तक है इसके पर्याप्तियां नहीं होती ।

१३८. ॐ ह्रीं विकलेन्द्रियादिपर्याप्तिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरायुधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एकेन्द्रिय विकल त्रय संज्ञी चार पांच छह क्रम पर्याप्ति।
लब्ध पर्याप्तक अपर्याप्तक इनको ना होती पर्याप्ति ॥
तथा असंज्ञी पांच जानिए इस प्रकार ये हैं पर्याप्ति ।
लब्ध पर्याप्त अपर्याप्तक इनको ना होती पर्याप्ति ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१३९)

अब प्राणों का वर्णन करते हैं। पहिले प्राणों का स्वरूप वा संख्या कहते हैं-

मणवयणकायइं दियणिस्सासुस्सासआउ उदयाणं ।
जेसिं जोए जम्मदि, मरदि विओगम्मि ते वि दह पाणा॥१३९॥

अर्थ- जो मन,वचन, काय, इन्द्रिय, स्वासोस्वास और आयु इनके संयोग से उत्पन्न हो जीवे वियोग से मरे वे प्राण हैं और वे दस होते हैं ।

अंतिम ध्यान पूर्ण होते ही पाता है चेतन निर्वाण ।
निमिष मात्र में हो जाते हैं चउ अघातिया भी अवसान॥

१३९. ॐ ह्रीं आयुबलादिदशप्राणरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यप्राणस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

मन वच काया इन्द्रिय स्वासोस्वास आयु इनका संयोग।
पाकर जीव मरे वियोग से वही प्राण इसका है योग ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१३९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४०)

अब एकेन्द्रियादि जीवों के प्राणों की संख्या कहते हैं -

एयक्खे चदुपाणा, बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णीणं।
छह सत्त अट्ठ णवयं, दह पुण्णाणं कमे पाणा ॥१४०॥

अर्थ- एकेन्द्रिय के चार प्राण हैं दोइन्द्रिय, तेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय, सैनी पचेन्द्रिय के, पर्यप्तों के अनुक्रम से छह, सात, आठ,नौ, दस प्राण हैं। ये प्राण पर्याप्त अवस्था में कहे गये हैं ।

१४०. ॐ ह्रीं शरीरनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चिन्मयदेहस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एकेन्द्रिय के चार प्राण हैं द्वय के छह त्रय के हैं सात ।
चतुरिन्द्रिय के आठ असेनी नौ सेनी के दस विख्यात ॥
ये पर्याप्त अवस्था में ही होते हैं निश्चित मानो ।
अपर्याप्त में जो होते हैं आप उन्हें भी अब जानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

प्रतिष्ठा पूजाव आज्ञा धन विभव मिलता प्रचुर ।
लोक त्रय भी देखता आश्चर्य रूपी अभ्युदय ॥

(१४१)

अब इन ही जीवों के अपर्याप्त अवस्था में कहते हैं-

दुविहाणमपुण्णाणं, इगिवितिचउरक्ख अंतिमदुगाणं।
तिय चउ पण छह सत्त य, कमेण पाणा मुणेयव्वा॥१४१॥

अर्थ- दो प्रकार के अपर्याप्त जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय असैनी तथा सैनी पंचेन्द्रियों के तीन, चार, पांच,छह, सात ऐसे अनुक्रम से प्राण जानना चाहिये ।

१४१. ॐ ह्रीं वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमविकल्परहित चैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सत्ताप्राणस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

दो प्रकार के अपर्याप्त एकेन्द्रिय के त्रय होते प्राण ।
दो इन्द्रिय के चार तीन के पांच चार के छह है प्राण ॥
तथा असेनी सेनी पंचेन्द्रिय के सात प्राण जानो ।
निवृत्य पर्याप्त लध्य पर्याप्त अपर्याप्त ये दो मानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४२)

अब विकलत्रय जीवोंका ठिकाना (स्थान) कहते हैं-

वितिचउरक्खा जीवा, हवंति णियमेण कम्मभूमीसु ।
चरमे दीवे अद्धे, चरमसमुद्दे वि सव्वेसु ॥१४२॥

अर्थ- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय (विकलत्रय) जीव नियम से कर्मभूमि में ही होते हैं तथा अन्त के आधे द्वीप में और अन्त के सम्पूर्ण समुद्र में होते हैं ।

१४२. ॐ ह्रीं विकलत्रयस्थाननियमविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

बोधप्राणस्वरूपोऽहं ।

यदि पुरुषार्थ जाग जाए तो हो जाए पूरा निर्दोष ।
सिद्ध स्वपद पाते ही होगा प्राप्त इसे अनंत गुणकोष ॥

छंद ताटंक

द्वय त्रय चतुरिन्द्रिय जु नियम से कर्म भूमि में ही होते।
तथा अंत के अर्धद्वीप अंतिम सागर में भी होते ॥
ढाई द्वीप के मनुज लोक के कर्म भूमि के जानो क्षेत्र ।
पांचों भरत पंच ऐरावत पंच विदेह कर्म भूक्षेत्र ॥
अंत स्वयंभूद्वीप अर्ध में पूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र ।
विकल त्रय प्राणी होते हैं अन्य नहीं होते ये त्रय ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४३)

अब अढ़ाई द्वीप के बारह तिर्यंच हैं उनकी व्यवस्था हैमवत पर्वत के समान है ऐसा कहते हैं--

माणुसखित्तस्स बहिं, चरमे दीवस्स अद्धयं जाव ।
सव्वत्थे वि तिरिच्छा, हिमवदतिरिएहिं सारिच्छा॥१४३॥

अर्थ- मनुष्य क्षेत्र से बाहर मानुषोत्तर पर्वत से आगे अन्त के स्वयंप्रभ द्वीप के आधे भाग तक बीच के सब द्वीप समुद्रों के तिर्यंच हैमवत क्षेत्र के तिर्यंचों के समान हैं।

१४३. ॐ ह्रीं मानुषक्षेत्रविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरायुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

मनुज क्षेत्र से बाहर अथवा मानुषोत्तर के आगे ।
अन्त स्वयंप्रभ द्वीप अर्ध तक बीच समुद्र द्वीप तिर्यंच ॥
रचना जघन्य भोग भूमि इनमें भी होते हैं तिर्यंच ।
हेमवत क्षेत्र के तिर्यंचों सम आयु काय तिर्यंच ॥

अब मिथ्यात्व हुआ है बौना इसके कसबल टूट गए ।
पर परणिति दुष्टा के देखो भाग सदा को फूट गए ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४४)

अब जलचर जीवों के स्थान कहते हैं -

लवणोए कालोए, अंतिम जलिहिम्मि जलयरा संति ।
सेससमुद्देसु पुणो, ण जलयरा संति णियमेण ॥४४॥

अर्थ- लवणोदधि समुद्र में, कालोदधि समुद्र में अन्त के स्वयंभूरमण समुद्र में जलचर जीव हैं और अवशेष बीच के समुद्रों में नियम से जलचर जीव नहीं हैं।

१४४. ॐ ह्रीं लवणोदाधिसमुद्रगतजलचरविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

शिवधामस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जलचर लवणोदधि कालोदधि अंतिम स्वयं भूरमण जुहोंय ।
शेष समुद्र असंख्यातों में जलचर जीव कभी ना होंय ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से प्रभु निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४५)

अब देवों के स्थान कहेंगे । पहिले भवनवासी व्यन्तरों के कहते हैं-

खरभायपंकभाए, भावणदेवाण होंति भवणाणि ।
वितरदेवाण तहा दुहं पि य तिरिय-लोयम्मि ॥१४५॥

अर्थ- खरभाग पंकभाग में भवन वासियों के भवन तथा व्यन्तर देवों के निवास हैं और इन दोनों के तिर्यग्लोक में भी निवास है ।

१४५. ॐ ह्रीं भवनदेवचैतत्यालयविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अकृत्रिमनिजध्रुवस्वरूपोऽहं ।

राग द्वेष मोहादि विकारी भाव शून्य हो गए स्वयं ।
परभावों के समुद्र सूखे आज अचानक देख स्वयं ॥

छंद ताटंक

पहिली पृथ्वी रत्न प्रभा का खर अरु पंक भाग जानो।
भवन वासि असंख्यात के इनमें निवास पहचानो ॥
मध्य लोक में असंख्यात हैं द्वीप समुद्र वहाँ भी वास ।
मध्य लोक ही तिर्यक् लोक कहाता कथनी इसी प्रकार॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४६)

अब ज्योतिषी, कल्पवासी तथा नारकियों के स्थान कहते हैं-

जोइसियाण विमाणा, रज्जूमित्ते वि तिरियलोए वि ।
कप्पसुरा उड्ढम्हि य, अहलोए हौंति णेरइया ॥१४६॥

अर्थ- ज्योतिषी देवों केविमान एकराजू प्रमाण तिर्यग्लोक के असंख्यात द्वीप समुद्रोंके ऊपर हैं कल्पवासी ऊर्ध्वलोक में हैं नारकी अधोलोक में हैं ।

१४६. ॐ ह्रीं ज्योतिष्कदेवचैत्यालयविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
सहजज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

ज़्योतिषि देवों के विमान हैं मध्य लोक इक राजु प्रमाण।
असंख्यात द्वीपों समुद्र के ऊपर हैं ये सर्व विमान ॥
इनसे ऊपर ऊर्ध्वलोक में कल्पवासि सुर रहते हैं ।
अधोलोक में सर्व नारकी प्राणी देखो रहते हैं ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

कौन मैत्री कलह समाधि अर्चना मायाचार करे ।
जित देखो तित ही है आत्मा आत्म वंचना कौन करे ॥

(१४७)

अब जीवों की संख्या कहेंगे । पहिले तेजवातकाय के जीवों की संख्या कहते हैं -

वादरपज्जत्तिजुदा, घणआवलिया असंख-भागा दु ।
किंचूणलोयमित्ता, तेऊ वाऊ जहाकमसो ॥१४७॥

अर्थ- अग्निकाय, वातकाय के वादर पर्याप्त सहित जीव घन आवलीके असंख्यातवें भाग तथा कुछ कम लोक के प्रदेश प्रमाणयथा अनुक्रम जानना चाहिये ।

१४७. ॐ ह्रीं बादरपर्याप्ततेजस्कायिकविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
सहजचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

अग्निकाय घन आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण ।
वायु काय के भी तुम जानो कुछ कम लोक प्रदेश प्रमाण॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४८)

अब पृथ्वी आदि की संख्या कहते हैं-

पुढवीतोयसरीरा,पत्तेया वि य पइट्ठिया इयरा ।
होंति असंखा सेढो, पुण्णापुण्णा य तह य तसा॥१४८॥

अर्थ- पृथ्वीकायिक, अपकायिक प्रत्येक वनस्पतिकायिक सप्रतिष्ठित वा अप्रतिष्ठित तथा त्रस ये सब पर्याप्त अपर्याप्त जीव हैं वे जुदे जुदे असंख्यात जगतश्रेणी प्रमाण हैं ।

१४८. ॐ ह्रीं दिव्त्रिचतुरिन्द्रियादिनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
सहजब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पृथ्वी कायिक अपकायिक प्रत्येक वनस्पति कायिक जान।
सप्रतिष्ठि अप्रतिष्ठ त्रय ये सब पर्याप्ति अपर्याप्त जान॥

ज्ञान ज्योति की आभा पायी, पाया है सम्यक् दर्शन।
ज्ञान चरित्र स्वंय आए हैं मुदित हो गया आनंदघन ॥

होते असंख्यात् जगत श्रेणी प्रमाण ये प्रथक प्रथक ।
इस प्रकार जीवों की संख्या आगे भी लो जान अथक॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१४९)

फिर वही कहते हैं-

वादरलद्धि अपुण्णा, असंखलौया हवंति पत्तेया ।
तह य अपुण्णा सुहुमा, पुण्णा विय संखगुणगणिया॥१४९॥

अर्थ- प्रत्येक वनस्पति तथा वादर लब्ध्यपर्याप्तक जीव असंख्यात लोकप्रमाण हैं इसी तरह सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्यात लोकप्रमाण हैं और सूक्ष्मपर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

१४९. ॐ ह्रीं बादरलब्ध्यपर्याप्तकनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजशिवस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

है प्रत्येक वनस्पति अरु बादर लब्ध्य पर्याप्तक जीव ।
संख्या इनकी असंख्यात लोक प्रमाण जानो सुसदीव ॥
सूक्ष्म अपर्याप्त की संख्या असंख्यात लोक प्रमाण सुनी।
और सूक्ष्म पर्याप्तक जीवों की संख्या संख्यात गुणी ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१४९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५०)

फिर वही कहते हैं-

सिद्धा संति अणंता, सिद्धाहिंतो अणंतगुणगणिया ।
होंति णिगोदा जीवा, भाग अणंता अभव्वा य ॥१५०॥

गुरु प्रसाद से आत्मा भी है देव नहीं पहचान सका ।
मिथ्या तीर्थों में भ्रमता है नहीं धूर्तता त्याग सका ॥

अर्थ- सिद्ध जीव अनंत हैं सिद्धों से अन्तगुणे निगोदिया जीव हैं और सिद्धों के अनन्तवें भाग अभव्य जीव हैं ।

१५०. ॐ ह्रीं सिद्धसंख्याविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निषकलंकचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सिद्ध जीव की संख्या जानो जो अनंत हैं जानन योग्य।
सिद्धों से भी अनंत गुणे हैं निगोदिया जीव जानन योग्य॥
सिद्धों के अनंतवें भाग प्रमाण अभव्य जीव होते ।
जीव भव्य तो सिद्धों से भी गुणे अनंत सदा होते ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५१)

फिर वही कहते हैं-

सम्मुच्छिमा हु मणुया, सेढिसंखिज्ज भागमित्ता हु ।
गब्भजमणुया सव्वे, संखिज्जा होंति णियमेण॥१५१॥

अर्थ- सम्मूर्छन मनुष्य जगत श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र है और सब गर्भज मनुष्य नियम से संख्यात ही हैं ।

१५१. ॐ ह्रीं गर्भजमनुष्यविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्विकारचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जगत श्रेणी के असंख्यातवें भाग मनुज सम्मूर्छन हैं ।
किन्तु नियम से मनुष्य गर्भज तो संख्यात सबंधन हैं ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५१॥

ज्ञान स्वरूपी स्वानुभूति ही जिन शासन का है मंतव्य ।
जीव मोक्ष जाने के पहिले निश्चित कर अपना गंतव्य ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५२)

अब सान्तर निरन्तर को कहते हैं-

देवा वि णारया वि य, लद्धियपुण्णा हु संतरा होंति।
सम्मुच्छिया वि मणुया, सेसा सव्वे णिरंतरया॥१५२॥

अर्थ- देव, नारकी, लब्ध्य पर्याप्तक और सम्मूर्छन मनुष्य ये तो सान्तर (अन्तर सहित) हैं अवशेष सब जीव निरन्तर हैं ।

१५२. ॐ ह्रीं सांतरनिरंतरोतत्पत्तिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अविकारस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

देव नारकी लब्ध्य पर्याप्तक सम्मूर्छन मनुष्य मानो ।
ये सान्तर हैं शेष जीव सब आप निरन्तर ही मानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५३)

अब जीवों की संख्या कर अल्प बहुत्व कहते हैं-

मणुयादो णेरइया, णेरइयादो असंखगुणगणिया।
सव्वे हवंति देवा, पत्तेयवणप्फदी तत्तो॥१५३॥

अर्थ- मनुष्यों से नारकी असंख्यात गुणे हैं नारकियों से सब देव असंख्यात गुणे हैं देवों से प्रत्येक वनस्पति जीव असंख्यात गुणे हैं।

१५३. ॐ ह्रीं नारकादिदसंख्याविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वयंभूस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

मनुजों से नारकी असंख्यात गुणे इनसे देव असंख्यात गुणे ।
देवों से प्रत्येक वनस्पति कायिक जीव असंख्यात गुणे॥

तुझे पता है तू अनादि है तू अनंत है महिमावंत ।
एक मात्र सुख बलधारी है ज्ञानवंत है निज भगवंत ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५४)

फिर वही कहते हैं

पंचक्खा चउरक्खा, लद्धियपुण्णा तहेव तेयक्खा ।
वेयक्खा विय कमसो, विसेससहिदा हु सव्व संखाए ॥१५४॥

अर्थ- पंचिन्द्रिय, चौइन्द्रिय तेइन्द्रिय द्वीन्द्रिय ये सब लब्ध्यपर्याप्तक जीव संख्या में विशेषाधिक हैं । कुछ अधिक को विशेषाधिक कहते हैं सो ये अनुक्रम से बढ़ते-बढ़ते हैं।

१५४. ॐ ह्रीं पञ्चेन्द्रियादिलब्ध्यपर्याप्तकसंख्याक्रमकिल्परहितचैतन्य स्वरूपाय नमः ।

स्वयंज्योतिस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पंचेन्द्रिय चऊ त्रय दो इन्द्रिय ये सब लब्ध्य पर्याप्तक जीव।
विशेष अधिक संख्या में अनुक्रम से बढ़ते ये जीव सदीव॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५५)

फिर वही कहते हैं-

चउरक्खा पंचक्खा, वेयक्खा, तह य जाण तेयक्खा।
एदे पज्जत्तिजुदा,अहिया अहिया कमेणेव॥१५५॥

अर्थ- चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, ये पर्याप्ति सहित जीव अनुक्रम से अधिक अधिक जानो ।

देव नहीं मंदिर तीरथ में श्रुत केवली कथन जानो ।
तन देवल में हैं जिनदेव कथन निश्चय स्वरूप मानो ॥

१५५. ॐ ह्रीं चतुरिन्द्रियादिपर्याप्तनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

परंज्योतिस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय द्वय त्रय ये पर्याप्ति सहित हैं जीव ।
अनुक्रम से ये अधिक अधिक हैं जानो यह जिन वचन सदीव॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५६)

फिर वही कहते हैं-

परिवज्जिय सुहुमाणं, सेसतिरिक्खाण पुण्णदेहाणं ।
इक्को भागो होदि हु, संखातीदा अपुण्णाणं ॥१५६॥

अर्थ- सूक्ष्म जीवों को छोड़कर अवशेष पर्याप्ति तिर्यंच हैं उनका एक भाग तो पर्याप्त है और बहुभाग असंख्याते अपर्याप्त हैं ।

१५६. ॐ ह्रीं पृथ्व्याद्यपर्याप्तनामकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजज्योतिस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सूक्ष्म जीवों को छोड़ शेष पर्याप्ति त्रियंच कहे हैं जीव ।
एक भाग पर्याप्त भाग बहु असंख्यात अपर्याप्तक जीव॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५७)

फिर वही कहते हैं-

कहीं नहीं कोई बाधक है मुक्ति मार्ग में यह ले जान ।
एकमात्र निज परिणति साधक मोक्षमार्ग में ले पहचान॥

सुहुमापुज्जत्ताणं, इक्को भागो हवेइ णियमेण।
संखिज्जा खलु भागा, तेसिं पज्जत्तिदेहाणं॥१५७॥

अर्थ- सूक्ष्म पर्याप्तक जीव संख्यात भाग हैं उनमें अपर्याप्तक जीव नियम से एक भाग हैं ।

१५७. ॐ ह्रीं सूक्ष्मपर्याप्तनामकमर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजबोधानंदस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सूक्ष्म पर्याप्तक जीव बहुत है ये संख्यात को भाग लो जान।
अपर्याप्तक जीव नियम से केवल एक भाग लो जान ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५८)

फिर वही कहते हैं-

संखिज्जगुणा देवा, अंतिमपटलादु आणदं जाव।
तत्तो असंखगुणिदा, सोहम्मं जाव पडि-पडलं॥१५८॥

अर्थ- देव अन्तिमपटल से लेकर नीचे आनत स्वर्ग के पटलपर्यंत संख्यातगुणे हैं उसके बाद नीचे सौधर्मपर्यंत असंख्यातगुणे पटलपटल प्रति हैं ।

१५८. ॐ ह्रीं कल्पवासीदेवसंख्याविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजशुद्धस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

देव अनुत्तर से ले आनत स्वर्ग पटल संख्यात गुणे ।
उसके नीचे सौधर्म पटल तक प्रतिपटल असंख्यात गुणे॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५८॥

अपने स्वचतुष्टय में रहना ही तेरा उत्तम जीतव्य ।
इसका आश्रय है तो तेरा निश्चित अति उज्ज्वल भवितव्य ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१५९)

फिर वही कहते हैं-

सत्तमणारयहिंतो, असंखगुणिदा हवंति णेरइया।
जावय पढमं णरयं, बहुदुक्खा होंति हेट्ठिट्ठा॥१५९॥

अर्थ- सातवें नरक से लेकर ऊपर पहिले नरक तक जीव असंख्यात २ गुणे हैं पहिले नरक से लेकर नीचे २ बहुत दुःख हैं

१५९. ॐ ह्रीं प्रथमनरकादिबहुदुःखविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजबुद्धस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

नर्क सातवें से लेकर पहिले तक जीव असंख्यात गुणे।
नर्क प्रथम से नीचे नीचे बहु दुख पाते कष्ट गुण ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१५९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६०)

फिर वही कहते हैं-।

कप्पसुरा भावणया, विंतरदेवा तहेव जोइसिया।
बे होंति असंखगुणा, संखगुणा होंति जोइसिया॥१६०॥

अर्थ- कल्पवासी देवों से भवनवासी देव व्यन्तरदेव ये दो राशि तो असंख्यातगुणी है और ज्योतिषी देव व्यन्तरों से संख्यातगुणे हैं ।

१६०. ॐ ह्रीं किंनराद्यष्टप्रकारव्यन्तरदेवविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजसुखबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

कल्पवासि अरु भवनवासी व्यन्तर दो राशि संख्यात गुणे।
व्यन्तर देवों से ज्योतिषी देव कहे संख्यात गुणे ॥

तन मंदिर में जिनवर रहते खोज रहा तू मंदिर बीच ।
हमें हंसी आती है जैसे सिद्ध खोजते भोजन रीझ ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१६०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६१)

एब एकेन्द्रिय की आयु कहते हैं-

पत्तेयाणं आऊ, वाससहस्साणि दह हवे परमं ।
अन्तोमुहुत्तमाऊ, साहारणसव्वसुहुमाणं ॥१६१॥

अर्थ- प्रत्येक वनस्पति की आयु दस हजार वर्ष की है साधारणनित्य, इतरनिगोद सूक्ष्म बादर तथा सब ही सूक्ष्म पृथ्वी, अप्, तेज, वातकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु अंतर्मुहूर्त्त की है।

१६१. ॐ ह्रीं साधारणसर्वसूक्ष्मजीवायुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानसागरस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

प्रत्येक वनस्पति की आयु दस हजार वर्ष उत्कृष्ट ।
साधारण नित्य इतर निगोद अन्तमुहूर्त्त आयु उत्कृष्ट ॥
बादर सूक्ष्म सूक्ष्म पृथ्वी अपतेजवायु कायिक जो जीव।
इन सबकी उत्कृष्ट आयु अन्तमुहूर्त्त की कही सदीव ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१६१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६२)

अब बादर जीवों की आयु कहते हैं-

बावीस सत्तसहसा, पुढवीतोयाण आउसं होदि।
अग्गीणं तिण्णि दिणा, तिण्णि सहस्साणि वाऊणं ॥१६२॥

अर्थ- पृथ्वीकायिक और अपकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु क्रम से बाईस हजार वर्ष

सहज तत्त्व का नाश न होता नहीं मलिन होती ध्रुव जोत।
ज्ञान अनादि अनंत शाश्वत सुख स्वभाव से ओत प्रोत॥

और सात हजार वर्ष की अग्निकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु तीन दिन की है वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष की है।

१६२. ॐ ह्रीं अग्निकायिकादिजीवायुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

अबंधस्वरूपोऽहं।

छंद ताटंक

बादर पृथ्वी कायिक आयु बाईस सहस्र वर्ष उत्कृष्ट।
अपकायिक की सात सहस्र है अग्नि काय त्रय दिन उत्कृष्ट॥
वायु कायिक जीवों की आयु त्रय सहस वर्ष आयु उत्कृष्ट।
ये सब बादर की कथनी जिन वचन प्रमाण कही उत्कृष्ट॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है॥१६२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(१६३)

अब द्वीन्द्रिय आदिक की उत्कृष्ट आयु कहते हैं-

वारसवास वियक्खे एगुणवण्णा दिणाणि तेयक्खे।
चउरक्खे छम्मासा, पंचक्खे तिण्णि पल्लाणि॥१६३॥

अर्थ- द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष की है त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु उनन्चास (४९) दिन की है चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु छह मास की है पंचेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु भोगभूमि की अपेक्षा तीन पल्य की है।

१६३. ॐ ह्रीं द्वीन्द्रियादिजीवायुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

निर्बन्धज्ञानस्वरूपोऽहं।

छंद ताटंक

दो इन्द्रिय जीवों की आयु बारह वर्ष कही उत्कृष्ट।
त्रय इन्द्रिय जीवों की आयु उनन्चास दिन की उत्कृष्ट॥
चतुरिन्द्रिय जीवों की है उत्कृष्ट आयु छह मास प्रमाण।
भोग भूमि पंचेन्द्रिय की है तीन पल्य उत्कृष्ट प्रमाण॥

अप्रतिहत शिव मार्ग पास है सम्प्रदान की शक्ति सजोत।
उपादान जिसका जाग्रत है वही स्वयं भवदधि का पोत॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१६३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६४)

अब सब ही तिर्यंच और मनुष्यों की जघन्य आयु कहते हैं-

सव्वजहण्णं आऊ, लद्धिअपुण्णाण सव्वजीवाणं।
मज्झिमहीणमुहुत्तं, पज्जत्तिजुदाण णिक्किट्ठं॥१६४॥

अर्थ- लबध्यपर्याप्तक सब जीवों की जघन्य आयु मध्यमहीन मुहूर्त्त है (यह क्षुद्रभवमात्र जानना चाहिए एक उस्वास के अठारहवें भाग मात्र है) लब्ध्यपर्याप्तक (कर्मभूमि के तिर्यंच मनुष्य सब ही पर्याप्त) जीवों की जघन्य आयु भी मध्यमहीन मुहूर्त्त है । यह पहिले से बड़ा मध्यअन्तमुहूर्त्त है।

१६४. ॐ ह्रीं सर्वजघन्यायुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

नाशरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

जघन्य आयु लब्ध्य पर्याप्तक सबकी मध्यमहीन मूहूर्त्त ।
लब्ध्य पर्याप्तक जीवों की आयु मध्यम हीन मुहूर्त्त ॥
कर्मभूमि के त्रियंच मनुज पर्याप्ति सभी की जघन्य आयु।
मध्यम हीन मुहूर्त्त जानना इन सब की ही जघन्य आयु॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१६४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६५)

अब देवनारकियों की आयु कहते हैं -

देवाण णारयाणं, सायरसंखा हवंति तेत्तीसा ।
उक्किट्ठं च जहण्णं, वासाणं दस सहस्साणि ॥१६५॥

शुभ भावों की खेती करके साता के दिन पाए है ।
अशुभ भाव की खेती करके कष्ट असाता पाए है ॥

अर्थ- देवों की तथा नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की है और जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है ।

१६५. ॐ ह्रीं सागरसंख्याविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

आनंदसिन्धुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

देवों तथा नारकी की उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर ।
तथा जघन्य आयु दोनों की है सहस्र वर्ष दुखकर ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६६)

अब एकेन्द्रिय आदि जीवों की शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट व जघन्य दस गाथाओं में कहते हैं-

अंगुल असंखभागो, एयक्खचउक्कदेहपरिमाणं ।
जोयणसहस्समहियं, पउमं उक्कस्सयं जाण ॥१६६॥

अर्थ- एकेन्द्रिय चतुष्क (पृथ्वी, अप, तेज, वायुकायके) जीवों की अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट घन अंगुल के असंख्यातवें भाग जानो (जहां सूक्ष्म तथा बादर पर्याप्तक अपर्याप्तक का शरीर छोटा बड़ा है तो भी घनांगुल के असंख्यातवें भाग ही सामान्य रूप से कहा है। विशेष गोम्मटसारसे जानना चाहिये और अंगुल उत्सेध अंगुल आठयव प्रमाण लेना, प्रमाणांगुल न लेना) प्रत्येक वनस्पति कायमें उत्कृष्ट अवगाहनायुक्त कमल है उसकी अवगाहना कुछ अधिक हजार योजन है ।

१६६. ॐ ह्रीं उत्तमभोगभूमिजमनुष्यशरीरोत्सेधविकल्परहितचैतन्य स्वरूपाय नमः ।

दोहोत्सेधरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

एकेन्द्रिय चतुष्क पृथ्वी अपतेज वायु उत्कृष्ट जघन्य ।
घन अंगुल के असंख्यातवें भाग जु अवगाहना कथन ॥

मिश्र भाव की खेती करके नर भव फिर से पाया है ।
जिन श्रुत जिनकुल बड़े भाग्य से अबकी तूने पाया है ॥

प्रत्येक वनस्पति कायक में उत्कृष्ट अवगाहना कमल ।
एक सहस्र योजन से है कुछ अधिक जु अवगाहना सरल॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१६६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१६७)

फिर वही कहते हैं-

बायसजोयण संखो, कोसतियं गोब्भिया समुद्दिट्ठा ।
भमरो जोयणमेगं, सहस्स सम्मुच्छिमो मच्छो ॥१६७॥

अर्थ- द्वीन्द्रियों में शंख बड़ा है उसकी उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन लम्बी है त्रीन्द्रियों में गोभिका (कानखिजूरा) बड़ा है उसकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस लम्बी है चतुरिन्द्रियों में बड़ा भ्रमर है उसकी उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन लम्बी है पंचेन्द्रियों में बड़ा मच्छ है उसकी उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लम्बी है । ये जीव अंत के स्वयंभूरमण द्वीप तथा समुद्र में जानने ।

१६७. ॐ ह्रीं द्वीन्द्रियादिजीवशरीरोत्सेधविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्वपुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

दो इन्द्रिय में शंख बड़ा है बारह योजन अवगाहन ।
त्रय इन्द्रिय में कान खजूरा तीन कोस की अवगाहन ॥
चतुरिन्द्रिय में भ्रमर बड़ा है इक योजन की अवगाहन ।
पंचेन्द्रिय में मच्छ बड़ा योजन इक सहस्र अवगाहन ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१६७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अर्घ्यं नि. ।

इसको यदि तू सफल बनाने का प्रयत्न कुछ कर लेगा।
भेद ज्ञान कर निज पुरुषार्थ शक्ति से समकित निधि लेगा॥

(१६८)

अब नारकियों की उत्कृष्ट अवगाहना कहते हैं-

पंचसयाधणुछेहा, सत्तमणरए हवंति णारइया।
तत्तो उस्सेहेण य, अद्धद्धा होंति उवरुवरि ॥१६८॥

अर्थ- सातवें नरक में नारकी जीवों का शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा है उसके ऊपर शरीर की ऊंचाई आधी आधी है (छट्टे में दो सौ पचास धनुष, पांचवें में एक सौ पच्चीस धनुष, चौथे में साढ़े बासठ धनुष तीस में सवा इकतीस धनुष, दूसरे में पन्द्रह धनुष दस आना, पहिले में सात धनुष तेरह आना इस तरह जानना चाहिये। इनमें गुणचास पटल हैं उनमें न्यारी न्यारी (भिन्न-भिन्न) विशेष अवगाहना त्रिलोकसार से जानना चाहिये)।

१६८. ॐ ह्रीं पञ्चशतधनूत्सेधदनारकशरीरविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

सदानंदघनस्वरूपोऽहं।

छंद ताटंक

सप्तम नरक नारकी की उत्कृष्ट पांच सौ घनुष कही।
छट्टे दो सौ पचास है पंचम जु सवासौ धनुष कही॥
चौथी साढ़े बासठ धनुष तीजे सवा इकतीस धनुष।
तथा धनुष का माप जान तो चार हाथ का एक धनुष॥
दूजे पंद्रह घनुष दस आना पहिले सात घनुष तेरह आना।
उनन्चास ये पटल जु न्यारी न्यारी उत्कृष्ट अवगाहन॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है॥१६८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अर्घ्यं नि.।

(१६९)

अब देवों की अवगाहना कहते हैं-

असुराणं पणवीसं, सेसं णवभावणा य दहदंडं।
विंतरदेवाण तहा, जोइसिया सत्तधणुदेहा ॥१६९॥

विश्व कह रहा श्री जिनदेव सदा देवल में रहते हैं ।
विरले ही ज्ञानीजन कहते तन देवल में रहते हैं ॥

अर्थ- भवनवासियों में असुरकुमारों के शरीर की ऊंचाई पच्चीस धनुष बाकी नौ भवनवासियों की दस धनुष व्यन्तरों के शरीर की ऊंचाई दस धनुष और ज्योतिषी देवों के शरीर की ऊंचाई सात धनुष है ।

१६९. ॐ ह्रीं असुरादिदेवोत्सेधविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सदाविज्ञानघनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

भवन वासी में असुर कुमारों की पच्चीस धनुष ऊंचाई।
बाकी भवन वासी नौ की दश घनुष बतायी हऊंचाई ॥
व्यन्तर की दस धनुष ऊचाई ज्योतिषि की है सात धनुष।
ये उत्कृष्ट कही अवगाहन चार हाथ का एक धनुष ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१६९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७०)

अब स्वर्ग के देवों की कहते हैं-

दुगदुगचदुचदुदुगदुगकप्पसुराणं सरीरपरिमाणं ।
सत्तछहपंचहत्था, चउरो अद्धद्ध हीणा य ॥१७०॥

अर्थ- दो-सौ धर्म, ईशान दो सान्तकुमार, माहेन्द्र चार ब्रह्मब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ चार शुक्र महाशुक्र सत्तर, सहस्रार दो आनत, प्राणत,-दो आरण, अच्युत युगलों के देवों का शरीर क्रम से सात हाथ, छह हाथ, पांच हाथ, चार हाथ, साढ़े तीन हाथ, तीन हाथ ऊंचा है ।

१७०. ॐ ह्रीं कल्पवासीदेवोत्सेधविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वचिदानन्दस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सौधर्म अरु ईशान स्वर्ग में सात हाथ की ऊंचाई ।
सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्ग में छह हाथों की ऊंचाई ॥

दे उपदेश प्रशस्त राग का भरमाता जो प्राणी को ।
पटक रहा भव्यों को भव में पता नहीं अज्ञानी को ॥

ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ट पांच हाथ की ऊंचाई ।
शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार चार हाथ की ऊंचाई ॥
आनत प्राणत साढ़े तीन हाथ की होती ऊंचाई ।
आरण अच्युत तीन हाथ की ही होती है ऊंचाई ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७१)

फिर वही कहते हैं-

हिट्ठिममज्झिमउवरिमगेवज्जे तह विमाणचउदसए ।
अद्धजुदा बे हत्था, दीणं अद्धद्धयं उवरिं ॥१७१॥

अर्थ- अधोग्रैवेयक में, मध्यमग्रैवेयक में, ऊपर के ग्रैवेयक में, नव (९) अनुदिश तथा पांच अनुत्तरों में क्रम से आधा-आधा हाथ हीन अर्थात् ढाई हाथ, दो हाथ, डेढ हाथ और एक हाथ देवों के शरीर की ऊंचाई है ।

१७१. ॐ ह्रीं ग्रैवेयकादिदेवोत्सेधविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

नित्यानन्दघनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सुनो अधोग्रैवक में होती दो हाथों की ऊंचाई ।
मध्यम ग्रैवक में होती दो हाथों की ऊंचाई ॥
उपरिमग्रैवयक में होती डेढ़ हाथ की ऊंचाई ।
नव अनुदिश अरु पंच अनुत्तर एक हाथ की ऊंचाई ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

राग प्रशस्त अरु अप्रशस्त दोनों ही दुख के कारण हैं।
एक मात्र निज शुद्ध भाव ही भव सागर के तारण हैं ॥

(१७२)

अब भरत ऐरावत क्षेत्र में काल की अपेक्षा से मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई कहते हैं-

अवसप्पिणिए पढमे, काले मणुया तिकोसउच्छेहा ।
छट्ठस्स वि अवसाणे, हत्थपमाणा विवत्था य ॥१७२॥

अर्थ अवसर्पिणी के प्रथम काल की आदि में मनुष्यों का शरीर तीन कोस ऊंचा होता है छठे काल के अन्त में मनुष्यों का शरीर एक हाथ ऊंचा होता है और छठे काल के जीव वस्त्रादि रहित होते हैं ।

१७२. ॐ ह्रीं अवसर्पिणीस्थितजीवदेहोस्तेधविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

नित्यानन्दघनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

भरतैरावत काल अपेक्षा अवसर्पिणी जुकाल प्रथम ।
आदि में तो मनुज शरीर जु तीन कोस ऊँचा सक्षम ॥
छठे काल के अन्त समय में नरतन एक हाथ ऊंचा ।
छठे काल का जीव वस्त्र से रहित सदा ही तो होता॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७३)

अब एकेन्द्रिय जीवों का जघन्य शरीर कहते हैं-

सव्वजहण्णो देहो, लद्धिअपुण्णाण सव्वजीवाणं ।
अंगुल असंखभागो, अणेयभेओ हवे सो वि ॥१७३॥

अर्थ- लब्ध्यपर्याप्तक सब जीवों का शरीर घन अंगुल के असंख्यातवें भाग है यह सब जघन्य है इसमें भी अनेक भेद हैं ।

१७३. ॐ ह्रीं सर्वजघन्यदेहावगहनाविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वब्रह्मधामस्वरूपोऽहं ।

तन देवल में देव न रहता ना रहता है वह चित्राम ।
तन देवल में देव साम्य भावों से लख ले उसका धाम॥

छंद ताटंक

लब्ध्य पर्याप्तक जीवों का तन घन अंगुल असंख्यातवें भाग ।
ये सब जघन्य बतलाए हैं इसमें भी है भेद विभाग ॥
इनके चौसठ भेदों को बतलाता गोम्मट सार महान ।
उसमें भी जितनी कथनी है सब की सब जिन वचन प्रमाण॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७४)

अब द्वीन्द्रिय आदि की जघन्य अवगाहना कहते हैं-

वि ति चउपंचक्खाणं, जहण्णदेहो हवेइ पुण्णाणं ।
अंगुलअसखभागो, संखगुणो सो वि उवरुवरिं ॥१७४॥

अर्थ- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों का जघन्य शरीर घन अंगुल के असंख्यातवें भाग है वह भी ऊपर-ऊपर संख्यातगुणा है ।

१७४. ॐ ह्रीं द्वित्रिचतुपञ्चाक्षजीवदेहजघन्यावगाहनाविकल्परहितचैतन्य स्वरूपाय नमः ।

स्वचित्साम्राज्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

द्वय त्रय चतु पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का जघन्य शरीर।
घन अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जु कहा शरीर ॥
दो इन्द्रिय से त्रय इन्द्रिय का शरीर है संख्यात गुणा ।
त्रय इन्द्रिय से चुतरिन्द्रिय का शरीर है संख्यात गुणा ॥
चतुरिन्द्रिय से पंचेन्द्रिय का है शरीर संख्यात गुणा ।
अवगाहन जघन्य चार का कथन किया है सुनो यहाँ ॥

अजर अमर तू हो जाएगा धर्म रसायन पीले मान।
जरा मरण से यदि कुछ भय है तो धर्मामृत रस कर पान॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है॥१७४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(१७५)

अब जघन्य अवगाहना के धारक द्वीन्द्रिय आदि जीव कौन-कौन हैं सो कहते हैं-

आणुधरीयं कुन्थो, मच्छीकाणा य सालिसित्थो य।
पज्जत्ताण तसाणं,जहण्णदेहो विणिद्दिट्ठो ॥१७५॥

अर्थ- द्वीन्द्रियो में अणुद्धरी जीव, त्रीन्द्रियों में कुन्थु जीव चतुरिन्द्रियों में काणमक्षिका, पंचेन्द्रियों में शालिसिक्थक नामक मच्छ इन त्रस पर्याप्त जीवों के जघन्य शरीर कहा गया है।

१७५. ॐ ह्रीं त्रसजीवजघन्यदेहविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

सदानिजानंदधामस्वरूपोऽहं।

छंद ताटंक

दो इन्द्रिय में अणुद्धरी जीव त्रय इन्द्रिय में हैं कुन्थु जीव।
चतुरिन्द्रिय में काणमक्षिका पंचेन्द्रिय में तंदुल मत्स्य॥
इन त्रस पर्याप्तक जीवों का जघन्य शरीर कथन जानो।
यह सर्वज्ञ कथन है इसको भली प्रकार आप मानो॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है॥१७५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(१७६)

अब जीव के लोकप्रमाण और देहप्रमाणपना कहते हैं-

लोयपमाणो जीवो, देहपमाणो वि अत्थिदे खेत्ते।
ओगाहणसत्तादो, संहरणविसप्पधम्मादो ॥१७६॥

आत्म अनुभवी निज को ध्याते दुख होता अज्ञानी को ।
अहं भाव है तो शिवपथ कब मिल सकता अज्ञानी को॥

अर्थ- जीव संकोच, विस्तार, धर्म तथा अवगाहना की शक्ति होने से लोकप्रमाण है और देह प्रमाण भी है ।

१७६. ॐ ह्रीं देहप्रमाणजीवविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

समुद्‌घातरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव संकोच विस्तार धर्म अरु अवगाहना शक्ति जानो ।
लोकाकाश प्रमाण और यह देह प्रमाण सदा मानो ॥
केवल समुदघात करता उस समय लोक पूरण होता ।
जैसा भीतर पाता है यह उस तन के प्रमाण होता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७७)

अब कोई अन्यमती, जीव को सर्वथा सर्वगत ही कहते हैं उनका निषेध करते हैं-

सव्वगओ जदि जीवो, सव्वत्थ वि दुक्खसुक्खसंपत्ती।
जाइज्ज ण सा दिट्ठी, णियतणुमाणो तदो जीवो॥१७७॥

अर्थ- यदि जीव सर्वगत ही होवे तो सब क्षेत्र सम्बन्धी सुखदुःख की प्राप्ति इसको होवे, परन्तु ऐसा तो दिखाई देता है नहीं है इसलिये जीव अपने शरीर प्रमाण ही है ।

१७७. ॐ ह्रीं सुखदुःखानुभवरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निजसौख्यसिन्धुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

ज़ीव सर्वगत ही हो तो सब क्षेत्र संबधी हो सुख दुख।
ऐसा देखा नहीं दिखा है तन प्रमाण ही जीव प्रमुख ॥

शुद्धातम के अनुभव के बिन शिवसुख कोइ न पाता है।
स्वानुभूति का बल पाकर ही सदा मोक्ष में जाता है॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७८)

फिर वही कहते हैं :

जीवो आणसहावो, जह अग्गी उहओ सहावेण ।
अत्थंतरभूदेण हि, णाणेण ण सो हवे णाणी॥१७८॥

अर्थ- जैसे अग्नि स्वभाव से उष्ण है वैसे ही जीव ज्ञानस्वभाव है इसलिये अर्थान्तर भूत ज्ञान से ज्ञानी नहीं है ।

१७८. ॐ ह्रीं ज्ञानार्णवस्वरूपचैतन्यस्वरूपाय नम. ।

निजबोधार्णवस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

अग्नि स्वभाव ऊष्ण जैसे वैसे ही ज्ञान स्वभावी जीव ।
इसीलिए अर्थान्तर भूत ज्ञान से ज्ञानी नहीं कदीव ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१७९)

अब भिन्न मानने में दूषण दिखाते हैं -

जदि जीवादो भिण्णं, सव्वपयारेण हवदि तं णाणं ।
गुणगुणिभावो य तदा, दूरेण प्पणस्सदे दुण्हं॥१७९॥

अर्थ- यदि जीव से ज्ञान सर्वथा भिन्न ही माना जाय तो उन उन दोनों के गुणगुणिभाव दूर से ही नष्ट हो जावें ।

१७९. ॐ ह्रीं गुणगुणिभावविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वज्ञानस्वरूपोऽहं ।

पुण्य पाप में जब तक उलझे तब तक आस्रव भाव न जाय।
बंध एक भी शुद्ध निर्जरा के बिन नहीं निर्जरा पाय ॥

छंद ताटंक

ज्ञान जीव से भिन्न सर्वथा मानो तो हो जाए नष्ट ।
दोनों के गुणगुणी भाव दूर से ही हो जाएं नष्ट ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१७९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८०)

अब कोई पूछे कि गुण और गुणों के भेद बिना दो नाम कैसे कहे जाते है उसका समाधान करते हैं-

जीवस्स वि णाणस्स वि, गुणगुणिभावेण कीरए भेओ।
जं जाणदि तं णाणं, एवं भेओ कहं होदि॥१८०॥

अर्थ- जीव और ज्ञान के गुणगुणीभाव से कथंचित् भेद किया जाता है " जो जानता है वह ही आत्मा का ज्ञान है" ऐसा भेद कैसे होता है।

१८०. ॐ ह्रीं कार्यकारणभेदविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चितिशक्तिस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव ज्ञान का भेद कथंचित गुण गुणी भाव से कहते हैं।
जो जानता वही ज्ञान है अतःएव अभेद कहते हैं ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८१)

अब चार्वाकमती ज्ञान को पृथ्वी आदि का विकार मानते हैं उसका निषेध करते हैं-

वीतराग बन राग द्वेष तज जो आत्मा में करता वास ।
वह धर्मात्मा पंचम गति पाता करता है मोक्ष निवास ॥

णाणं भूयवियारं, जो मण्णदि स वि भूदगहिदव्वो ।
जीवेण विणा णाणं, किं केण वि दीसए कत्थ ॥१८१॥

अर्थ- जो चार्वाकमती ज्ञान को पृथ्वी आदि पंच भूतों का विकार मानता है वह चार्वाक, भूत (पिशाच) द्वारा ग्रहण किया हुआ है क्योंकि बिना ज्ञान के जीव क्या किसी से कहीं देखा जाता है ? अर्थात् कहीं भी ऐसा दिखाई नहीं देता है ।

१८१. ॐ ह्रीं भूतविकारज्ञानस्वरूपरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शुद्धबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो भी ज्ञान को पृथ्वीआदिक पंच भूत का कहे विकार।
भूतों द्वारा ग्रहण किया वह बिना ज्ञान जीव कथन असार ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८२)

अब इसको दूषण (दोष) बताते हैं-

सच्चेयण पच्चक्खं, जो जीवं णेय मण्णदे मूढो ।
सो जीवं ण मुणंतो, जीवाभावं कहं कुणदि ॥१८२॥

अर्थ-- यह जीव सत् रूप और चैन्यस्वरूप स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रसिद्ध है जो चार्वाक जीव को ऐसा नहीं मानता है वह मूर्ख है और जो जीवको नहीं जानता है नहीं मानता है तो वह जीवका अभाव कैसे करता है ।

१८२. ॐ ह्रीं चार्वकमान्यतारहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

परमात्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

संत् चैतन्य स्वरूप स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध ।
जो न मानता ऐसा वह मूरख है जीव अभाव न सिद्ध ॥

भेद ज्ञान बिन कोई चेतन पार नहीं भव सागर पाय ।
यह उपाय यदि नहीं किया तो पाओगे चहुँगति दुखदाय॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८३)

अब इसी मतवाले को युक्ति से जीव का सद्भाव दिखाते हैं -

जदि णय हवेदि जीओ, ताको वेदेदि सुक्खदुक्खाणि।
इन्दियविसया सव्वे, को वा जाणदि विसेसेण ॥१८३॥

अर्थ- यदि जीव नहीं हो तो अपने सुख दु:ख को कौन जानता है और इन्द्रियों के स्पर्श आदि सब विषयों को विशेष रूप से कौन जानता है।

१८३. ॐ ह्रीं इन्द्रियविषयरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अतीन्द्रियज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव न हो तो वह अपने सुख दुख को कैसे लेगा जान।
इन्द्रिय के स्पर्श आदि सब विषय कहाँ से लेगा जान ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८४)

अब आत्मा का सद्भाव जैसे बनता है वैसे कहते हैं-

संकप्पमओ जीवो, सुहदुक्खमयं हवेइ संकप्पो ।
तं चिय वेददि जीवो, देहे मिलिदो वि सव्वत्थ ॥१८४॥

अर्थ- जीव संकल्पमयी है संकल्प सुख दु:खमय है उस सुख दु:खमयी संकल्प को जानता है वह जीव है वह देह में सब जगह मिल रहा है तो भी जानने वाला जीव है ।

१८४. ॐ ह्रीं संकल्पविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्विकल्पशिवस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

है संकल्पमयी जीव संकल्प सदा सुख दुखमय है ।
उसे जानता वही जीव है वही देह में मिलता है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८५)

अब जीव देह में मिला हुआ सब कार्यों को करता है यह कहते हैं -

देहमिलिदो वि जीवो, सव्वकम्माणि कुव्वदे जम्हा ।
तम्हा पयट्टमाणो, एयत्तं बुज्झदे दोण्हं ॥१८५॥

अर्थ- क्योंकि जीव देह से मिला हुआ ही (कर्म नोकर्मरूप) सब कार्यों को करता है इसलिए उन कार्यों में प्रवृत्ति करते हुए लोगों को दोनों के एकत्व दिखाई देता है ।

१८५. ॐ ह्रीं देहमिलितजीवरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शुद्धचैतन्यधामस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव देह से मिला हुआ नो कर्म आदि सब करता है ।
उन कार्यो की प्रवृत्ति देख एकत्व दिखाई देता है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८६)

अब जीव को देह से भिन्न जानने के लिए लक्षण दिखाते हैं-

देहमिलिदो वि पिच्छदि, देहमिलिदो वि णिसुण्णदे सद्दं ।
देहमिलिदो वि भुज्जदि, देहमिलिदो वि गच्छेदि॥१८६॥

अर्थ- जीव देह से मिला हुआ ही आंखों से पाथौं को देखता है देह से मिला हुआ ही

निज अनुभूति सौख्य की दाता को हर्षित लो अभी बुलाय।
निज आत्मा ही मंगलमय है ये ही है शाश्वत सुखदाय॥

कानों से शब्दों को सुनता है देह से मिला हुआ ही मुख से खाता है जीभ से स्वाद लेता है देह से मिला हुआ ही पैरों से गमन करता है ।

१८६. ॐ ह्रीं अशनपानाद्याहाररहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

पुद्‌गलस्वाद्याहाररहितोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव देह से मिला हुआ ही आंखों से देखता पदार्थ ।
कानों से शब्दों को सुनता जिव्हा से लेता है स्वाद ॥
देह मिला मुख से खाता है पावों से करता जुगमन ।
सत्य बात यह जीव देह से न्यारा है सर्वज्ञ कथन ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८७)

अब इस तरह जीव को मिला हुआ मानने वाले लोग भेद को नहीं जानते हैं ऐसा कहते हैं-

राओ हं भिच्चो हं, सिट्ठी हं चेव दुब्बलो बलिओ।
इदि एयत्ताविट्ठो दोण्हं भेयं ण बुज्झेदि ॥१८७॥

अर्थ- देह और जीव के एकत्व की मान्यता वाले लोग ऐसा मानते है कि मैं राजा हूँ मैं भृत्य (नौकर) हूँ मै सेठ (धनी) हूँ मैं दुर्बल हूँ, मैं दरिद्र हूँ, मैं निर्बल हूँ मै बलवान हूँ इस प्रकार से देह और जीव के (दोनों कै) भेद को नही जानते हैं।

१८७. ॐ ह्रीं दुर्बलादिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानराजस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

देह जीव एकत्व मान्यता वाला भेद न जानता है ।
मैं नृप नौकर धन पति निर्धन दुर्बल सबल मानता है ॥

शुक्ल ध्यान की अग्नि जले जब सभी कर्म ईंधन जल जाय।
अनुभव रस का सागर पावे महामोक्ष के सुख तू पाय ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८८)

अब जीव के कर्त्तत्व आदि को चार गाथाओं से कहते हैं -

जीवो हवेइ कत्ता, सव्वं कम्माणि कुव्वदे जम्हा ।
कालाइलद्धिजुत्तो, संसारं कुणइ मोक्खं च ॥१८८॥

अर्थ- क्योंकि यह जीव सब कर्म नोकर्मों को करता हुआ अपना कर्त्तव्य मानता है इसलिए कर्त्ता भी है सो अपने संसार को करता है और काल आदि लब्धि से युक्त होता हुआ अपने मोक्ष को भी आप ही करता है ।

१८८. ॐ ह्रीं सर्वकर्मकर्त्तारहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अकर्त्तास्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव कर्म नो कर्मो को करता कर्त्तव्य मानता है ।
इसीलिये कर्त्ता भी है यह मोक्ष आप ही करता है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१८९)

फिर वही कहते हैं-

जीवो वि हवइ भुत्ता, कम्मफलं सो वि भुंजदे जम्हा।
कम्मविवायं विविहं, सो वि य भुंजेदि संसारे ॥१८९॥

अर्थ- क्योंकि जीव कर्मफल को संसार में भोगता है इसलिए भोक्ता भी यही है और वह ही संसार में सुख दुःख रूप अनेक प्रकार के कर्म के विपाक को भोगता है ।

गलती आयु न मन गलता है ना आशा तृष्णा गलती।
मोह भाव बढ़ता संसार भ्रमण की दशा नहीं टलती ॥

१८९. ॐ ह्रीं ज्ञानावरणादिपुदगलकर्म्मफलरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
अभोक्तास्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव कर्म फल को भोगता है इसीलिये भोक्ता भी है ।
सुख दुख रूप अनेक कर्म के विपाक का भोक्ता भी है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१८९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९०)

फिर वही कहते हैं-

जीवो वि हवइ पावं, अइतिव्वकषायपरिणदो णिच्चं ।
जीवो वि हवेइ पुण्णं, उवसमभावेण संजुत्तो ॥१९०॥

अर्थ- जब यह जीव अति तीव्र कषाय सहित होता है तब यह ही जीव पाप होता है और उपशम भाव (मन्द कषाय) सहित होता है तब यह ही जीव पुण्य होता है।

१९०. ॐ ह्रीं अतितीव्रकषायपरिणतिरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
निष्पापस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

तीव्र कषाय सहित होता जब तब यह जीव पाप होता ।
उपशम भाव सहित होता जब यह ही जीव पुण्य होता॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९१)

फिर वही कहते हैं-

रयणत्तयसंजुत्तो, जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।
संसारं तरइ जदो रयणत्तयदिव्वणावाए ॥१९१॥

जैसे मन विषयों में रमता तैसे निज में रमण करे ।
हे योगी वह शीघ्र मोक्ष पद पावे फिर ना भ्रमण करे ॥

अर्थ- जब यह जीव रत्नत्रयस्वरूप सुन्दर नाव के द्वारा संसार से तिरता है पार होता है तब यह ही जीव रत्नत्रय सहित होता हुआ उत्तम तीर्थ है।

१९१. ॐ ह्रीं रत्नत्रयसंयुक्तजीवोत्तमतीर्थविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

सहजानंतगुणस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

रत्नत्रय रूपी तरणी से यह संसार उदधि तिरता ।
रत्नत्रय संयुक्त हुआ तो यह उत्तम सुतीर्थ होता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९२)

अब अन्य प्रकार जीव के भेद कहते हैं-

जीवा हवंति तिविहा, बहिरप्पा तह य अन्तरप्पा य ।
परमप्पा वि य दुविहा अरहंता तह य सिद्धा य ॥१९२॥

अर्थ- जीव बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा इस तरह तीन प्रकार के होते हैं और परमात्मा भी अरहन्त तथा सिद्ध इस तरह दो प्रकार के होते हैं ।

१९२. ॐ ह्रीं शरीरपुत्रकलत्रादिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निष्कलस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

बहिरात्मा अरु अंतरात्मा परमात्मा जीव तीन प्रकार ।
परमात्मा भी है अरहंत सिद्ध तुम जानो दोय प्रकार ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

द्रव्य भाव नो कर्म रहित तू एकमात्र शुद्धात्मा है ।
ध्रौव्य त्रिकाली गुण अनंतमय तू ही तो परमात्मा है ॥

(१९३)

अब इनका स्वरूप कहेंगे । पहिले बहिरात्मा कैसा है सो कहते हैं-

मिच्छत्तपरिणदप्पा, तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो ।
जीवं देहं एक्कं, मण्णंतो होदि बहिरप्पा ॥१९३॥

अर्थ- जो जीव मिथ्यात्वरूप परिणमा हो और तीव्र कषाय (अनन्तानुबन्धी) से अतिशय आविष्ठ अर्थात् युक्त हो इस निमित्त से जीव और देह को एक मानता हो वह जीव बहिरात्मा है ।

१९३. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वपरिणतबहिरात्मविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्विकारचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो मिथ्यात्व रूप परिणमता तीव्र कषाय भाव आविष्ट ।
इस निमित्त से जीव देह एक मानता बहिरात्मा निकृष्ठ ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९४)

अब अन्तरात्मा का स्वरूप तीन गाथाओं में कहते हैं-

जे जिणवयणे कुसलो, भेयं जाणंति जीवदेहाणं ।
णिज्जियदुट्ठट्ठमया, अन्तरअप्पा य ते तिविहा ॥१९४॥

अर्थ- जो जीव जिनवचन में प्रवीण हैं जीव और देह के भेद को जानते हैं और जिन्होंने आठ मदों को जीत लिये हैं वे अन्तरात्मा हैं और उत्कृष्ट (उत्तम) मध्यम जघन्य के भेद से तीन प्रकार के हैं ।

१९४. ॐ ह्रीं अष्टमदरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्मदस्वरूपोऽहं ।

अजर अमर अविकल अविनाशी दर्शन ज्ञान स्वरूपी है।
तू अभेद है तू अखंड है तू चिन्मय चिद्रूपी है ॥

छंद ताटंक

जो जिनवचन प्रवीण जीव देह भेद को जान रहे ।
वसु मदजयी अंतरात्मा तीन प्रकार सदैव कहे ॥
उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेद से अंतरात्मा तीन प्रकार ।
इन तीनों का स्वरूप जानो तुम जिन आगम के अनुसार॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९५)

अब इन तीनों में उत्कृष्ट को कहते हैं -

पंचमहव्वयजुत्ता, धम्मे सुक्के वि संठिदा णिच्चं ।
णिज्जियसयलपमाया, उक्किट्ठा अन्तरा होंति ॥१९५॥

अर्थ- जो जीव पांच महाव्रतों से युक्त हों नित्य ही धर्मध्यान शुक्लध्यान में स्थित रहते हों और जिन्होंने निंद्रा आदि सब प्रमादों को जीत लिया हो वे उत्कृष्ट अन्तरात्मा होते हैं ।

१९५. ॐ ह्रीं सकलप्रमादरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निष्प्रमादस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पंच महाव्रत युक्त धर्म अरु शुक्ल ध्यान में थिर होते ।
निद्रा आदि प्रमाद जयी हैं अन्तरात्मा वह होते ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९६)

अब मध्यम अन्तरात्मा को कहते हैं-

जैसे नरक वास दुख का घर वैसे ही शरीर का वास ।
आत्म भावना से भवदधि तर पाएगा तू मुक्ति निवास ॥

सावयगुणेहिं जुत्ता, पमत्तविरदा य मज्झिमा होंति ।
जिणवयणे अणुरत्ता, उवसमसीला महासत्ता ॥१९६॥

अर्थ- जो जिनवचनों में अनुरक्त हो उपशमभाव (मन्द कषाय) रूप जिनका स्वभाव हो महा पराक्रमी हों, परीषहादिक के सहन करने में दृढ़ हो, उपसर्ग आने पर प्रतिज्ञा से चलायमान नहीं होते हों ऐसे श्रावक के व्रत सहित तथा प्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनि मध्यम अंतरात्मा होते हैं ।

१९६. ॐ ह्रीं उपसर्गपरीषहादिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरुपद्रवस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जिनवच भक्त भाव उपशम युत पराक्रमी परीषह विजयी।
उपसर्गो से चलित न हो जो श्रावक व्रत युत गुणवर्त्ती ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९७)

अब जघन्य अंतरात्मा को कहते हैं -

अविरयसम्मदिट्ठी, होंति जहण्णा जिणंदपयभत्ता ।
अप्पाणं णिंदता, गुणगहणे सुट्ठुअणुरत्ता ॥१९७॥

अर्थ- जो जीव जिनेन्द्र भगवान के चरणों के भक्त हैं । (जिनेन्द्र, उनकी वाणीतथा उसके अनुसार बर्तन वाले निर्ग्रन्थ गुरु, उनकी भक्ति में तत्पर हैं) अपने आत्मा की निंदा करते रहते हैं व्रत धारण नहीं किये जाते लेकिन उनकी भावना निरन्तर बनी ही रहती है इसलिए अपने विभाव परिणामों की निन्दा करते ही रहते हैं) और गुणों के ग्रहण करने में भले प्रकार अनुरागी हैं (जिनमें सम्यग्दर्शन आदि गुण देखते हैं उनसे अत्यन्त अनुराग रूप प्रवृत्ति करते हैं गुणों से अपना और परका हित जाना है इसलिये गुणों से अनुराग ही होता है) ऐसे अविरतसम्यग्दृष्टि जीव (सम्यग्दर्शन तो जिनके पाया जाता है परन्तु चारित्र मोह की युक्तता से व्रत धारण नहीं कर सकते हैं) जघन्य अन्तरात्मा हैं । इस

जो परिणाम कषाय सहित होते वे लेश्या कहलाते ।
कृष्ण नील कापोत अशुभत्रय ये दुखदायी कहलाते ॥

प्रकार तीन प्रकार के अन्तरात्मा कहे सो गुणस्थानों की अपेक्षा से जानना चाहिये।

१९७. ॐ ह्रीं अविरतसम्यग्दृष्टिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरुपमस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जिनवर चरण भक्त है गुरु निर्ग्रंथ भक्ति में तत्पर हैं ।
अपनी ही निन्दा करते है गुणग्राही निज अनुचर है ॥
अविरत सम्यक् दृष्टि जीव में जघन्य अंतरात्मा है ।
चौथे गुणस्थान वर्ती है यह भावी परमात्मा हैं ॥
पंचम षष्टम गुणस्थान वर्ती मध्य अंतरात्मा हैं ।
सप्तम से बारहवें तक उत्कृष्ट अंतरात्मा हैं ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता हैं ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९८)

अब परमात्मा का स्वरूप कहते हैं -

स-सरीरा अरहंता, केवलणाणेण मुणियसयलत्था ।
णाणसरीरा सिद्धा, सव्वुत्तम सुक्खसंपत्ता॥१९८॥

अर्थ- केवलज्ञान से जान लिये हैं सकल पदार्थ जिन्होंने ऐसे शरीर सहित अरहन्त परमात्मा हैं सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति सहित अरहन्त परमात्मा हैं सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति जिनको हो गई है तथा ज्ञान ही है शरीर जिनके ऐसे शरीर रहित सिद्ध परमात्मा है।

१९८. ॐ ह्रीं ज्ञानशरीरस्वरूपचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चिनन्मयतनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

केवल ज्ञान सहित सु शरीरी श्री अरहंत परमात्म है ।
सर्वोत्तम सुख प्राप्त तन बिना श्री सिद्ध परमात्मा है ॥

पीत पद्म शुक्ल शुभ तीनों साताद़ायी होते हैं ।
किन्तु लेश्या रहित जीव ही सिद्ध चक्रपति होते हैं ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(१९९)

अब परा शब्द के अर्थ को कहते हैं-

णिस्सेसकम्मणासे, अप्पसहावेण जा समुप्पत्ती ।
कम्मजभावखए वि य, सा विय पत्ती परा होदि ॥१९९॥

अर्थ- जो समस्त कर्मों के नाश होने पर अपने स्वभाव से उत्पन्न हो और जो कर्मों से उत्पन्न हुए औदयिक आदि भावों का नाश होने पर उत्पन्न हो वह भी परा कहलाती है ।

१९९. ॐ ह्रीं शुद्धबुद्धैकपरमानन्दस्वरूपचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
अकर्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

कर्मनाश होने पर जो निज स्वभाव से होती उत्पन्न ।
वही परा कर्मोत्पन्न औदयिक भाव मय है उत्पन्न ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥१९९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२००)

अब कोई, जीवों को सर्वथा शुद्ध ही कहते हैं उनके मत का निषेध करते हैं-

जइ पुण सुद्धसहावा, सव्वेजीवा अणाइकाले वि ।
तो तवचरणविहाणं,सव्वेसिं णिप्फलं होदि ॥२००॥

अर्थ- यदि सब जीव अनादि काल से शुद्धस्वभाव हैं तो सबही को तपश्चरण विधान निष्फल होता है ।

कर्म नाश सामर्थ्य नहीं है इन शुभभावों में किंचित ।
शुक्ल ध्यान ही कर्म नाश में है समर्थ पूरा निश्चित ॥

२००. ॐ ह्रीं शुद्धबुद्धैकटङ्कोत्कीर्णकेवलज्ञानदर्शनचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

कर्ममलकलङ्करहितोऽहं ।

छंद ताटंक

अगर जीव सब काल अनादि से शुद्ध स्वभावमयी जानो।
तो सब ही का तपश्चरण निष्फल हो जाएगा मानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२००॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०१)

फिर वही कहते हैं -

ता किह गिण्हदि देहं, णाणाकम्माणि ता कहं कुणदि।
सुहिदा वि य दुहिदा वि य, णाणारूवा कहं होंति ॥२०१॥

अर्थ- जो जीव सर्वथा शुद्ध है तो देहको कैसे ग्रहण करता है? नाना प्रकार के कर्मों को कैसे करता है? कोई सुखी है कोई दु:खी है ऐसे नानारूप कैसे होते हैं? इसलिए सर्वथा शुद्ध नहीं है ।

२०१. ॐ ह्रीं नानाकर्मरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

गमनागमनरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव सर्वथा शुद्ध देह को कैसे करता ग्रहण कहो ।
नाना कर्मो को करता दुखसुख पाता यह कथन गहो ॥
जीव सर्वथा शुद्ध नहीं है नाना रूप हुआ करता ।
इस संसार मध्य में रहकर इधर उधर फिरता रहता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

मोहाधीन कर्म सारे ही भव भव तक दुखदायी हैं ।
मोह नष्ट हो जाए तो फिर कर्म नहीं दुखदायी हैं ॥

(२०२)

अब अशुद्धता शुद्धता का कारण कहते हैं-

सव्वे कम्म-णिबद्धा, संसरमाणा अणाइ-कालम्हि ।
पच्छा तोडिय बंधं, सुद्धा सिद्धा धुवं होंति॥२०२॥

अर्थ- अब संसारी जीव अनादिकाल से कर्मों से बंधे हुए हैं इसलिए संसार में भ्रमण करते हैं फिर कर्मों के बन्धन को तोड़कर सिद्ध होते हैं तब शुद्ध और निश्चल होते हैं ।

२०२. ॐ ह्रीं जन्मजरामरणरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ध्रुवचैतन्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

काल अनादि से संसारी कर्मो से बंधे भ्रमण करते ।
निश्चल शुद्ध सिद्ध होते जो कर्मो के बंधन हरते ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०३)

अब जिस बंध से जीव बंधते हैं उस बंध का स्वरूप कहते हैं -

जो अण्णोण्णपवेसो, जीवपएसाण कम्मखंधाणं ।
सव्वबंधाण वि लओ, सो बंधो होदि जीवस्स ॥२०३॥

अर्थ- जो जीव के प्रदेशों का और कर्मों के स्कन्ध का परस्पर प्रवेश होना और प्रकृति स्थिति अनुभाग सब बन्धों का लय (एकरूप होना) सो जीव के प्रदेश बंध होता है।

२०३. ॐ ह्रीं सर्वबन्धरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वतंत्रब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव प्रदेश कर्म संबंधों का है एक क्षेत्र संबंध ।
प्रकृति स्थिति अनुभाग मिलाकर होता आया प्रदेश बंध॥

जग के प्राणी अपने अपने धंधों में रहते तल्लीन ।
इसीलिए निर्वाण नहीं पाता है यह अज्ञानी दीन ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शासस्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०४)

अब सब द्रव्यों में जीवद्रव्य ही उत्तम परमतत्व है ऐसा कहते हैं-

उत्तमगुण्ण धामं, सव्वदव्वाण उत्तमं दव्वं ।
तच्चाण परमतच्चं, जीवं जाणेह णिच्छयदो॥२०४॥

अर्थ- जीवद्रव्य उत्तम गुणों का धाम (स्थान) हैं, ज्ञान आदि उत्तमगुण इसी में हैं सब द्रव्यों में यह ही द्रव्य प्रधान है, सब द्रव्यों को जीव ही प्रकाशित करता है सब तत्वों में परमतत्व जीव ही है, अनन्तज्ञान सुख आदि का भोक्ता यह ही है इस तरह से हे भव्य ! तू निश्चय से जान ।

२०४. ॐ ह्रीं अनंतगुणधामरूपचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निजगुणधामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जीव द्रव्य उत्तम गुणधामी ज्ञानादिक उत्तम गुण युक्त ।
सब द्रव्यों में यह प्रधान है परम तत्त्व यह सुख संयुक्त॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०५)

अब जीव ही के उत्तम तत्वपना कैसे है सो कहते हैं-

अंतरतच्चं जीवो, बाहिरतच्चं हवंति सेसाणि ।
णाणविहीणं दव्वं, हियाहियं णेय जाणेदि ॥२०५॥

अर्थ— जीव अंतरतत्व है बाकी के सब द्रव्य बाह्यतत्व हैं वे द्रव्य ज्ञानरहित हैं और हेय-उपादेयरूप वस्तु को नहीं जानते हैं ।

शास्त्रों को पढ़ता है फिर भी नहीं आत्मा की पहचान ।
इसी लिए मूरख प्राणी पाता है कभी नहीं निर्वाण ॥

२०५. ॐ ह्रीं हेयोपादेयविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
परमात्मतत्त्वस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

अंतर तत्त्व जीव है बाकी बाह्य तत्त्व सारे ही द्रव्य ।
हेयोपादेय नहीं जानते ज्ञान रहित हैं सारे द्रव्य ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०६)

अब पुद्गल द्रव्य का स्वरूप कहते हैं -

सव्वो लोयायासो, पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो भरिदो ।
सुहमेहिं बायरेहिं य, णाणाविहसत्तिजुत्तेहिं ॥२०६॥

अर्थ- सब लोकाकाश नाना प्रकार की शक्ति..ले सूक्ष्म और बादर पुद्गल द्रव्यों से सब जगह भरा हुआ है ।

२०६. ॐ ह्रीं नानाविधपरशक्तिरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
निजशक्तिसंपन्नोऽहं ।

छंद ताटंक

सूक्ष्म और बादर पुद्गल द्रव्यों से लोकाकाश भरा ।
बहु प्रकार परिणमन शक्ति युत द्रव्यों से यह लोक भरा॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०७)

वही फिर कहते हैं

आत्म गुणों का आविर्भाव रोकने में समर्थ है मोह ।
अत: जीव को करना होगा पहिले मोह कर्म से द्रोह ॥

जे इन्दिएहिं गिज्झं, रूवरसगंधफासपरिणामं ।
तं चिय पुग्गलदव्वं, अणंतगुणं जीवरासीदो ॥२०७॥

अर्थ- जो रूप, रस, गंध, स्पर्श परिणाम स्वरूप से इन्द्रियों के ग्रहण करने योग्य हैं वे सब पुदुगलद्रव्य हैं वे संख्या में जीवराशि से अनन्तगुणे द्रव्य है ।

२०७. ॐ ह्रीं इन्द्रियग्राह्यरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वाधीनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

इन्द्रिय द्वारा रूप गंध रस स्पर्श ग्रहण करने के योग्य ।
जीव राशि से गुणे अनंतों पुद्गल द्रव्य जानने योग्य ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०८)

अब पुदुगलद्रव्य के जीव के उपकारीपने को कहते हैं-

जीवस्स बहुपयारं, उवयारं कुणदि पुग्गलं दव्वं ।
देहं च इन्दियाणि य, वाणी उस्सासणिस्सासं॥२०८॥

अर्थ- पुदुगलद्रव्य जीव के देह, इन्द्रिय वचन उस्वास, निस्वास बहुत प्रकार उपकार करता है ।

२०८. ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्योपकाररहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

देहेन्द्रियरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

पुद्गल द्रव्य जीव का करता चार प्राण देकर उपकार।
इन्द्रिय वचन देह स्वास उस्वास सदा देता है चार ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०८॥

उपादेय अरु हेय आदि का जो विचार कर सकते हैं ।
वे मनु की संतान मनुज गुण दोष ज्ञान कर सकते हैं ॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२०९)

फिर वही कहते हैं-

अण्णं पि एवमाई, उवयारं कुणदि जाव संसारं ।
मोह अणाणमयं पि य, परिणामं कुणदि जीवस्स॥२०९॥

अर्थ- पुद्गल द्रव्य जीव के पूर्वोक्त को आदि लेकर अन्य भी उपकार करता है जब तक इस जीव को संसार है तब तक मोह परिणाम (पर द्रव्यो से ममत्व परिणाम) अज्ञानमयी परिणाम ऐसे सुख दुःख, जीवन, मरण आदि अनेक प्रकार करता है। यहा उपकार शब्द का अर्थ जब उपादान कार्य करे तब संयोग को निमित्त कारणपने का आरोप है ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये ।

२०९. ॐ ह्रीं मोहाज्ञानमयपरिणामरहितचैतन्यस्वरूपाय नम. ।

सच्चित्प्राणस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सुख दुख जन्म मरण आदि भी देता जब तक है संसार।
उपादान जब कार्य करे तब यह निमित्त बनता साकार॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२०९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१०)

अब उसी प्रकार जीव भी जीव का उपकार करता है ऐसा कहते हैं-

जीवा वि दु जीवाणं, उवयारं कुणदि सव्वपच्चक्खं ।
तत्थ वि पहाणहेऊ, पुण्णं पावं च णियमेण ॥२१०॥

अर्थ- जीव भी जीवों के परस्पर उपकार करते हैं यह सबके प्रत्यक्ष हीहै।स्वामी सेवका का, सेवक स्वामी का; आचार्य शिष्य का, शिष्य आचार्य का; पितामाता पुत्र का, पुत्र पितामाता का; मित्र मित्र का, स्त्री पति का इत्यादि प्रत्यक्ष माने जाते हैं। उस परस्पर उपकार में भी पुण्यपाप कर्म नियम से प्रधान कारण हैं ।

मन इन्द्रिय से छुटकारा पाए तो फिर कहना है व्यर्थ ।
राग द्वेष सब रुक जाएंगे आत्मा होगा पूर्ण समर्थ॥

२१०. ॐ ह्रीं अन्योन्योपकारविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अखण्डानंदस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

है प्रत्यक्ष जीव एक दूजे का करते है उपकार ।
पुण्य पाप इसमें प्रधान कारण है जब होता उपकार ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२११)

अब पुद्गल के बड़ी शक्ति है ऐसा कहते हैं-

का वि अपुव्वा दीसदि, पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती ।
केवलणाणसहाओ, विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥

अर्थ- पुद्गल द्रव्य की कोई ऐसी अपूर्व शक्ति दिखाई देती है जिससे जीव का केवलज्ञान स्वभाव नष्ट हो रहा है ।

२११. ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यशक्तिविकलल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निजानंतवीर्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव अनंत शक्ति धारी है केवल ज्ञान शक्ति भरपूर ।
पुदगल शक्ति अनंत ज्ञान केवल में बाधक है भरपूर ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२११॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१२)

अब धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य का स्वरूप कहते हैं-

लक्ष्मी अरु अधिकार बढ़ गया अरु कुटम्ब परिवार बढ़ा।
नहीं एक क्षण विवेक जागा बतला तो क्या अरे बढ़ा ॥

धम्ममधम्मं दव्वं, गमणट्ठाणाण कारणं कमसो।
जीवाण पुग्गलाणं, बिण्णि वि लोगप्पमाणाणि ॥२१२॥

अर्थ- जीव और पुद्गल इन दोनों द्रव्यों को गमन और अवस्थान (ठहरना) में सहकारी अनुक्रम से कारण धर्म और अधर्मद्रव्य हैं दोनों ही लोकाकाश परिमाण प्रदेशों को धारण करते हैं ।

२१२. ॐ ह्रीं धर्माधर्मद्रव्यविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चितिक्रियावतीशक्तिस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पुद्गल जीव गमन सहकारी कारण धर्म द्रव्य लो जान।
द्रव्य अधर्म स्थिति में कारण दोनों लोकाकाश प्रमाण ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१३)

अब आकाश द्रव्य का स्वरूप कहते हैं--

सयलाणं दव्वाणं, जं दादुं सक्कदे हि अवगासं ।
तं आयासं दुविहं, लोयालोयाण भेयेण ॥२१३॥

अर्थ- जो सब द्रव्यों को अवकाश दे को समर्थ है उसको आकाश द्रव्य कहते है वह लोक अलोक के भेद से दो प्रकार का है ।

२१३. ॐ ह्रीं लोकालोकभेदस्वरूपाकाशद्रव्यविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

अभेदबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

समर्थ है सब द्रव्यों को अवकाश दान में यह आकाश ।
इसके है दो भेद प्रथम यह लोक द्वितीय अलोकाकाश ॥

शुक्ल ध्यान की पराकाष्ठा में ही खिलता रवि कैवल्य।
केवल दर्शन सहित प्राप्त हो जाता पूर्ण ज्ञान कैवल्य ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१४)

अब आकाश में सब द्रव्यों को अवगाहन देने की शक्ति है वैसी अवकाश देने की शक्ति सब ही द्रव्यों में है ऐसा कहते हैं-

सव्वाणं दव्वाणं, अवगाहणसत्ति अत्थि परमत्थं ।
जह भसमपाणियाणं, जीवपएसाण जाण बहुयाणं ॥२१४॥

अर्थ सब ही द्रव्यों के परस्पर परमार्थ से (निश्चय से) अवगाहना देने की शक्ति है जेसे भस्म और जल के अवगाहन शक्ति है वैसे ही जीव के असंख्यात प्रदेशों के जानना चाहिये ।

२१४. ॐ ह्रीं सर्वद्रव्यावगाहनशक्तिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चिदवगाहनशक्तिसंपन्नोऽहं ।

छंद ताटंक

निश्चय से सब द्रव्यों में अवगाहन देने की है शक्ति ।
सदा परस्पर देते रहते भस्म नीर वत ऐसी शक्ति ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१५)

फिर वही कहते हैं-

जदि ण हवदि सा सत्ती, सहावभूदा हि सव्वदव्वाणं।
एक्केकास पएसे, कहता सव्वाणि वट्टंति ॥२१५॥

अर्थ- यदि सब द्रव्यों के स्वभावभूत वह अवगाहनशक्ति न होवे तो एक-एक आकाश के प्रदेश में सब द्रव्य कैसे रहते हैं ।

चार घातिया के अभाव से हो जाता प्रगटित नैर्मल्य ।
निमिष मात्र में गुण अनंत लख क्षय हो जाता सबदौर्वल्य॥

२१५. ॐ ह्रीं परक्षेत्रनिवासरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निजसुखधामस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सब द्रव्यों के स्वभाव भूत अवगाहन शक्ति न होवे तो ।
एक एक आकाश प्रदेश में सभी द्रव्य कैसे रहते ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१६)

अब कालद्रव्य का स्वरूप कहते हैं-

सव्वाणं दव्वाणँ, परिणामं जो करेदि सो कालो ।
एक्केकासपएसे, सो वट्टदि एक्किको चेव ॥२१६॥

अर्थ- जो सब दव्यों के परिणाम (परिणमन-बदलाव) करता है सो कालद्रव्य है वह एक-एक आकाश के प्रदेश पर एक-एक कालाणुद्रव्य वर्तता है ।

२१६. ॐ ह्रीं क्रोधमानादिविभावरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निष्क्रोधशांतस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सब द्रव्यों को जो परिणमन कराता काल द्रव्य मानो ।
लोकाकाश इक इक प्रदेश पर रत्नराशिवत है जानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१७)

अब कहते हैं कि परिणमने की शक्ति स्वभावभूत सब द्रव्यों में हैं, अन्यद्रव्य निमित्तमात्र हैं-

तब अरहंत दशा होती है सर्वज्ञत्व शक्ति उत्कट ।
फिर अघातिया भी जाते हैं हो जाता सिद्धत्व प्रकट ॥

णियणियपरिणामाणं, णियणियदव्वं पि कारणं होदि।
अण्णं बाहिरदव्वं, णिमित्तमित्तं वियाणेह ॥२१७॥

अर्थ- सब द्रव्य अपने-अपने परिणमन के उपादान कारण हैं अन्य बाह्य द्रव्य हैं वे अन्य के निमित्तमात्र जानो ।

२१७. ॐ ह्रीं कालद्रव्योपकारविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चित्पारिणामिकभावस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

अपने अपने परिणमने के उपादान कारण सब द्रव्य ।
बाहय द्रव्य सव निमित्त कारण हैं अन्यों के ये सब द्रव्य॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२१८)

अब कहते हैं कि सब ही द्रव्यों के परस्पर उपकार है सो सहकारी निमित्तमात्र कारण भावसे है-

सव्वाणं दव्वाणं, जो उवयारो हवेइ अण्णोणं ।
सो चिय कारणभावो, हवदि हु सहयारिभावेण ॥२१८॥

अर्थ- सब ही द्रव्यों के जो परस्पर उपकार है वह सहकारी भाव से कारणभाव होता है, यह प्रगट है।

२१८. ॐ ह्रीं गुरुशिष्यादिपरोपकारविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वावलंबनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सब द्रव्यों के जो उपकार परस्पर होते वह है भाव ।
यही प्रगट है सहकारी भावों से होता कारण भाव॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१८॥

भिन्न भिन्न है जीव अरु पुद्गल भिन्न सर्व व्यवहार समझ।
यदि पुद्गल तज ग्रहे आत्मा तो सीधा भव पार सहज॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(२१९)

अब द्रव्यों के स्वभावभूत अनेक शक्तियां हैं उनका निषेध कौन कर सकता है ऐसा कहते हैं-

कालाइलद्धिजुत्ता, णाणासत्तीहि संजुदा अत्था ।
परिणममाणा हि सयं, ण सक्कदे को वि वारेंदु ॥२१९॥

अर्थ- सब ही पदार्थ काल आदि लब्धि (स्वकाल) सहित अनेक प्रकार की शक्ति सहित हैं स्वयं परिणमन करते है उनको परिणन करते हुए कोई निवारण करने में समर्थ नहीं है।

२१९. ॐ ह्रीं कालादिलब्धिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

स्वचैतन्यनिर्भयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सभी द्रव्य हैं काल लब्धि युत तथा अनेक प्रकार की शक्ति।
स्वयं परिणमन करते इनको कौन निवारण हेतु समर्थ ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२१९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(२२०)

अब व्यवहारकाल का निरूपण करते हैं-

जीवाण पुग्गलाणं, जे सुहुमा बादरा य पज्जाया ।
तीदाणागदभूदा, सो ववहारो हवे कालो ॥२२०॥

अर्थ- जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य के सूक्ष्म तथा बादर पर्याय हैं वे अतीत हो चुके हैं, अनागत आगामी होयेंगे, भूत वर्तमान हैं सो ऐसा व्यवहार काल होता है ।

२२०. ॐ ह्रीं भेदस्वरूपव्यवहारकालविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शाश्वतज्ञाननिधिस्वरूपोऽहं ।

ठकुर सुहाते वचन न बोलो सत्य वचन मीठे बोलो ।
अपनेठाकुर की आँखों के पट सत्यांजन से खोलो ॥

छंद ताटंक

जीव अरु पुद्गल सूक्ष्म और बादर पर्याय अतीत होती।
आगामी अरु वर्तमान है यह व्यवहार काल होती ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२१)

अब अतीत, अनागत, वर्तमान पर्यायों की संख्या कहते हैं-

तेसु अतीदा णंता, अणंतगुणिदा य भाविपज्जाया ।
एक्को वि वट्टमाणो, एत्तियमित्तो वि सो कालो ॥२२१॥

अर्थ- उन द्रव्यों की पर्यायों में अतीत पर्याय अनन्त हैं और अनागत पर्यायें उनसे अनन्तगुणी हैं वर्तमान पर्याय एक ही है सो जितनी पर्यायें हैं उतना ही व्यवहारक काल है। इस तरह द्रव्यों का वर्णन किया।

२२१. ॐ ह्रीं अतीतानागतवर्तमानकालविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नम ।

अक्षयबोधपीयूषस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

द्रव्यों की पर्याय अतीत अनंत अनागत गुणी अनंत ।
वर्त्तमान पर्याय एक व्यवहार काल उतनी पर्यत ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२२)

अब द्रव्यों के कार्य कारण भाव का निरुपण करते हैं

पुव्वपरिणामजुत्तं, कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।
उत्तरपरिणामजुदं, तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥२२२॥

सत्य वचन हो स्वपर दयामय हित मित प्रिय ही हो वाणी।
कभी किसी का अहित न होवे वाणी बोलो कल्याणी ॥

अर्थ- पूर्व परिणाम युक्त द्रव्य कारणरूप है और उत्तरपरिणामयुक्त द्रव्य नियम से कार्यरूप है ।

२२२. ॐ ह्रीं पूर्वोत्तरपरिणामविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अविनाशीचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पूर्व परिणाम युक्त द्रव्य ही कारण रूप कहा जाता ।
उत्तर परिणाम युक्त द्रव्य ही कार्यरूप है कहलाता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२३)

अब वस्तु के तीनों कालों में ही कार्यकारण भाव का निश्चय करते हैं

कारणकज्जविसेसा, तिस्सु वि कालेसु होंति वत्थूणं।
एक्केक्कम्मि य समए, पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२३॥

अर्थ -वस्तुओं के पूर्व और उत्तर परिणाम को पाकर तीनों ही कालों में एक एक समय में कारण कार्य के विषेश होते हैं ।

२२३. ॐ ह्रीं कारणकार्यविशेषविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ध्रुवशुद्धचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

पूर्वोत्तर परिणामों को पा वस्तु तीन ही कालों में ।
एक एक समय में कारण कार्य विशेष सदा मानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

अपने वचनों को सदैव तुम ज्ञान तुला पर ही तोलो ।
निजाचरण हो सदाचरणमय शुद्ध आत्मा को जोलो ॥

(२२४)

अब वस्तु है सो अनन्त धर्मस्वरूप है ऐसा निर्णय करते हैं-

संति अणंताणंता, तीसु वि कालेसु सव्वदव्वाणि ।
सव्वं पि अणेयंतं, तत्तो भणिदं जिणेंदेहि॥२२४॥

अर्थ- सब द्रव्य तीनों ही कालों में अनन्तानंत हैं, अनन्त पर्यायों सहित है इसलिये जिनेन्द्रदेव ने सब ही वस्तुओं को अनेकान्त (अनन्त धर्म स्वरूप) कहा है ।

२२४. ॐ ह्रीं अनेकान्तस्वरूपसर्वद्रव्यविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

नित्यबोधामृतस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

द्रव्य सभी तीनों कालो में सदा अनंतानंत कहे ।
सहित अनंतो पर्यायों के अनेकान्त स्वरूप कहे ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२५)

अब कहते है कि जो अनेकान्तात्मक वस्तु है सो अर्थ क्रियाकारी है-

जं वत्थु अणेयंतं, तं चिय कज्जं करेदि णियमेण ।
बहुधम्मजुदं अत्थं, कज्जकरं दीसदे लोए ॥२२५॥

अर्थ- जो वस्तु अनेकान्त है-अनेक धर्मस्वरूप है सो ही नियम से कार्य करती है लोक में बहुत धर्मों से युक्त पदार्थ ही कार्य करने वाले देखे जाते हैं ।

२२५. ॐ ह्रीं अनन्तधर्मात्मकनिजचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निजगुणाकरस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो वस्तु है अनेकान्त मय वही नियम से करती कार्य।
अतः लोक में बहुत धर्म वस्तु सदा करती है कार्य॥

नहीं जानते जो निजात्मा अज्ञानी गहराई से ।
जिनवर कहते वे न पार होते हैं भव दुख खाई से ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२६)

अब सर्वथा एकान्त वस्तु के कार्यकारीपना नहीं है ऐसा कहते हैं-

एयंतं पुणु दव्वं, कज्जं ण करदि लेसमेत्तं पि ।
ज पुणु ण करदि कज्जं,तं वुच्चदि केरिसं दव्वं॥२२६॥

अर्थ- एकान्तस्वरूप द्रव्य लेशमात्र भी कार्य को नहीं करता है और जो कार्य ही नहीं करता है वह कैसा द्रव्य है, वह करता है तो शून्य रूपसा है ।

२२६. ॐ ह्रीं सर्वथानित्यादिधर्मरहितवस्तुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

वस्तुत्वगुणसंपन्नस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो एकान्त स्वरूप द्रव्य है लेश नहीं करता है कार्य ।
वह है कैसा द्रव्य जो कि करता है नहीं कोई भी कार्य॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२७)

अब सर्वथा नित्य एकान्त में अर्थक्रियाकारीपने का अभाव दिखाते हैं-

परिणामेण विहीणं, णिच्चं दव्वं विणस्सदे णेव ।
णो उप्पज्जेदि सया,एवं कज्जं कहं कुणदि ॥२२७॥

अर्थ- परिणाम रहित नित्य द्रव्य नष्ट नहीं होता है और उत्पन्न भी नहीं होता है तब कार्य कैसे करता है और यदि उत्पन्न व नष्ट होवे तो नित्यपना नहीं ठहरे । इस तरह जो कार्य नहीं करता है वह द्रव्य नहीं है ।

२२७. ॐ ह्रीं उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तवस्तुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सदाबुद्धस्वरूपोऽहं ।

शास्त्राभ्यास ज्ञान धन उत्तम अविनाशी है भव विरहित।
धर्म रूप है स्वर्ग मोक्ष का कारण है सावद्य रहित ॥

छंद ताटंक

परिणाम विहीन द्रव्य नष्ट ना होता ना होता उत्पन्न ।
तो कैसे वह कार्य करेगा नष्ट न हो ना हो उत्पन्न ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२८)

अब फिर क्षणस्थायी के कार्य का अभाव दिखाते हैं-

पज्जयमित्तं तच्चं, विणस्सरं खणे खणे वि अण्णण्णं।
अण्णइदव्वविहीणं, ण य कज्जं किं पि साहेदि॥२२८॥

अर्थ- जो क्षणस्थायी क्षण-क्षण में अन्य अन्य हो ऐसे विनश्वर मानें तो अन्वयीद्रव्य से रहित होता हुआ कुछ भी कार्य को सिद्ध नहीं करता है। क्षणस्थायी विनश्वर के कैसा कार्य?

२२८. ॐ ह्रीं मतिज्ञानादिपर्यायविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चिदन्वयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

क्षण स्थायी क्षण क्षण में जो अन्य अन्य हो नश्वर हो।
तो अन्वयी द्रव्य से विरहित कुछ भी कार्य सिद्ध ना हो॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२२९)

अब अनेकान्त वस्तु के ही कार्यकारणभाव बनता है सो दिखाते हैं-

णवणवकज्जविसेसा, तीसु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।
एक्केक्कम्मि य समये, पुव्वुत्तर भावमासिज्ज ॥२२९॥

अष्ट कर्म सामान्य रूप को असिद्धत्व कहता आगम ।
अष्ट कर्म का उदय न हो तो है सिद्धत्व शिवम सत्यम्॥

अर्थ- जीवादिक वस्तुओ के तीनों ही कालों में एक-एक समय में पूर्व उत्तर परिणाम के आश्रय करके नवीन-नवीन कार्य विशेष होते हैं, नवीन नवीन पर्यायें उत्पन्न होती हैं।

२२९. ॐ ह्रीं नवनवकार्यविशेषविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अपूर्वचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीवादिक वस्तु के तीनों कालों में इक एक समय ।
पूर्वोत्तर परिणाम आश्रय से हो कार्य जु नएनए ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२२९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३०)

अब पूर्वोत्तर भाव के कारण कार्य भाव को दृढ़ करते हैं-

पुव्वपरिणामजुत्तं, कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।
उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥२३०॥

अर्थ- पूर्व परिणामयुक्त द्रव्य कारणभाव से बताता है और वह ही द्रव्य उत्तर परिणामयुक्त हो तब कार्य होता है ऐसा नियम है ।

२३०. ॐ ह्रीं कारणभावरूपपूर्वपरिणामविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरागसस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

द्रव्य पूर्व परिणाम युक्त कारण भाव से वर्तता है ।
वह उत्तर परिणाम युक्त हो तभी कार्य भी होता है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

रत्न दीप रवि दूध दही घृत पत्थर आग स्वर्ण रूपा ।
मणि स्फटिक सभी से जानो निज आत्मा त्रिभुवन भूपा॥

(२३१)

अब जीव द्रव्य के भी वैसे ही अनादिनिधन कार्यकारणभाव सिद्ध करते हैं-

जीवो अणइणिहणो, परिणयमाणो हु णवणवं भावं ।
सामग्गीसु पवट्ठदि, कज्जाणि समासदे पच्छा ॥२३१॥

अर्थ- जीव द्रव्य अनादिनिधन है वह नवीन नवीन पर्यायरूप प्रगट परिणमता है वह ही पहिले द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की सामग्री में प्रवृत्त होता है और बाद में कार्यों की पर्यायों को प्राप्त होता है।

२३१. ॐ ह्रीं आद्यन्तरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अक्षरज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव द्रव्य अनादि निधन है नव नव पर्याय परिणमता ।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव में प्रवृत्त हो पर्याय पाता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३२)

अब जीवद्रव्य अपने द्रव्यक्षेत्र काल भाव में रहता हुआ ही (अपने में ही) नवीन पर्याय रूप कार्य को करता है ऐसा कहते हैं-

ससरूवत्थो जीवो, कज्जं साहेदि वट्टमाणं पि।
खित्ते एकम्मि ठिदो, णियदव्वे संठिदो चेव॥२३२॥

अर्थ- जीवद्रव्य अपने चैतन्य स्वरूप में स्थित होता हुआ अपने ही क्षेत्र में स्थित रहकर अपने ही द्रव्य में रहता हुआ अपने परिणमन रूप समय में अपने पर्याप्यस्वरूप कार्य को सिद्ध करता है ।

२३२. ॐ ह्रीं ज्ञानदर्शनसुखसच्चैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निजसुखप्राणस्वरूपोऽहं ।

अंतरंग तप स्वाध्याय है ज्ञानाभ्यास युक्त पावन ।
मन का होता दमन इसी से अंतरंग तप उत्तम धन ॥

छंद ताटंक

जीव द्रव्य अपने स्वरूप में थित हो स्वक्षेत्र में स्थित ।
निज स्वद्रव्य में रहता हुआ करता अपना स्व कार्य सिद्ध॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३३)

अब यदि अन्यस्वरूप होकर कार्य करे तो उसमें दोष दिखाते हैं-

ससरूवत्थो जीवो, अण्णसरूवम्मि गच्छदे जदि हि।
अण्णोण्णमेलणादो, एक्क-सरूवं हवे सव्वं॥२३३॥

अर्थ- यदि जीव अपने स्वरूप में रहता हुआ पर स्वरूप में जाय तो परस्पर मिलने से एकत्व हो जाने से सब द्रव्य एक स्वरूप हो जाय। तब तो बड़ा दोष आवे परन्तु एकस्वरूप कभी भी नहीं होता है यह प्रगट है ।

२३३. ॐ ह्रीं परद्रव्यक्षेत्रकालभावरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चिदेकशुद्धस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव अपने स्वरूप में रह यदि परस्वरूप में जाएगा ।
अतः परस्पर में मिलने से एकत्व ही हो जाएगा ॥
तब तो बड़ा दोष आएगा इसका तो कुछ करो विचार ।
कोई एक स्वरूप न होता यह दृढ़ निश्चय लो उर धार॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३४)

अब सर्वथा एकस्वरूप मानने में दोष दिखाते हैं-

जो शरीर का दमन करे वह तप बहिरंग कहाता है ।
बाह्य तपों से अंतरंग तप ही उत्कृष्ट कहाता है ॥

अहवा बंभसरूवं, एक्कं सव्वं पि मण्णदे जदि हि ।
चंडालबंभणाणं, तो ण विसेसो हवे को वि ॥२३४॥

अर्थ- यदि सर्वथा एक ही वस्तु मानकर ब्रह्म का स्वरूप रूप सर्व माना जाय तो ब्राह्मण और चांडाल में कुछ भी विशेषता (भेद) न ठहरे ।

२३४. ॐ ह्रीं अविद्यारहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निजब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एकहि ब्रह्म स्वरूप जगत को मानो तो फिर क्या होगा।
अनेक रूप नहीं माना तो घोर अविद्या दुख होगा ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३५)

अब अणुमात्र तत्व को मानने में दोष दिखाते हैं-

अणुपरिमाणं तच्चं, अंसविहीणं च मण्णदे जदि हि ।
तो संबंधाभावो, तत्तो वि ण कज्जसंसिद्धि ॥२३५॥

अर्थ- यदि एक वस्तु सर्वगत व्यापक न मानी जाय और अंशरहित अणुपरिमाण तत्व मानी जाय तो दो अंश के तथा पूर्वोत्तर अंश के संबंध के अभाव से अणुमात्र वस्तु से कार्य की सिद्धि नहीं होती है ।

२३५. ॐ ह्रीं परमाणुमात्रजीवतत्त्वभ्रांतिरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

विष्णुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

नहीं सर्वागत मानी वस्तु अणु परिमाण तत्त्व माना ।
तो संबंध अभाव हुआ फिर कार्य सिद्ध कैसी नाना ॥

शून्याकाश समान भिन्न माने जो देह और आत्मा ।
परंब्रह्म सर्वज्ञ स्वपद पा आत्मा होता परमात्मा ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३६)

अब द्रव्य के एकत्वपने का निश्चय करते हैं-

सव्वाणं दव्वाणं, दव्वसरूवेण होदि एयत्तं ।
णियणियगुणभेएण हि, सव्वाणि वि होंति भिण्णाणि ॥२३६॥

अर्थ- सब ही द्रव्यों के द्रव्यस्वरूप से तो एकत्व होता है और अपने-अपने गुण के भेद से सब द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं ।

२३६. ॐ ह्रीं ज्ञानादिगुणसंपन्नचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

[illegible]स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

सब द्रव्यों के द्रव्य रूप से तो होता ही है एकत्व ।
अपने अपने गुण भेदों से सभी द्रव्य में है भिन्नत्व ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३७)

अब द्रव्य के गुणपर्याय स्वभावपना दिखाते हैं-

जो अत्थो पडिसमयं, उप्पादव्वयधुवत्तसब्भावो ।
गुणपज्जयपरिणामो, सो संतो भण्णदे समये ॥२३७॥

अर्थ- जो अर्थ (वस्तु) समय-समय उत्पाद व्यय ध्रुवत्व के स्वभावरूप है सो गुणपर्यायपरिणामस्वरूप सत्व सिद्धान्त में कहते हैं ।

२३७. ॐ ह्रीं गुणपर्यायपरिणामविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

[illegible]ऽहं ।

प्रकृष्ट प्रवचन ही प्रवचन है शेष सभी है. वचनालाप ।
प्रवचन वही कहाता जो क्षय कर देता अज्ञान प्रताप ॥

छंद ताटंक

जो वस्तु उत्पाद और व्यय ध्रुवत्व से है स्वभाव रूप ।
वही सत्त्व सिद्धत्त्वरूप में गुण पर्याय परिणाम स्वरूप ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३८)

अब द्रव्यों के व्यय उत्पाद क्या हैं सो कहते हैं-

पडिसमयं परिणामो, पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो ।
वत्थुविणासो पढमो, उववादो भण्णदे बिदिओ ॥२३८॥

अर्थ- जो वस्तु का परिणाम समय-समय प्रति पहिला तो नष्ट होता है और दूसरा उत्पन्न होता है सो पहिले परिणामरूप वस्तु का तो नाश (व्यय) है और दूसरा परिणाम जो उत्पन्न हुआ उसको उत्पाद कहते हैं। इस तरह व्यय और उत्पाद होते हैं ।

२३८. ॐ ह्रीं नित्यानंतगुणसंपन्नचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शाश्वतज्ञाननीरस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

वस्तु का परिणाम प्रति समय पहिला क्षय दूजा उत्पन्न ।
पहिला वस्तु विनाश दूसरा जो उत्पन्न हुआ उत्पाद ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२३९)

अब द्रव्य के ध्रुवत्व का निश्चय कहते हैं-

णो उप्पज्जदि जीवो, दव्वसरूवेण णेय णस्सेदि ।
तं चेव दव्वमत्तं, णिच्चत्तं जाण जीवस्स॥२३९॥

कोटि भवों में जितने कर्मों का क्षय करता अज्ञानी ।
वह त्रिगुप्ति से क्षणभर में ही क्षय कर देता है ज्ञानी ॥

अर्थ- जीवद्रव्य द्रव्यस्वरूप से न नष्ट होता है और न उत्पन्न होता है अत: द्रव्यमात्र से जीवके नित्यत्व जानना चाहिये ।

२३९. ॐ ह्रीं नित्यत्वचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ज्ञायकस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीव द्रव्य द्रव्य स्वरूप से नष्ट न होता ना उत्पन्न ।
अत: जीव को द्रव्य मात्र से आप सहज जानो नित्यत्व॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२३९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४०)

अब द्रव्यपर्याय का स्वरूप कहते हैं-

अण्णइरूवं दव्वं, विसेसरूवो हवेइ पज्जाओ ।
दव्वं पि विसेसेण हि, उप्पज्जदि णस्सदे सददं॥२४०॥

अर्थ- जीवादिक वस्तु अन्वयरूप से द्रव्य है वह ही विशेषरूप से पर्याय है और विशेषरूप से द्रव्य भी निरन्तर उत्पन्न व नष्ट होता है।

२४०. ॐ ह्रीं स्वभावविभावपर्यायविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानान्वयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

वस्तु द्रव्य अन्वयस्वरूप से विशेष रूप से है पर्याय ।
विशेष रूप से द्रव्य निरंतर उत्पन्न होता होता नष्ट ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

ज्यों आकाश शुद्ध है त्यों ही निजआत्मा है परमात्मा।
जड़ आकाश किन्तु है चेतन तत्त्व सचेतन निज आत्मा॥

(२४१)

अब गुण का स्वरूप कहते हैं-

सरिसो जो परिणामो, अणाइणिहणो हवे गुणो सो हि।
सो सामण्णसरूवो, उपज्जदि णस्सदे णेय ॥२४१॥

अर्थ- जो द्रव्य का परिणाम सदृश (पूर्व उत्तर सब पर्यायों में समान) होता है अनादिनिधन होता है वह ही गुण है वह सामान्य स्वरूप से उत्पन्न व नष्ट भी नहीं होता है ।

२४१. ॐ ह्रीं परापरविवर्तव्यापीसद्रूपविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

बोधान्वयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

द्रव्य परिणाम सदृश होता है और अनादि निधन होता ।
वह ही गुण सामान्य रूप से उत्पन्न नष्ट नहीं होता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४२)

अब कहते है कि गुणाभास विशेषस्वरूप से उत्पन्न व नष्ट होता है, गुणपर्यायों का एकत्व है सो ही द्रव्य है-

सो वि विणस्सदि जायदि, विसेसरूवेण सव्वदव्वेसु ।
दव्वगुणपज्जयाणं, एयत्तं वत्थु परमत्थं ॥२४२॥

अर्थ- गुण भी द्रव्यों में विशेष रूप से उत्पन्न व नष्ट होता है इस तरह से द्रव्यगुणपर्यायों का एकत्व है वह ही परमार्थ भूत वस्तु है ।

२४२. ॐ ह्रीं सहभाविक्रमभाविगुणपर्यायविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शिवान्वयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

गुण द्रव्यों में विशेष रूप से क्षय होते होते उत्पन्न ।
है एकत्व द्रव्य गुण पर्यायों का परमार्थ भूत है वस्तु ॥

कलह द्वेषमात्सर्य क्रोध पैशून्य मान माया दुख रूप ।
सत्य अहिंसा क्षमाशील विनयादिक शुचि ऋजुता सुख रूप ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४३)

अब आशंका उत्पन्न होती है कि द्रव्यों में पर्यायें विद्यमान उत्पन्न होती हैं या अविद्यमान उत्पन्न होती हैं? ऐसी आशंका को दूर करते हैं-

जदि दव्वे पज्जाया, वि विज्जमाणा तिरोहिदा संति।
ता उत्पत्ती विहला, पडिपिहिदे देवदत्तेव्व॥२४३॥

अर्थ- जो द्रव्यों में पर्यायें हैं वे विद्यमान और तिरोहित ढकी हुई हैं ऐसा माना जाय तो उत्पत्ति कहना विफल है जैसे देवदत्त कपड़े से ढका हुआ था। कपड़े हटा देने पर यह कहा जाय कि यह उत्पन्न हुआ इस तरह से उत्पत्ति कहना परमार्थ (सत्य) नहीं, विफल है। इसी तरह ढकी हुई द्रव्य पर्याय के प्रगट होने पर उसकी उत्पत्ति कहना परमार्थ नहीं है इसलिये अविद्यमान पर्याय की ही उत्पत्ति कही जाती है ।

२४३. ॐ ह्रीं पर्यायोत्पत्तिविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

ब्रह्मान्वयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो द्रव्यों में पर्याये हैं विद्यमान हैं ढकी हुई ।
तो कहना उत्पत्ति विफल है अविद्यमान ना हो उत्पन्न॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४४)

फिर वही कहते है ।-

सव्वाण पज्जयाणं, अविज्जमाणाण होदि उत्पत्ती ।
कालाईलद्धीए, अणाइणिहणम्मि दव्वम्मि ॥२४४॥

सिद्ध साक्षी होते सब ही पंडित करते मंत्रोच्चार ।
जो इस विधि से आगे आते वे ही करते आत्मोद्धार ॥

अर्थ- अनादिनिधन द्रव्यों में कालादि लब्धि से अविद्यमान पर्यायों की उत्पत्ति होती है।

२४४. ॐ ह्रीं अनाद्यनिधनचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शुद्धान्वयस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

अनादि निधन द्रव्यों में तो यह काल लब्धि से जो होती।
सर्व अविद्यमान पर्यायों की उत्पत्ति सदा होती ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४५)

अब द्रव्य पर्यायों के कथंचित् भेद कथंचित् अभेद दिखाते हैं-

दव्वाणपज्जयाणं, धम्मविवक्खाइ कीरए भेओ ।
वत्थुसरूवेण पुणो, ण हि भेओ सक्कदे काउं॥२४५॥

अर्थ- द्रव्य और पर्यायों के धर्म धर्मी की विक्षासे भेद किया जाता है वस्तुस्वरूप से भेद करने को समर्थ नहीं है ।

२४५. ॐ ह्रीं धर्मधर्मिभेदविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

उपचाररहितोऽहं ।

छंद ताटंक

द्रव्य और पर्यायों के धर्म धर्मी की विवक्षा है ।
भेद किया जाता है पर निश्चय से कोई भेद नहीं ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४६)

अब द्रव्य पर्याय के सर्वथा भेद मानते हैं उनको दोष दिखाते हैं-

जो नासाग्रदृष्टि रख तन से भिन्न आत्म भीतर लखते।
वे न जन्म धारण करते हैं जननी क्षीर न फिर चखते॥

जदि वत्थुदो विभेदो, पज्जयदव्वाण मण्ण से मूढ ।
तो णिरवेक्खा सिद्धी, दोण्हं पि य पावदे णियमा॥२४६॥

अर्थ- द्रव्य पर्याय के भेद मानता है उसको कहते हैं कि हे मूढ यदि तू द्रव्य और पर्याय के वस्तु से भी भेद मानता है तो द्रव्य और पर्याय दोनों के निरपेक्षा सिद्धि नियम से प्राप्त होती है ।

२४६. ॐ ह्रीं द्रव्यपर्यायभेदकल्पनारहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्भेदज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

अगर द्रव्य अरु पर्यायों के वस्तु से भी भेद मानो ।
तो फिर धर्मी धर्मपने की सिद्धि नहीं होगी जानो ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४७)

अब जो विज्ञान ही अद्वैत कहते हैं और बाह्य पदार्थ को नहीं मानते हैं उनको दोष बताते हैं-

जदि सव्वमेव णाणं, णाणारूवेहि संठिदं एक्कं ।
तो ण वि किं पि विणेयं, णेयेण विणा कहं णाणं ॥२४७॥

अर्थ- जो सब वस्तुए एक ज्ञान ही हैं वह ही अनेक रूपों से स्थित है यदि ऐसा माना जाय तो ज्ञेय कुछ भी सिद्ध नहीं होता है और ज्ञेयके बिना ज्ञान कैसे सिद्ध होवे।

२४७. ॐ ह्रीं ज्ञानज्ञेयविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

बोधप्रभुस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

ज्ञान मात्र है ज्ञेय नहीं कुछ यदि तू ऐसा मानेगा ।
तो फिर कैसे ज्ञान कहा जावेगा बाधा पाएगा ॥

मिथ्यात्वादिक पंच भाव के द्वारा जो कार्माण पुद्गल ।
कर्म रूप जो होते वे कहलाते बध्यमान पुद्गल ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४८)

फिर वही कहते हैं-

घडपडजडदव्वाणि हि, णेयसरूवाणि सुप्पसिद्धाणि ।
णाणं जाणेदि जदो, अप्पादो भिण्णरूवाणि ॥२४८॥

अर्थ- घट पट आदि समस्त जड़द्रव्य ज्ञेयस्वरूप से भले प्रकार प्रसिद्ध हैं क्योंकि ज्ञान उसको जानता है इसलिये वे आत्मा से-ज्ञान से भिन्नरूप रहते हैं ।

२४८. ॐ ह्रीं घटपटादिजड़द्रव्यविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

पवित्रबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

घट पटादि सब द्रव्यों की तो सिद्धि ज्ञेय रूप से होती ।
क्योंकि जानता ज्ञान उन्हें वे भिन्नज्ञान से रहते हैं ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२४९)

फिर वही कहते हैं-

जं सव्वलोयसिद्धं, देहं गेहादिबाहिरं अत्थं ।
जो तं पि णाण मण्णदि, ण मुणदि सो णाणणामं पि ॥२४९॥

अर्थ- जो देह गेह आदि बाह्य पदार्थ सर्व लोकप्रसिद्ध हैं उनको भी ज्ञान ही माने तो वह वादी ज्ञान का नाम भी नहीं जानता है ।

२४९. ॐ ह्रीं ज्ञानभिन्नदेहगेहादिबाह्यवस्तुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शुद्धज्ञानस्वरूपोऽहं ।

प्रकृति शील या स्वभाव ये समानार्थक शब्द प्रसिद्ध।
एक समय में जो बंध जाता वह कहलाता समय प्रबद्ध॥

छंद ताटंक

बाह्य पदार्थों को भी ज्ञान मानने वाला है अज्ञान ।
नहीं ज्ञान का नाम जानता कैसा यह मूरख अनजान ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२४९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५०)

अब नास्तित्ववादी के प्रति कहते हैं-

अच्छीहिं पिच्छमाणो, जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं ।
जो भणदि णत्ति किंचि वि, सो झुट्ठाणं महाझुट्ठो॥२५०॥

अर्थ- जो नास्तिकवादी जीव अजीव आदि बहुत प्रकार के पदार्थों को प्रत्यक्ष नेत्रों से देखता हुआ भी जो कहता है कि कुछ भी नहीं है वह असत्यवादियों में महा असत्यवादी है ।

२५०. ॐ ह्रीं महानिर्लज्जनास्तिकवादीविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

बोधविभूस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जीवाजीव पदार्थ आदि आँखों से जो देखे प्रत्यक्ष ।
फिर भी कहता नहीं कहीं कुछ वही जीव असत्य में दक्ष॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५१)

फिर वही कहते हैं-

जं सव्वं पि य संतं, ता सो वि असंतओ कहं होदि ।
णत्थित्ति किंचि तत्तो, अहवा सुण्णं कहं मुणदि॥२५१॥

जड़ देही से भिन्न अमूर्तिक निज आत्मा को ही जानो ।
तज कर मिथ्या मोह देह जड़ को तुम पर सदैव मानो॥

अर्थ- जो सब वस्तुएं सत्रूप हैं विद्यमान हैं वे वस्तुएं असत्वरूप-अविद्यमान कैसे हो सकती हैं अथवा कुछ भी नहीं है ऐसा तो शून्य है ऐसा भी किस प्रकार मान सकते हैं ।

२५१. ॐ ह्रीं असत्विकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सच्चिदैश्वर्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

वस्तु असत् है अविद्यमान है ऐसा भी कहने वाला ।
शून्य कर रहा है अज्ञानी मूढ़ महान कुमति वाला ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५२)

फिर वही कहते हैं-

किं बहुणा उत्तेण य, जेत्तियमेत्ताणि संति णामाणि ।
तित्तियमेत्ता अत्था, संति हि णियमेण परमत्था॥२५२॥

अर्थ- बहुत कहने से क्या? जितने नाम हैं उतने ही नियम से पदार्थ परमार्थ रूप हैं।

२५२. ॐ ह्रीं परमार्थसच्चैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजपरमचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जितने भी है नाम सुने उतने ही है सत्यार्थ पदार्थ ।
बहुत क्या कहें है परमार्थ स्वरूप नियम से सभी पदार्थ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

आत्म अनुभवी दशा प्रप्ति की परंपरा है शास्त्राभ्यास।
इसके बल से मोक्षरूप फल आता है जीवों के पास ॥

(२५३)

अब उन पदार्थों को जानने वाला ज्ञान है उसका स्वरूप कहते हैं-

णाणाधम्मेहिं जुदं, अप्पाणं तह परं पि णिच्छयदो ।
जं जाणेदि सजोगं, तं णाणं भण्णदे समये ॥२५३॥

अर्थ- जो अनेक धर्मयुक्त आत्मा तथा पर द्रव्यों को अपने योग्य को जानता है उसको निश्चय से सिद्धान्त में ज्ञान कहते हैं ।

२५३. ॐ ह्रीं नानाधर्मयुक्तवस्तुविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
सहजबोधकलास्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

धर्म अनेक युक्त आत्मा अरु परद्रव्यों को जाने ।
अपने योग्य कार्य को जाने निश्चय से कहते वह ज्ञान॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५४)

अब सकल प्रत्यक्ष केवलज्ञान का स्वरूप कहते हैं-

जं सव्वं पि पयासदि, दव्वपज्जायसंजुदं लोयं ।
तह य अलोयं सव्वं, तं णाणं सव्वपच्चक्खं ॥२५४॥

अर्थ जो ज्ञान द्रव्यपर्याय संयुक्त सब ही लोक को तथा सब अलोक को प्रकाशित करता है (जानता है) वह सर्वप्रत्यक्ष केवलज्ञान है ।

२५४. ॐ ह्रीं लोकालोकप्रत्यक्षज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।
ज्ञानसाम्राज्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

ज्ञान द्रव्य पर्याय युक्त जो लोकालोक जानता है ।
वह है केवलज्ञान वही सर्व प्रत्यक्ष कहाता है ॥

क्रोधादिक चारों कषाय भी स्वतः मंद हो जाती हैं ।
पंचेन्द्रिय के विषय भोग की प्रवृत्तियाँ रुक जाती हैं ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५५)

अब ज्ञान को सर्वगत कहते हैं-

सव्वं जाणदि जम्हा, सव्वगयं तं पि वुच्चदे तम्हा ।
ण य पुण विसरदि णाणं, जीवं चइऊण अण्णत्थ॥२५५॥

अर्थ- क्योंकि ज्ञान सब लोकालोक को जानता है इसलिए ज्ञानको सर्वगत भी कहते हैं और ज्ञान जीवको छोड़कर अन्य ज्ञेय पदार्थों में नहीं जाता है ।

२५५. ॐ ह्रीं संनिकर्षरूपज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

परनिरपेक्षज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

लोकालोक ज्ञान जानता अतः सर्वगत कहलाता ।
ज्ञान जीव को छोड़ अन्य ज्ञेयों मे कभी नहीं जाता ।
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५६)

अब ज्ञान जीव के प्रदेशों में रहता हुआ ही सबको जानता है ऐसा कहते हैं

णाणं ण जादि णेयं, णेयं पि ण जादि णाणदेसम्मि ।
णियणियदेसठियाणं, ववहारो णाणणेयाणं ॥२५६॥

अर्थ- ज्ञान ज्ञेय में नहीं जाता है और ज्ञेय भी ज्ञान के प्रदेशों में नहीं जाता है अपने-अपने प्रदेशों में रहते हैं तो भी ज्ञान और ज्ञेय के ज्ञेयज्ञायक व्यवहार है ।

२५६. ॐ ह्रीं निजनिजदेशस्थिज्ञानज्ञेयविकल्परहितचैतयस्वरूपाय नमः ।

सहजज्ञानामृतस्वरूपोऽहं ।

आत्मा को आत्मा के द्वारा अनुभव का फल केवल ज्ञान।
अविनाशी अक्षय आनंदमयी मिल जाता है निर्वाण ॥

छंद ताटंक

ज्ञान ज्ञेय में नहीं ज्ञेय भी नहीं ज्ञान में जाता है ।
निज निज प्रदेश में रहता है ज्ञेय ज्ञायक कहलाता है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५७)

अब मन: पर्यय अवधिज्ञान और मति श्रुतज्ञान की सामर्थ्य कहते हैं-

मणपज्जयविण्णाणं, ओहीणाणं च देसपच्चक्खं ।
मइसुयणाणं कमसो, विसदपरोक्खं परोक्खं च ॥२५७॥

अर्थ- मन: पर्ययज्ञान और अवधिज्ञान ये दोनों तो देशप्रत्यक्ष है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान क्रम से प्रत्यक्षपरोक्ष और परोक्ष हैं ।

२५७. ॐ ह्रीं विशदाविशदज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नम: ।

सहजशुद्धबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

मन पर्यय अरु अवधि ज्ञान दोनों ही हैं देश प्रत्यक्ष ।
है श्रुतज्ञान परोक्ष तथा मति ज्ञान परोक्ष और प्रत्यक्ष ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२५७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२५८)

अब इन्द्रियज्ञान, योग्य विषय को जानता है ऐसा कहते हैं-

इंदियजं मदिणाणं, जोग्गं जाणेदि पुग्गलं दव्वं ।
माणसणाणं च पुणो, सुयविसयं अक्खविसयं च ॥२५८॥

अर्थ- इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ मतिज्ञान अपना योग्य विषय जो पुद्गल द्रव्य उसको जानता

अति चंचल मन जब एकाग्र दशा को हो जाता है प्राप्त।
तीन काल त्रय लोकों का भी अल्पज्ञान होता उर व्याप्त॥

है। जिस इन्द्रियका जैसा विषय है वैसा ही जानता है। और मनसम्बन्धी ज्ञान श्रुतविषय (शास्त्र का वचन सुनकर उसके अर्थ को जानता है) और इन्द्रियों से जानने योग्य विषय को भी जानता है।

२५८. ॐ ह्रीं मानसज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

अतीन्द्रियज्ञानस्वरूपोऽहं।

छंद ताटंक

इन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान को पुदगल द्रव्य योग्य जानो।
मन संबंधी ज्ञान श्रुत विषय के भी इन्द्रिय से जानो॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है॥२५८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

(२५९)

अब इन्द्रियज्ञान के उपयोग की प्रवृत्ति अनुक्रम से है ऐसा कहते हैं

पंचेदियणाणाणं, मज्झे एगं च होदि उवजुत्तं।
मणणाणे उवजुत्ते, इंदियणाणं ण जाणेदि॥२५९॥

अर्थ- पांचों ही इन्द्रियों से ज्ञान होता है लेकिन एक काल एकेन्द्रिय द्वार से ज्ञान उपयुक्त होता है। पांचों ही एक काल उपयुक्त नहीं होते हैं। और जब मन ज्ञान से उपयुक्त हो तब इन्द्रियज्ञान उत्पन्न नहीं होता है।

२५९. ॐ ह्रीं आर्तरौद्रादिध्यानरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

निरुपाधिज्ञानस्वरूपोऽहं।

छंद ताटंक

ज्ञान एक एक अनुक्रम से पांचों इद्रिय से होता।
मन से होता है सदैव इन्द्रिय से कभी नहीं होता॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है॥२५९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि.।

हेय मानता तज देता है उपादेय जानता उचित ।
आत्म ज्ञान सन्मुख होता है सिद्ध लोक पाता निश्चित्॥

(२६०)

ऊपर इन्द्रिय मन संबंधी ज्ञान की क्रम से प्रवृत्ति कही है, यहां आशंका उत्पन्न होती है कि इन्द्रियों का ज्ञान एक काल है या नहीं? इस आशंका को दूर करने को कहते हैं-

एक्के काले एगं, णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं ।
णाणाणाणाणि पुणो, लद्धि-सहावेण वुच्चंति ॥२६०॥

अर्थ- जीव के एक काल में एक ही ज्ञान उपयुक्त (उपयोग की प्रवृत्ति) होता है और लब्धिस्वभाव से एककाल में अनेक ज्ञान कहे गये हैं ।

२६०. ॐ ह्रीं लब्ध्युपयोगरूपज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरुपमज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एक काल में एक ज्ञान ही जीवों को उपयुक्त होता ।
लब्धि स्वभाव से एक काल में ज्ञान अनेक ही होता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६१)

अब वस्तु के अनेकात्मता है तो भी अपेक्षा से एकात्मता भी है ऐसा दिखाते हैं-

जं वत्थु अणेयंतं, एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं ।
सुयणाणेण णयेहि य, णिरवेक्खं दीसदे णेव ॥२६१॥

अर्थ- जो वस्तु अनेकान्त है वह अपेक्षासहित एकान्त भी है श्रुतज्ञान प्रमाण से सिद्ध किया जाय तो अनेकान्त ही है और श्रुतज्ञान प्रमाण के अंश नयों से सिद्ध किया जाय तब एकान्त भी है, वह अपेक्षा रहित नहीं है क्योंकि निरपेक्ष नय मिथ्या हैं, निरपेक्षा से वस्तु का रूप नहीं देखा जाता है ।

परभावों का परित्याग कर आत्मा में करते अपनत्व ।
केवल वे संसार समुद्र नाश कर पाते हैं सिद्धत्व ॥

२६१. ॐ ह्रीं श्रुतज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

परमनिस्पृहज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

अनेकान्ताएकान्त वस्तु है नहीं अपेक्षा सहित कभी ।
निरपेक्ष नय मिथ्या होते है वस्तुरूप दिखता न कभी ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६२)

अब श्रुतज्ञान परोक्षरूप से सबको प्रकाशित करता है यह कहते हैं-

सव्वं पि अणेयंतं, परोक्खरूवेण जं पयासेदि ।
तं सुयणाणं भण्णदि, संसयपहुदीहि परिचत्तं ॥२६२॥

अर्थ- जो ज्ञान सब वस्तुओं को अनेकान्त, परोक्षरूप से प्रकाशित करता है-जानता है-कहता है और जो संशय विपर्यय अनध्यवसाय से रहित है उसको श्रुतज्ञान कहते है । ऐसा सिद्धान्त में कथन है ।

२६२. ॐ ह्रीं संशयादिरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निःशङ्कज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

ज्ञान वस्तु को अनेकान्त परोक्ष रूप से कहता है ।
संशय विभ्रम आदि रहित है वह श्रुत ज्ञान कहाता है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६३)

अब श्रुतज्ञान के विकल्प (भेद) वे नय हैं, उनका स्वरूप कहते है -

श्रेष्ठ परम तप स्वाध्याय से मिथ्यामति तत्क्षण जाती ।
यह महिमा शास्त्राभ्यास की अंतरंग तप से आती ॥

लोयाणं ववहारं, धम्मविवक्खाइ जो पसाहेदि ।
सुयणाणस्स वियप्पो, सो वि णओ लिंगसंभूदो ॥२६३॥

अर्थ- - जो लोकव्यवहार को वस्तु के एक धर्म की विवक्षा से सिद्ध करता है श्रुतज्ञान का विकल्प (भेद) है लिंग से उत्पन्न हुआ है वह नय है ।

२६३. ॐ ह्रीं भेदोपचारविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अकलङ्कबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

एक धर्म की विवक्षा से लौक व्यवहार साधता है ।
वह श्रुत ज्ञान विकल्प तथा नय लिंगोत्प जु होता है ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६४)

एब एक धर्म को नय कैसे ग्रहण करता है सो कहते हैं

णाणाधम्मजुदं पि य, एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं ।
तस्सेयविवक्खादो, णत्थि विवक्खा हु संसाणं ॥२६४॥

अर्थ- अनेक धर्मों से युक्त पदार्थ हैं तो भी एक धर्म रूप पदार्थ को कहता है क्योंकि जहां एक धर्म की विवक्षा करते हैं वहां उस ही धर्म को कहते हैं अवशेष (बाकी) सब धर्मों की विवक्षा नहीं करते हैं।

२६४. ॐ ह्रीं नयविवक्षाविकल्परहित चैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्भेदचित्स्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

धर्म अनेक युक्त पदार्थ एक धर्म रूप कहता ।
एक धर्म की विवक्षा हो उसी धर्म को वह कहता ॥

पुण्य सातिशय बंधता ही है बहु आनंद उठाता है ।
जग में यश गौरव से भूषित यह विशेष हो जाता है ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६५)

अब वस्तु के धर्म को, उसके वाचक शब्द को और उसके ज्ञान को, नय कहते हैं-

सो चिय इक्को धम्मो, वाचयसद्दो वि तस्स धम्मस्स ।
तं जाणदि तं णाणं, ते तिण्णि वि णयविसेसा य ॥२६५॥

अर्थ- जो वस्तु का एक धर्म उस धर्म का वाचक शब्द और उस धर्म को जानने वाला ज्ञान ये तीनों ही नय के विशेष हैं ।

२६५. ॐ ह्रीं एकधर्मवाचकनयविशेषरहितचैन्यस्वरूपाय नमः ।

ध्रुवबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो वस्तु का एक धर्म है उसका वाचक शब्द विशेष ।
उसे जानने वाला ज्ञान ये तीनों हैं नय जु विशेष ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६६)

अब पूछते हैं कि वस्तु का एक धर्म ही ग्रहण करता है ऐसा जो एक नय उसको मिथ्यात्व कैसे कहा है, उसका उत्तर कहते हैं-

ते सावेक्खा सुणया, णिरवेक्खा ते वि दुण्णया होंति ।
सयलववहारसिद्धी, सुणयादी होदि णियमेण ॥२६६॥

अर्थ- वे पहिले कहे हुए तीन प्रकार के नय परस्पर में अपेक्षा सहित होते हैं तब तो सुनय हैं और वे ही जब अपेक्षा रहित सर्वथा एक-एक ग्रहण किये जाते हैं तब दुर्नय

जो परभावों को तजते है लोकालोक प्रकाशक बन ।
वे आत्मा का अनुभव करते वे ज्ञानी ज्ञायक धन धन ॥

हैं और सुनयों से सर्व व्यवहार वस्तु के स्वरूप की सिद्धि नियम से होती है।

२६६. ॐ ह्रीं सुनयदुर्णयविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

सहजशाश्वतबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

तीनों प्रकट परस्पर में हैं सहित अपेक्षा वही सुनय ॥
रहित अपेक्षा जो होते हैं ग्रहण वही तो है दुर्नय ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६७)

अब परोक्षज्ञान में अनुमान प्रमाण भी है उसका उदाहरण पूर्वक स्वरूप कहते हैं-

जं जाणिज्जइ जीवो, इन्दियवावारकायचिट्ठाहिं ।
तं अणुमाणं भण्णदि, तं पि णयं बहुविहं जाण ॥२६७॥

अर्थ- जो इन्द्रियों के व्यापार और कायकी चेष्टाओं से शरीर में जीव को जानते हैं उसको अनुमान प्रमाण कहते हैं वह अनुमान ज्ञान भी नय है और अनेक प्रकार का है ।

२६७. ॐ ह्रीं अनुमाननयज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

परालंबनरहितोऽहं ।

छंद ताटंक

जो इन्द्रिय व्यापार काय चेष्टा से तन में जाने जीव ।
वह अनुमान प्रमाण सुनय वह हैं अनुमान अनेक सदीव॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

ज्ञान चेतना के प्रताप से कर्म चेतना होती दूर ।
फिर चेतना कर्म फल वाली हो जाती है चकनाचूर ॥

(२६८)

अब नय के भेदों को कहते हैं-

सो संगहेण एक्को, दुविहो वि य दव्वपज्जएहिंतो ।
तेसिं च विसेसादो, णइगमपहुदी हवे णाणं ॥२६८॥

अर्थ- वह नय संग्रह करके कहिये तो (सामान्यतया) एक है और द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक के भेद से दो प्रकार का है और विशेषकर उन दोनों की विशेषता से नैगमनय को आदि देकर हैं सो नय है और वे ज्ञान ही हैं ।

२६८. ॐ ह्रीं नैगमादिनयज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नम. ।

निर्मलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

वह नय संग्रह करके कहिये तो वह एक और है दो ।
द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक अरु नैगमनय सब ही है ज्ञान ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२६९)

अब द्रव्यार्थिकनय का स्वरूप कहते हैं--

जो साहदि सामण्णं, अविणाभूदं विसेसरूवेहिं ।
णाणाजुत्तिबलादो, दव्वत्थो सो णओ होदि॥२६९॥

अर्थ- जो नय वस्तु को विशेष रूप से अविनाभूत सामान्य स्वरूप को अनेक प्रकार की युक्ति के बल से सिद्ध करता है वह द्रव्यार्थिक नय है ।

२६९. ॐ ह्रीं नानायुक्तिरूपानेकतर्कज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अतर्क्योऽहं ।

छंद ताटंक

जो नय वस्तु विशेष रूप से अविनाभूत सामान्य स्वरूप।
बहु प्रकार की युक्ति बना कहता है द्रव्यार्थिक नय रूप ॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२६९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७०)

अब पर्यायार्थिक नयको कहते हैं ।

जो साहेदि विसेसे, बहुविह-सामण्ण संजुदे सव्वे ।
साहणलिंगवसादो, पज्जयविसयो णओ होदि ॥२७०॥

अर्थ- जो नय अनेक प्रकार सामान्य सहित सर्व विशेष को उनके साधन के लिंग के वश से सिद्ध करता है वह पर्यायार्थिक नय है ।

२७०. ॐ ह्रीं साधनालिङ्गरूपपर्यायर्थिकनयज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नम: ।

निर्लेपबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो नय विविध प्रकार सहित सामान्य सर्व विशेष कहे ।
उनके साधन के लिंग वश से सिद्ध करे पर्यायार्थिक ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७१)

अब द्रव्यार्थिक नयके भेदों को कहेंगे । पहिल नैगमनय को कहते हैं-

जो साहेदि अदीदं, वियप्परूवं भविस्समट्ठं च ।
संपडिकालाविट्ठं सो हु णओ णेगमो णेयो ॥२७१॥

अर्थ- जो नय अतीत भविष्यत तथा वर्तमान को संकल्पमात्र सिद्ध करता है वह नैगम नय है ।

२७१. ॐ ह्रीं संकल्पमात्रविषयरूपवर्तमानैगमनज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नम:।

नित्यबोधसौख्यस्वरूपोऽहं ।

ज्ञान चेतना जगा हृदय में पलभर में कर निज कल्याण।
ज्ञान चेतना बिना कभी भी होंगे नहीं कर्म अवसान ॥

छंद ताटंक

जो नय भूत भविष्य विद्य को संकल्प मात्र सिद्ध करता।
वह नैगमनय कहलाता है वह त्रय सुविधि कथन करता॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है !
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७२)

अब संग्रहनय को कहते हैं

जो संगहेदि सव्वं देसं वा विविहदव्वपज्जायं ।
अणुगमलिंगविसिट्ठं, सो वि णयो संगहो होदि ॥२७२॥

अर्थ- जो नय सब वस्तुओं को तथा देश अर्थात् एक वस्तु के भेदों को अनेक प्रकार द्रव्य पर्याय सहित अन्वय लिंग से विशिष्ट संग्रह करता है एक स्वरूप कहता है वह संग्रह नय है।

२७२. ॐ ह्रीं अन्वयलिङ्गविशिष्टसंग्रहनयज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नम. ।

चैतन्यचिन्हस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

संग्रह नय सब वस्तु को अरु एक वस्तु के भेदों को ।
द्रव्य पर्याय सहित अन्वयलिंग से वह संग्रह करता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७३)

अब व्यवहारनय को कहते हैं-

जो संगहेण गहिदं, विसेसरहिदं पि भेददे सददं ।
परमाणूपज्जंतं, ववहारणओ हवे सो हु ॥२७३॥

निज अनुभव के पंख लगा कर सिद्धदेश उड़ जा चेतन।
यह न देश तेरा परदेशी अपने से जुड़ जा चेतन ॥

अर्थ- जिस नयने संग्रह नय से विशेष रहित वस्तु को ग्रहण किया था उसको परमाणु पर्यन्त निरन्तर भेदता है वह व्यवहार नय है ।

२७३. ॐ ह्रीं व्यवहारनयज्ञानरतिचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अमलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

संग्रह नय से रहित विशेष वस्तु का ग्रहण किया वहरूप।
परमाणु पर्यंत निरंतर भेदे वह है व्यवहार नय ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७४)

अब पर्यायार्थिक के भेद कहेंगे । पहिले ही ऋजुसूत्रनय को कहते हैं-

जो वट्टमाणकाले, अत्थपज्जायपरिणदं अत्थं ।
संतं साहदि सव्वं, तं वि णयं रिजुणयं जाण॥२७४॥

अर्थ- जो नय वर्त्तमान काल में अर्थ पर्यायरूप परिणत पदार्थ को सबको सत्‌रूप सिद्ध करता है वह ऋजुसूत्र नय है ।

२७४. ॐ ह्रीं ऋजुसूत्रनयज्ञानरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

विमलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो नय वर्त्तमान काल में अर्थ पर्यायरूप परिणत ।
पदार्थ को सत्‌रूप सिद्ध करता है वह हैऋजु सूत्रनय ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७४॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

गृहस्थ हो अथवा होवे मुनि जो आत्मा में करता वास।
जिनवर कहते अल्पावधि में पाता शिव-सुख मुक्ति निवास॥

(२७५)

अब तीन शब्दनय कहेंगे । पहिले शब्दनय को कहते हैं-

सव्वेसिं वत्थूणं, संखालिंगादि बहुपयारेहिं ।
जो साहदि णाणत्तं, सद्दणयं तं वियाणेह ॥२७५॥

अर्थ-जो नय सब वस्तुओं के संख्या लिंग आदि अनेक प्रकार से अनेकत्व को सिद्ध करता है उसको शब्दनय जानना चाहिये ।

२७५. ॐ ह्रीं शब्दनयज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अशब्दस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो नय सर्व वस्तुओं के संख्या लिंगादि अनेक प्रकार ।
अनेकत्व को सिद्ध करता है वही शब्दनय हृदय विचार॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७५॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७६)

अब समभिरूढनय को कहते हैं-

जो एगेगं अत्थं, परिणदिभेदेण साहदे णाणं ।
मुक्खत्थं वा भासदि, अहिरूढं तं णयं जाण ॥२७६॥

अर्थ- जो नय वस्तुको परिणाम के भेद से एक-एक भिन्न-भिन्न भेदरूप सिद्ध करता है अथवा उनमें मुक्य अर्थ ग्रहण कर सिद्ध करता है उसको समभिरूढ़ नय जानना चाहिये।

२७६. ॐ ह्रीं अभिरूढविषयरूपसमभिरूढ़नयज्ञानविकल्परहितचैतन्य स्वरूपाय नमः ।

विज्ञानघनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो नय वस्तु को परिणाम भेद से भिन्न भिन्न करता ।
अथवा उनमें मुख्य ग्रहण करता वह समभिरूढ़ नय है॥

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७६॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७७)

अब एवंभूत नयको कहते हैं-

जेण सहावेण जदा, परिणदरूवम्मि तम्मयत्तादो ।
तप्परिणामं साहदि, जो वि णओ सो हु परमत्थो॥२७७॥

अर्थ- वस्तु जिस समय जिस स्वभाव से परिणमनरूप होती है उस समय उस परिणाम से तन्मय होती है इसलिए उस ही परिणामरूप सिद्ध करती है- कहती है वह एवं भूत नय है यह नय परमार्थ रूप है।

२७७. ॐ ह्रीं एवंभूतनयज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

चिद्बोधघनस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

वस्तु जिस समय जिस स्वभाव से परिणमती उस क्षण तन्मय।
वह परिणाम सिद्ध करती है वह नय एवं भूत सुनय ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७७॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७८)

अब नयों के कथन का संकोच करते हैं-

एवं विविहणएहिं, जो वत्थू ववहरेदि लोयम्मि ।
दंसणणाणचरित्तं, सो साहदि सग्गमोक्खं च ॥२७८॥

अर्थ- जो पुरुष लोक में इस तरह अनेक नयों से वस्तु को व्यवहाररूप कहता है, सिद्ध करता है । और प्रवृत्ति कराता है वह पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्र को और स्वर्ग मोक्ष को सिद्ध करता है - प्राप्त करता है ।

संयम पवन चलेगी तो फिर अविरति उड़ ही जाएगी।
चिर प्रमाद की दशा नष्ट कर निज से जुड़ ही जाएगी॥

२७८. ॐ ह्रीं नानाप्रकारनयज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

चिद्बोधप्राणस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो प्रमाण नयों से वस्तु का स्वरूप सिद्ध करता ।
दर्शन ज्ञान चरित्र प्राप्त कर स्वर्ग मोक्ष सिद्ध करता ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७८॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२७९)

अब कहते हैं कि तत्वार्थ को सुनने, धारणा और भावना करने वाले विरले हैं-

विरला णिसुणहि तच्चं, विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।
विरला भावहिं तच्चं, विरलाणं धारणा होदि ॥२७९॥

अर्थ- संसार में विरले पुरुष तत्व को सुनते हैं सुनकर भी तत्व को यथार्थ विरले ही जानते हैं जानकर भी विरले ही तत्व की भावना (बारम्बार अभ्यास) करते हैं अभ्यास करने पर भी तत्व की धारणा विरलों के हो होती है ।

२७९. ॐ ह्रीं विस्मरणादिज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः।

परपूर्णबोधस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

विरले पुरुष तत्त्व को सुनते विरले करते ज्ञान यथार्थ।
विरले तत्त्व भावना करते विरले पाते हैं तत्त्वार्थ ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व-कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२७९॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

फिर कषाय अन्तमुहूर्त में स्वयं कहीं भग जाएगी ।
केवल ज्ञान चंद्रिका निर्मल अंतर में जग जाएगी ॥

(२८०)

अब कहते हैं कि जो कहे हुए तत्व को सुनकर निश्चल भावो से भाता है वह तत्व को जानता है ।

तच्चं कहिज्जमाणं, णिच्चलभावेण गिण्हदे जो हि ।
तं चिय भावेदि सया, सो वि य तच्चं वियाणेइ ॥२८०॥

अर्थ- जो पुरुष गुरुओं के द्वारा कहे हुए तत्वों के स्वरूप को निश्चलभाव से ग्रहण करता है अन्य भावनाओं को छोड़कर उसी की निरन्तर भावना करता है वह ही पुरुष तत्व को जानता है ।

२८०. ॐ ह्रीं परमान्दैकबोधरूपचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शुद्धबोधैकस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

जो भी गुरु उपदेश कथित तत्त्व स्वरूप ग्रहण करता ।
अन्य भावनाओं को तज कर तत्त्व भावना नह करता है॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२८०॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२८१)

अब कहते हैं कि जो तत्व की भावना नहीं करता है, वह स्त्री आदि के वश में कौन नहीं है ? अर्थात् सब लोक है-

को ण वसो इत्थि-जणे, कस्स ण मयणेण खंडियं माणं ।
को इन्दिएहिं ण जिओ, को ण कसाएहिं संतत्तो॥२८१॥

अर्थ- इस लोक में स्त्रीजन के वश कौन नहीं है? कामसे जिसका मन खंडित न हुआ हो ऐसा कौन है? जो इन्द्रियों से न जीता गया हो ऐसा कौन है? और कषायों से तप्तायमान न हो ऐसा कौन है?

२८१. ॐ ह्रीं कान्ताकनकवशभ्रमणरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शीतलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

फिर ये योग न रहने पाएंगे ज्ञानी के अंतर में ।
निज सिद्धत्व स्वसुख प्रकटेगा चेतन के अभ्यंतर में ॥

छंद ताटंक

स्त्री के वश कौन नहीं है कौन काम के वश में ना ।
सदा इन्द्रियों ने जीला है को कषाय के वश में ना ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२८१॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२८२)

अब कहते हैं कि जो तत्त्व ज्ञानी सब परिग्रह का त्यागी होता है वह स्त्री आदि के वश नहीं होता है

सो ण वसो इत्थिजणे, सो ण जिओ इन्दिएहिं मोहेण।
जो ण य गिण्हदि गंथं, अब्भंतर बाहिरं सव्वं ॥२८२॥

अर्थ- जो पुरुष तत्त्व का स्वरूप जानकर बाह्य और अभ्यन्तर सब परिग्रह को ग्रहण नहीं करता है वह पुरुष स्त्रीजन के वश में नहीं होता है वह ही पुरुष इन्द्रियों से और मोह कर्म से पराजित नहीं होता है ।

२८२. ॐ ह्रीं बाहयभ्यन्तरग्रन्थरहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निर्ग्रन्थोऽहं ।

छंद ताटंक

तत्त्व स्वरूप जान कर सर्व परिग्रह को करता न ग्रहण।
वह न किसी के वश में होता नहीं मोह वश हो धन धन॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२८२॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२८३)

अब लोकानुप्रेक्षा के चिंतवन का माहात्म्य प्रगट करते हैं -

सादि अनंतानंत काल तक शिवसुख सरि लहराएगी ।
त्रिभुवन वंदित की विरुदावलि स्वर्गपुरी भी गाएगी ॥

एवं लोयसहावं, जो झायदि उवसमेक्कसब्भाओ ।
सो खविय कम्मपुंजं, तस्सेव सिहामणी होदि ॥२८३॥

अर्थ- जो पुरुष इस प्रकार लोक के स्वरूप को उपशम से एक स्वभावरूप होता हुआ ध्याता है- चिंतवन करता है वह पुरुष कर्मसमूह का नाश करके उस ही लोक का शिखामणि होता है

२८३. ॐ ह्रीं लोकस्वभावज्ञानविकल्परहितचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

शाम्यस्वरूपोऽहं ।

छंद ताटंक

लोक स्वरूप जानकर जो भी होता उपशम भाव परम ।
निज को ध्याता चिन्तन करता हो जाता है सिद्धों सम ॥
लोकानुप्रेक्षा चिन्तन से निजालोक मिल जाता है ।
सर्व कर्म निर्जरा अवस्था पा शिव पद झिल जाता है ॥२८३॥

ॐ ह्रीं लोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

छंद मानव

लोकानुप्रेक्षा चिन्तन भव से वैराग्य कराता ।
संसार भाव जो उर में उसको तत्काल हराता ॥
भव भाव महा दुख मय हैं इनमें न रंच कुछ सुख है ।
शुभ अशुभ वासना मय है इन सबसें दुख वही दुख है ॥
यदि दुख से बचना चाहो तो निज स्वभाव में आओ ।
अपने स्वरूप को निरखो शाश्वत आनंद उठाओ ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयनुप्रेक्षायां लोकानुप्रेक्षाधिकारे चैतन्यस्वरूपाय महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ज्ञान प्रकाश प्रकट करने का ही प्रयत्न है सर्वोत्तम ।
निज प्रकाश पा प्राणी हो जाता भव दुखक्षय में सक्षम ॥

जयमाला

गीत

बाल बाल मरण मैंने किए हैं अनंत बार ।
बाल मरण पाया नहीं आज तक एक बार ॥
बाल पंडित मरण न किया है कभी भी प्रभो ।
पंडित मरण भी न झेला है कभी भी विभो ॥
कैसे मिलता बताओ पंडित पंडित मरण ।
पायी नहीं आज तक आत्मा की स्वशरण ॥
सम्यक् समाधि मरण पाना है मुझे तो प्रभो ।
भाव मरण द्रव्य मरण नाश करना है विभो ॥
प्रतिक्षण भाव मरणादि का मिला कुचक्र ।
आज तक मिला नहीं कभी शुद्ध धर्म चक्र ॥
ऐसी दशा मेरी हुई पर्याय दष्टि से ।
जुड़ा नहीं आज तक शुद्ध द्रव्य दृष्टि से ॥
तीनों लोक भ्रम भ्रम पाया है अनंत दुख ॥
आत्म लोक पाऊंगा तो मिलेगा अनंत सुख ॥
आपकी शरण मैने पायी बड़े भाग्य से ।
निज छवि देखी आज मैंने तो सौभाग्य से ॥

ॐ ह्रीं श्रीलोकानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

लोक भावना सुखमयी जय कर्त्ता त्रय लोक ।
जाना रहे सर्वज्ञ प्रभु युगपत लोकालोक ॥

इत्याशीर्वाद :

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं श्री लोकानुप्रेक्षाय नमः ।

यहीं धर्म शिव सुखदायक है शेष कर्म है सर्व अधर्म ।
अतः अधर्म मार्ग को तज दे पालन कर अपना सद्धर्म॥

ॐ

पूजन क्रमांक १२

बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा पूजन

(बोधि दुर्लभ भावना)

स्थापना

छंद गीतिका

बोधि दुर्लभ भावना से बोधि होती सहज प्राप्त ।
ज्ञान का भंडार मिलता जीव होता पूर्ण आप्त ।
बिना बोधि न कहीं सुख है बोधि बिन है दुख अपार ।
शुद्ध ज्ञान समुद्र भीतर जीव उसको ही निहार ॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद आंचली बद्ध

ज्ञान स्वरूप निजात्म महान, अष्ट कर्म करता अवसान।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दुर्लभ निज की बोधि महान देती शुद्ध स्वपद निर्वाण ।
जय जिनदेव महा प्रभु हो जय जिन देव महा विभु हो॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

आत्म भ्रान्ति सम रोग नहीं है वैद्य न सदगुरु सम है कोय।
गुरुआज्ञा सम पथ्य नहीं है ध्यानौषधि बिन स्वस्थ न कोय॥

ज्ञान स्वरूपी चंदन लाय, भव ज्वर नाशक शिव सुखदाय॥परम.॥
दुर्लभ निज की बोधि महान, देती शुद्ध स्वपद निर्वाण।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि.।

ज्ञान स्वरूप अक्षती जान करो आत्मा का कल्याण॥परम.॥
दुर्लभ निज की बोधि महान देती शुद्ध स्वपद निर्वाण।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि.।

ज्ञान स्वरूपी पुष्प प्रधान, कामबाण करते अवसान॥परम.॥
दुर्लभ निज की बोधि महान देती शुद्ध स्वपद निर्वाण।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय काम बाण विनाशनाय पुष्प नि.।

ज्ञान स्वरूपी निज वैभव, परम भाव रस वेद्य अभव॥परम.॥
दुर्लभ निज की बोधि महान देती शुद्ध स्वपद निर्वाण।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि.।

ज्ञान स्वरूपी आत्म प्रदीप, मोह तिमिर हर आत्म समीप॥परम.॥
दुर्लभ निज की बोधि महान देती शुद्ध स्वपद निर्वाण।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि.।

आत्मा ही सम्यक् दर्शन है ज्ञान चरित्र यही आत्मा ।
संयम शील तथा तप आत्मा प्रत्याख्यान यही आत्मा ॥

ज्ञान स्वरूपी निज गुण धूप, कर्म क्षयंकर आत्म अनूप॥परम.॥
दुर्लभ निज की बोधि महान, देती शुद्ध स्वपद निर्वाण ।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो ॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

ज्ञान स्वरूपी फल के वृक्ष, महामोक्ष दाता प्रत्यक्ष ॥परम.॥
दुर्लभ निज की बोधि महान, देती शुद्ध स्वपद निर्वाण ।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो ॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

ज्ञान स्वरूपी अर्घ्य प्रधान पद अनर्घ्य करते है दान॥परम.॥
दुर्लभ निज बोधि महान देती शुद्ध स्वपद निर्वाण ।
जय जिनदेव महा प्रभु है जय जिनदेव परम प्रभु हो ॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अनंर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

(२८४)

अब बोध दुर्लभानुप्रेक्षा का निरुपण करते है

जीवो अणंतकालं, वसइ णिगोएसु आइपरिहीणो ।
तत्तो णीस्सरिऊणं, पुढविकायादिओ होदि ॥२८४॥

अर्थ- यह जीव अनादिकाल से लेकर संसार में अनन्तकाल तक तो निगोद में रहता है वहां से निकलकर पृथ्वीकायादिक पर्याय को धारण करता है ।

२८४. ॐ ह्रीं निगोदवासरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

शाश्वतचिद्बोधामृतस्वरूपोऽहं ।

समिति गुप्ति बिन महाव्रतों की महिमा रहती सदा अपूर्ण।
छठा सातवां अगर न झूला हो तो फिर है दुख आपूर्ण॥

ताटंक

जीव अनादि से अनंत कालतक नित्य निगोद मध्य रहता।
निकल वहाँ से पृथ्वी कायिक आदिक भव धारण करता॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२८४॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(२८५)

अब कहते हैं कि इससे निकलकर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है-

तत्थ वि असंखकालं, बायरसुहमेसु कुणइ परियत्तं ।
चिंतामणि व्व दुलहं, तसत्तणं लहदि कट्ठेण ॥२८५॥

अर्थ- वहाँ पृथ्वीकाय आदि में सूक्षम तथा बादरों में असंख्यात् काल तक भ्रमण करता है, वहाँ से निकलकर त्रय पर्याय पाना चिन्तामणि रत्न के समान बड़े कष्ट से दुर्लभ है ।

२८५. ॐ ह्रीं बादरसूक्ष्मपर्यायपरिभ्रमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यचिन्तामणिस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पृथ्वी कायिक आदि सूक्ष्म बादर में काल असंख्य रहता।
दुर्लभता से चिन्तामणि सम त्रस पर्याय प्राप्त करता ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२८५॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(२८६)

अब कहते हैं कि त्रसों में भी पंचेन्द्रियपना दुर्लभ है-

वियलिंदिएसु जायदि, तत्थ वि अच्छेदि पुव्वकोडीओ ।
तत्तो णीसरिदूणं, कहमवि पंचिंदिओ होदि ॥२८६॥

श्रेणी अगर न चढ़ पाएं तो अप्रमत्त तो हों मुनिराज ।
सर्वदेश संयमी साधु ही पा लेते हैं निज पद राज ॥

अर्थ- स्थावर से निकल कर त्रस होय तब बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय शरीर पाता है वहां भी कोटिपूर्व समय तक रहता है वहां से भी निकल कर पंचेन्द्रिय शरीर पाना बड़े कष्ट से दुर्लभ है ।

२८६. ॐ ह्रीं विकलत्रयपर्यायभ्रमणरहितबेधामृतस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यरत्नस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

थावर से आ त्रस हो द्वय त्रय चऊ इन्द्रिय शरीर पाता।
कोटि पूर्व तक इनमें रहता पंचेन्द्रिय तन ना पाता ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२८६॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२८७)

फिर वही कहते हैं-

सो वि मणेण विहीणो, ण य अप्पाणं परं पि जाणेदि ।
अह मणसहिदो होदि हु, तह वि तिरिक्खो हवे रुद्दो ॥२८७॥

अर्थ- विकलत्रय से निकलकर पंचेन्द्रिय भी होवे तो असैनी (मन रहित) होता है आप और परका भेद नहीं जानता है यदि मनसहित (सैनी) भी हो तो तिर्यंच होता है रौद्र क्रूर परिणामी बिलाव, घूघू (उल्लू) सर्प, सिंह, मच्छ आदि होता है ।

२८७. ॐ ह्रीं संज्ञ्यसंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यायभ्रमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानरत्नस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

विकलत्रय से निकल हुआ पंचेन्द्रिय सहित असैनी जीव।
मन के बिना असैनी पंचेन्द्रिय त्रियंच होता है जीव ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२८७॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

जिनमुनि पद बिन कभी न होते क्षय सम्पूर्णतया वसु कर्म।
जिनआगम अनुसार सदा ही पालन करना निज मुनि धर्म॥

(२८८)

अब कहते हैं कि ऐसे क्रूर परिणामी जीव नरक में जाते हैं-

सो तिव्वअसुहलेसो, णरये णिवडेइ दुक्खदे भीमे ।
तत्थ विदुक्खं भुञदि, सारीरं माणसं पउरं ॥२८८॥

अर्थ- वह क्रूर तिर्यंच तीव्र अशुभ परिणाम और अशुभ लेश्या सहित मरकर दुःखदायक भयानक नरक में गिरता है वहां शरीर संबंधी तथा मन संबंधी प्रचुर दुःख भोगता है।

२८८. ॐ ह्रीं अशुभलेश्यायुक्तनरकपर्यायभ्रमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।
बोधकल्पद्रुमस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

क्रूर त्रियंच अशुभ परिणाम अशुभ लेश्या युत मरण सदा।
नरकों में गिर बहु दुख पाए तन मन वाले दुक्ख सदा ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२८८॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(२८९)

अब कहते हैं कि उस नरक से निकल तिर्यंच होकर दुःख सहता है

तत्तो णीसरिदूणं, पुणरवि तिरिएसु जायदे पावो ।
तत्थ वि दुक्खमणंतं, विसहदि जीवो अणेयविहं ॥२८९॥

अर्थ- उस नरक से निकलकर फिर भी तिर्यंचगति में उत्पन्न होता है वहां भी पापरूप जैसे हो वैसे यह जीव अनेक प्रकार का अनन्त दुःख विशेष रूप से सहता है ।

२८९. ॐ ह्रीं मृगपशुपक्षिजलचरादिपर्यायभ्रमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।
ज्ञानकलास्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

निकल नरक से त्रियंच गति में उपजा पाए दुक्ख अनंत।
पाप भाव जैसे हो वैसे बहु प्रकार के दुक्ख अनंत ॥

जो भी निज अरु पर को जाने बिना भ्रान्ति दे पर को त्याग।
जिनवर कहते उसको ही सन्यास जाण जान तू त्याग ॥

उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२८९॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२९०)

अब कहते हैं कि मनुष्यपना पाना दुर्लभ है सो भी मिथ्यात्वी होकर पाप उत्पन्न करता है-

रयणं चउप्पहे पिव, मणुअत्तं सुट्ठु दुल्लहं लहिय ।
मिच्छो हवेइ जीवो, तत्थ वि पावं समज्जेदि ॥२९०॥

अर्थ- जैसे चौराहे में पड़ा हुआ रत्न बड़े भाग्य से हाथ लगता है वैसे ही तिर्यंच से निकलकर मनुष्यगति पाना अत्यन्त दुर्लभ है ऐसा दुर्लभ मनष्य शरीर पाकर भी मिथ्यादृष्टि हो पाप ही करता है ।

२९०. ॐ ह्रीं आर्यानार्यमनुष्यपर्यायभ्रमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।
चित्कलास्वरूपोऽहं ।

ताटंक

निकल त्रिर्यंच कुगति से चलकर नर गति पाना अति दुर्लभ।
दुर्लभ नरतन भी पाया तो मिथ्यादृष्टि रही सुसुलभ ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९०॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२९१)

अब कहते हैं कि मनुष्य भी हो और आर्यखण्ड में भी उत्पन्न हो तो भी उत्तम कुल आद का पाना अत्यन्त दुर्लभ हैं-

अह लहदि अज्जवंतं, तह ण वि पावेइ उत्तमं गोत्तं ।
उत्तम कुले वि पत्ते, धणहीणो जायदे जीवो ॥२९१॥

अर्थ- मनुष्य पर्याय पाकर यदि आर्यखण्ड में भी जन्म पावे तो उत्तम गोत्र (ऊंच कुल)

चेतन ने निज अंगड़ाई ले भ्रम की अंधियारी खोई ।
मिथ्यातम की सकल कलुषता पलभर में पूरी धोई ॥

नहीं पाता है यदि ऊंच कुल भी प्राप्त हो जाय तो यह जीव धनहीन दरिद्री हो जाता है उससे कुछ सुकृत नहीं बनता है, पाप ही में लीन रहता है ।

२९१. ॐ ह्रीं उत्तमकुलभ्रमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

निजज्ञानगोत्रस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

आर्य खंड में नर पर्याय मिली तो उत्तम गोत्र नहीं ।
उत्तम कुल हो तो धन हीन दरिद्री कोई सुक्ख नहीं॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९१॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(२९२)

फिर वही कहते हैं-

अह धन सहिओ होदि हु, इंदियपरिपुण्णदा तदो दुलहा ।
अह इंदि य संपुण्णो, तह वि सरोओ हवे देहो ॥२९२॥

अर्थ- यदि धन सहित भी होवे तो इन्द्रियों की परिपूर्णता पाना अत्यन्त दुर्लभ है यदि इन्द्रियों की सम्पूर्णता भी पावे तो देह रोगसहित पाता है, निरोग होना दुर्लभ है ।

२९२. ॐ ह्रीं ज्वरभगन्धरादिरोगपर्यायभ्रमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

निरामयचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

धन पाया तो इन्द्रिय की पूर्णता प्राप्त होना दुर्लभ ।
इन्द्रिय भी हों पूर्ण किन्तु फिर है निरोग होना दुर्लभ ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९२॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

स्वपर भेद विज्ञान पूर्वक दृष्टित हुआ ज्ञान दर्शन ।
सम्यक् दर्शन आया लखकर चेतन का निर्णय पावन ॥

(२९३)

फिर वही कहते हैं-

अह णीरोओ होदि हु, तह वि ण पावेइ जीवियं सुइरं ।
अह चिरकालं जीवदि, तो सीलं णेव पावेइ ॥२९३॥

अर्थ- यदि निरोग भी हो जाय तो दीर्घ जीवन (आयु) नहीं पाता है, इसका पाना दुर्लभ है यदि चिरकाल तक जीता है तो शील (उत्तम प्रकृति-भद्र परिणाम) नहीं पाता है क्योंकि उत्तम स्वभाव पाना दुर्लभ है ।

२९३. ॐ ह्रीं व्रतशीलप्रतिपालनविकल्परहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

निष्कुलचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

तन निरोग हो तो फिर दीर्घ आयु पाना है अति दुर्लभ ।
दीर्घ आयु हो तो फिर शील स्वभाव प्राप्त होना दुर्लभ ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९३॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२९४)

फिर वही कहते हैं-

अह होदि सीलजुत्तो, तह वि ण पावेइ साहुसंसग्गं ।
अह तं पि कह वि पावदि सम्मत्तं ह वि अइदुलहं ॥२९४॥

अर्थ- यदि शील (उत्तम) स्वभाव सहित भी हो जाता है तो साधु पुरुषों का संसर्ग (संगति) नहीं पाता है यदि वह भी पा जाता है तो सम्यक्त्व पाना (श्रद्धान होना) अत्यन्त दुर्लभ है ।

२९४. ॐ ह्रीं साधुसंसर्गविकल्परहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

अचलबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जागी है चारित्र शक्ति निज पायी अनुभव अरुणायी ।
चेतन के स्वभाव में आयी देखो निर्मल तरुणायी ॥

शील स्वभाव मिला तो साधु पुरुष संसर्ग नहीं पाता ।
पाता है तो अति दुर्लभ सम्यक्त्व मनुष्य नहीं पाता ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९४॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(२९५)

फिर वही कहते हैं-

सम्मत्ते वि य लद्धे, चारित्तं णेव गिण्हदे जीवो ।
अह कह वि तं पि गिण्हदि, तो पालेदुं ण सक्केदि ॥२९५॥

अर्थ- यदि सम्यक्त्व भी प्राप्त हो जाय तो यह जीव चारित्र ग्रहण नहीं करता है यदि चारित्र भी ग्रहण करले तो उसको पाल नहीं सकता है ।

२९५. ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहारात्मकचारित्रपालनविकल्परहितबोधामृत स्वरूपाय नमः ।

निश्चलबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

यदि सम्यक्त्व प्राप्त हो जाए तो चारित्र नहीं पाता ।
यदि चारित्र मिले तो उसको पूरा पाल नहीं पाता ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९५॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(२९६)

फिर वही कहते हैं-

रयणत्तये वि लद्धे, तिव्वकसायं करेदि जइ जीवो ।
तो दुग्गईसु, गच्छदि, पणट्ठरयणत्तओ होऊ ॥२९६॥

अर्थ- यदि यह जीव रत्नत्रय भी पाता है और तीव्रकषाय करता है तो रत्नत्रय का नाश

संसारिक वासनामयी संध्या भी अब तो बीत गई ।
संयम का गलियारा पाकर शुद्ध आत्मा जीत गई ॥

करके दुर्गतियों में जाता है ।

२९६. ॐ ह्रीं तीव्रकषायरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

निर्गोत्रज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

यदि रत्नत्रय पाले तो भी तीव्र कषाय किया करता ।
दुर्गतियों में ही जाता है नाश रत्नत्रय का करता ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं ॥२९६॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(२९७)

अब कहते हैं कि ऐसा मनुष्यपना दुर्लभ है जिससे रत्नत्रय की प्राप्ति हो -

रयणु व्व जलहि-पडियं मणुयत्तं तं पि होदि अइदुलहं ।
एवं सुणिच्छइत्ता, मिच्छकसाये य वज्जेह ॥२९७॥

अर्थ- समुद्र में गिरे हुए रत्न की प्राप्ति के समान मनुष्यत्व की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है ऐसा निश्चय करके हे भव्यजीवो ! मिथ्यात्व और कषायों को छोड़ो ऐसा श्री गुरुओं का उपदेश है ।

२९७. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वकषायरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानजलनिधिस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

रत्न समुद्र मध्य गिरने पर जैसे मिलना दुर्लभ है ।
उसी भांति से मनुष्यत्व की प्राप्ति सदा ही दुर्लभ है ॥
ऐसा निश्चय करके जीवो तुम मिथ्यात्व भाव छोडो ।
गुरुओं का उपदेश यही है सर्व कषाय भाव तोड़ो ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं ॥२९७॥

रत्नत्रय सेयमुक्त आत्मा पावन परम तीर्थ मानो ।
नहीं मोक्ष का कारण कोई मंत्र तंत्र है पहचानो ॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२९८)

अब कहते हैं कि यदि ऐसा मनुष्यत्व पाकर शुभपरिणामों से देवत्व पावे तो वहां चारित्र नहीं पाता है-

अहवा देवो होदि हु, तत्थ वि पावेदि कह व सम्मत्तं ।
तो तवचरणं ण लहदि, देसजमं सील लेसं पि ॥२९८॥

अर्थ- अथवा मनुष्यत्व में कदाचित् शुभपरिणाम होने से देव भी हो जाय और वहां कदाचित् सम्यक्त्व भी पा लेवे तो वहां तपश्चरण चारित्र नहीं पाता है देशव्रत (श्रावकव्रत) शीलव्रत (ब्रह्मचर्य अथा सप्तशील) का लेश भी नहीं पाता है ।

२९८. ॐ ह्रीं तपशीलविकल्परहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यामरद्रुमस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मनुज दशा में शुभ परिणामों के फल से सुर पद पाता।
समकित भी पाले पर वहाँ कभी चारित्र नहीं पाता ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९८॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(२९९)

अब कहते है कि इस मनुष्य गति में ही तपश्चरणादिक हैं ऐसा नियम है-

मणुवगईए वि तओ, मणुवगईए महव्वदं सयलं ।
मणुवगईए झाणं, मणउवगईए वि णिव्वाणं ॥२९९॥

अर्थ- हे भव्यजीवो ! इस मनुष्यगति में ही तपका आचरण होता है इस मनुष्यगति में ही समस्त महाव्रत होते हैं इस मनुष्यगति में ही धर्मशुक्लध्यान होते है और इस मनुष्य गति में ही निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ।

२९९. ॐ ह्रीं उत्तमक्षत्रियादिवंशरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यवंशस्वरूपोऽहं ।

जब तक है पर्याय दृष्टि तब तक ही है यह बहिरात्मा।
द्रव्य दृष्टि बनते ही यह हो जाता है अंतर आत्मा ॥

ताटंक

नर गति में ही आत्म ध्यान से तपाचरण हो सकता है ।
नर भव में ही पंच महाव्रत धर्म ध्यान हो सकता है ॥
नर भव में ही शुक्ल ध्यान भी हो सकता है महामहान।
इसी ध्यान के बल से मिलता नर गति से ही पद निर्वाण॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥२९९॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३००)

फिर वही कहते हैं-

इय दुलहं मणुयत्तं, लहिऊणं जे रमन्ति विसएसु ।
ते लहिय दिव्वरयणं, भूइणिमित्तं पजालंति ॥३००॥

अर्थ- मनुष्यत्व पाकर भी जो इन्द्रियों के विषयों में रमण करते हैं वे दिव्य (अमूल्य) रत्न को पाकर, भस्म के लिए दग्ध करते हैं-जलाते हैं ।

३००. ॐ ह्रीं विषयरमणरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानरत्नस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो दुर्लभ न रतन पाकर भी इन्द्रिय विषय रमण करते।
दिव्य रत्न को पाकर केवल भस्म जु हेतु दग्ध करते ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥३००॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३०१)

अब कहते हैं कि इस मनुष्य पर्याय में रत्नत्रय को पाकर बड़ा आदर करो—

अंतरात्मा घातिकर्म क्षयकर हो जाता परमात्मा ।
फिर अघातिया भी क्षय करके हो जाता है सिद्धात्मा ॥

इय सव्वदुलहदुलहं, दंसण णाणं तहा चरित्तं च ।
मुणिउण य संसारे, महायरं कुणह तिण्हं पि ॥३०१॥

अर्थ- इस प्रकार संसार में दर्शन ज्ञान और चारित्र को सब दुर्लभ से भी दुर्लभ (अत्यन्त दुर्लभ) जानकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों में हे भव्यजीवो ! बडा आदर करो ।

३०१. ॐ ह्रीं सर्वसावद्यरहितबोधामृतस्वरूपाय नमः ।

निरवद्यज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

इस संसार मध्य रत्नत्रय दुर्लभ से भी दुर्लभ है ।
यही जानकर दर्शन ज्ञान चरित्र धरो जो सुसुलभ है ॥
उत्तम अनुप्रेक्षा अति पावन नाथ बोधि दुर्लभ पाऊं ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय प्रगटाऊं॥३०१॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय महाअर्घ्य नि. ।

महाअर्घ्य

गीतिका

बोधि दुर्लभ भावना का सदा आदर कीजिये ।
विनय पूर्वक आत्म बोधि महान उर में लीजिये ॥
बोधि के बिन मूढ़ हो बनकर अचेतन भ्रम रहा ।
अनात्मा का संग करके अनात्मा में जम रहा ॥
बोधि जो भी प्राप्त करता वही होता सिद्ध है ।
बोधि जो पाता नहीं है वही भव से बिद्ध है ॥

ॐ ह्रीं स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षायां बोधिदुर्लभानुप्रेक्षाधिकारे बोधामृतस्वरूपाय महाअर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

गीत

पाया है बोधि लाभ अब पावन अपूर्व आज ।
निर्मल स्वरूप जान करो सिद्ध सर्व काज ॥

नित्य निरंजन गुण अनंतपति शुद्ध बुद्ध शिव परमात्मा।
दोष अठारह रहित कर्म से विरहित है यह शुद्धात्मा ॥

हो आत्म साधना निजात्मा का पूर्ण ध्यान ।
भवदधि को तारने में यही ध्यान है प्रधान ॥
शुद्धात्मा में कोई भी विकल्प नहीं है ।
वाणी नहीं है मन नहीं है जल्प नहीं है ॥
व्यवहार कल्पना को छोड़ मात्र निज को जान ।
संकेत मात्र है ये तेरा सर्व शास्त्र ज्ञान ॥
परमात्मा तुम्हीं हो तुम्ही सिद्ध आत्मा ।
कैवल्य ज्ञान अधिपति है शुद्ध आत्मा ॥
परमात्मा नहीं है कोई दूसरा कहीं ।
ज्ञायक हो एक मात्र तुम्हीं और कुछ नहीं ॥
सीमित करो संसार को अभाव के लिए ।
निज का ही ध्यान करो मोह क्षीण के लिए ॥
है घाति के उदय में भी ज्ञानी को दुख नहीं ।
अघाति के उदय में भी ज्ञानी को सुख नहीं ॥
ज्ञानी तो मात्र ज्ञायक स्वरूप का स्वामी ।
अपने स्वभाव में ही तल्लीन है नामी ॥
सिद्धत्व शक्ति से भरा अनंत गुणमयी ।
अपने ही बल से कर रहा भवंत दुखमयी ॥

ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद :

दोहा

बोधि लाभ जिनको हुआ वही हुए सर्वज्ञ ।
जो सर्वज्ञ महान है वे ही है आत्म ॥

इत्याशीर्वादः

जाप्य मंत्र- ॐ ह्रीं बोधि दुर्लभानुप्रेक्षाय नमः

चिदानंद चैतन्य ज्ञानघन परम पूज्य है परमात्मा ।
सर्वश्रेष्ठ आनंदघन स्वयं शुद्ध त्रिकाली ज्ञानात्मा ॥

पूजन क्रमाक १३

द्वादशम अधिकार धर्म्मानुप्रेक्षा पूजन

(धर्म भावना)

स्थापना

छंद ताटंक

शुद्ध धर्म अनुप्रेक्षा भाऊं धर्म मार्ग पर चरण धरूँ ।
धर्म भावना जगा हृदय में शुद्ध भाव को ग्रहण करूँ ॥
बिना धर्म के धिक् धिक् जीवन धिक् धिक् नर पर्याय प्रसिद्ध।
धन्य धन्य इस मानव तन से चेतन तप कर होता सिद्ध॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक

छंद चौपई

ज्ञान नीर उर में प्रगटाऊं , मलिन भाव पूरे विघटाऊं।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

शुद्ध भाव चंदन उर लाऊं, भव आतप ज्वर पर जय पाऊं।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

शुद्ध भाव अक्षत मन भावन अक्षय पद पाऊँ प्रभु पावन।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ऐसे परमात्मा का पूजन वंदन है कल्याण मयी ।
त्रिविध व्याधि हरने में सक्षम हो जाऊं मैं ज्ञानमयी ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि.।

शुद्ध भाव के पुष्प निजंतर, काम बाण क्षय में है तत्पर।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि.।

शुद्ध भाव नैवेद्य चढ़ाऊं, क्षुधा व्याधि सम्पूर्ण मिटाऊं ।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि.।

शुद्ध भाव के दीप उजारूं, महा मोक्ष मिथ्यात्व निवारूं ।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय मोहनांधकार विनाशनाय दीपं नि. ।

शुद्ध भाव की धूप सुगंधित, कर्म नष्ट होते दुर्गंधित ।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि.।

शुद्ध भाव फल परम सुखमयी, महामोक्ष फल ज्ञान रस मयी।
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

शुद्ध भाव के अर्घ्य ध्यानमय, पद अनर्घ्य है पूर्ण ज्ञानमय॥
मैं अधर्म सेदूर रहूं प्रभु, धर्म भावना चूर रहूं प्रभु ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(३०२)

अब धर्मानुप्रेक्षा का निरूपण करते हैं। पहिले धर्म के मूल सर्वज्ञ देव हैं उनको प्रगट करते हैं-

जो जाणदि पच्चक्खं, तियालगुणपज्जएहि संजुत्तं ।
लोयालोयं सयलं, सो सव्वण्हू हवे देओ ॥३०२॥

अजर अमर अविकल अविनाशी परम पूज्य शिव परमात्मा ।
पद अरहंत प्रगट करके प्रभु आप हुए हैं परमात्मा ॥

अर्थ- जो समस्त लोक और अलोक को तीनकालगोचर समस्त गुण पर्यायों से संयुक्त प्रत्यक्ष जानता है वह सर्वज्ञ देव है ।

३०२. ॐ ह्रीं परमानन्ददिव्यचैतन्यरूपनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

सहजबोधरत्नस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

त्रिकाल वर्त्ती द्रव्य और गुण पर्यायें जानें प्रत्यक्ष ।
वे सर्वज्ञ देव हैं युगपत लोकालोक ज्ञान में दक्ष ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३०३)

अब जो सर्वज्ञ को नहीं मानते हैं उनके प्रति कहते हैं-

जदि ण हवदि सव्वण्हू, ता को जाणदि अदिदियं अत्थं ।
इन्दियणाणं ण मुणदि, थूलं पि असेस पज्जायं ॥३०३॥

अर्थ-हे सर्वज्ञ के अभाववादियों ! यदि सर्वज्ञ नहीं हो तो अतीन्द्रिय पदार्थ (जो इन्द्रिय गोचर नहीं है) को कौन जानता ? इन्द्रियज्ञान तो स्थूल पदार्थ (इन्द्रियों से सम्बन्धरूप वर्तमान) को जानता है उसको समस्त पर्यायों को भी नहीं जानता ।

३०३. ॐ ह्रीं इन्द्रियज्ञानविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

भरितावस्थज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

कौन अतीन्द्रिय पदार्थ जानता होते नहीं अगर सर्वज्ञ ।
इन्द्रिय ज्ञान थूल जानता सब पर्यायें होती अज्ञ ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

अनुभव चिन्तामणि सम जानो अनुभव ही सुख सागर ज्ञान ।
अनुभव मोक्षमार्ग है मानो अनुभव मोक्ष स्वरूप पिछान॥

(३०४)

फिर वही कहते हैं-

तेणुवइट्ठो धम्मो, संगासत्ताण तह असंगाणं ।
पढमो बारहभेओ, दसभेओ, दसभेओ भासिओ बिदिओ ॥३०४॥

अर्थ- उस सर्वज्ञ के द्वारा उपदेश किया हुआ धर्म दो प्रकार का है १. संगासक्त (गृहस्थ) का और २ असंग (मुनि) का पहिला गृहस्थ का धर्म तो बारह भेदरूप है दूसर मुनिका धर्म दस भेदरूप है ।

३०४. ॐ ह्रीं संगासक्तासंगविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निःसंगस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सर्वज्ञों द्वारा उपदेशित दो प्रकार का धर्म प्रधान ।
इक श्रावक का बारह भेद सुमुनि का धर्म भेद दस जानो॥
संगासक्त सुश्रावक होते पालन करते द्वादश धर्म ।
अरु असंग मुनिवर कहलाते पालन करते हैं दश धर्म ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३०५)

अब गृहस्थ धर्म के बारह भेदों के नाम दो गाथाओं में कहते हैं

सम्मदंसणसुद्धो, रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं ।
वयधारी सामइउ, पव्ववई पासुयाहारी ॥३०५॥

अर्थ- १. शुद्ध सम्यग्दृष्टि, २. मद्य आदि स्थूल दोषों से रहित दर्शन प्रतिमा का धारी , ३. व्रतधारी (पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रत सहित) ४. सामयिक व्रती, ५. पर्वव्रती, ६. प्रासुकाहारी ।

३०५. ॐ ह्रीं मद्यादिदोषरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्दोषज्ञानस्वरूपोऽहं ।

आत्मा की श्रद्धा दर्शन है उसे जानना सम्यक् ज्ञान ।
सतत् भावना उस की भाना ही तो है चारित्र महान ॥

ताटंक

सम्यक् दृष्टी दर्शन प्रतिमाधारी व्रत प्रतिमा धारी ।
सामायिक व्रति पर्व व्रती अरु होता प्रासुक आहारी ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३०६)

फिर वही कहते हैं-

राईभोयणविरओ, मेहुणसारंभसंगचत्तो य ।
कज्जाणुमोयविरदो, उद्दिट्ठाहारविरदो य ॥३०६॥

अर्थ- १. शुद्ध सम्यक् दृष्टी, २. मद्य आदि स्थूल दोषों से रहित दर्शन प्रतिमा का धारी ३. व्रतधारी (पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रत सहित) ४. सामायिक व्रती, ५. पर्वव्रती, ६. प्रासुक आहारी, ७. रात्रिभोजनत्यागी, ८. मैथुनत्यागी, ९. आरम्भत्यागी, १०. परिग्रहत्यागी, ११. कार्यानुमोदविरत, और १२. उद्दिष्टाहारविरत इस प्रकार श्रावक धर्म के १२ भेद हैं ।

३०६. ॐ ह्रीं मैथुनादिदोषरहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

ब्रह्मचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

निशि भोजन त्यागी मैथुन त्यागी अरु है आरंभ त्यागी ।
परिग्रह त्यागी अनुमति त्यागी उद्दिष्टा अहार त्यागी ॥
इस प्रकार द्वादश भेदों से युक्त श्रेष्ठ है श्रावक धर्म ।
है पच्चीस दोष से विरहित सम्यक् दर्शन प्रथम स्वधर्म॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

आत्म ज्ञान की क्रीड़ाएँ हैं एकमात्र शिवसुख दाता ।
भव पीड़ाएँ क्षय हो जातीं दुख का अंत स्वतः आता ॥

(३०७)

अब इन बारह के स्वरूप आदि का व्याख्यान करेंगे । पहिले अविरत सम्यग्दृष्टि को कहेंगे । उसमें भी पहिले सम्यक्त्व की उत्पत्ति की योग्यता का निरूपण करते हैं -

चउगदिभव्वो सण्णी, सुविसुद्धो जग्गमाणपज्जत्तो ।
संसारतडे नियडो, णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥३०७॥

अर्थ- पहिले तो भव्यजीव होवे क्योंकि अभव्य के सम्यक्त्व नहीं होता है, चारों ही गतियों में सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, परन्तु मन सहित (सैनी) के ही उत्पन्न हो सकता है, असैनी के उत्पन्न नहीं होता है उसमें भी विशुद्ध परिणामी हो, शुभ लेश्या सहित हो, अशुभ लेश्यामें भी शुभ लेश्या के समान कषायों के स्थान होते हैं उनको उपचार से विशुद्ध कहते हैं, संक्लेश परिणामों में सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है जगते हुए के होता है, सोये हुए के नहीं होता है, पर्याप्त (पूर्ण) के होता है, अपर्याप्त अवस्था में नहीं होता है संसार का तट जिसके निकट आ गया हो (जो निकट भव्य हो) जिसका अर्द्धपुद्गल परावर्त्तन काल से अधिक संसार भ्रमण शेष हो उसको सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है ज्ञानी हो अर्थात् साकार उपयोगवान हो, निराकार दर्शनोपयोग में सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है ऐसे जीव के सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है ।

३०७. ॐ ह्रीं चतुर्गतिभ्रमणरहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

शिवरत्नस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भव्य जीव ही चारों गति में समकित कर सकता उत्पन्न।
हों विशुद्ध परिणाम जाग्रत हो पर्याप्त सुमति सम्पन्न ॥
निकट भव्य हो अरु ज्ञानी हो तो होती समकित उत्पत्ति।
सम्यक् दर्शन पाकर प्राणी क्षय करता संसार विपत्ति ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

आतुर पुण्य चरण धोने को किन्तु नहीं रुकता ज्ञानी ।
पुण्य भाव को सदा हेय समझा है चेतन विज्ञानी ॥

(३०८)

अब सम्यक्त्व तीन प्रकार का है, उनमें उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति कैसे है सो कहते हैं-

सत्तण्हं पयडीणं, उवसमदो होदि उवसमं सम्मं ।
खयदो य होद खइयं, केवलिमुले मणूसस्स ॥३०८॥

अर्थ-मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के उपशम होने से उपशम सम्यक्त्व होता है और इन सातों मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के क्षय होने से क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है यह क्षायिक सम्यक्त्व केवलज्ञानी तथा श्रुतकेवली के निकट कर्मभूमि के मनुष्य के ही उत्पन्न होता है ।

३०८. ॐ ह्रीं सप्तप्रकृत्युपशमविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

निर्विकारचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

सम्यक् मिथ्यात्व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व भाव जब हो उपशम।
अनंतानुबंधी की चारों सात मोहनीय हों उपशम ॥
क्षायिक समकित मोह नाश से कर सकता प्राणी उत्पन्न।
कर्म भूमि नर निकट केवली श्रुत केवलि करता उत्पन्न॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३०९)

अब क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कैसे होता है सो कहते हैं-

अणउदयादो छण्हं, सजाइरूवेण उदयमाणाणं ।
सम्मत्तकम्मउदए, खयउवसमियं हवे सम्मं ॥३०९॥

अर्थ- पूर्वोक्त सात प्रकृतियों में से छह प्रकृतियों का उदय न हो सजाति (समान जातीय)

पापों का तो अणु अणु आज अदृश्य हुआ है हो भयभीत।
शुद्ध भाव से सहज हो गया अपना चेतन पुण्यातीत ॥

प्रकृति से उदय रूप हो सम्यक् कर्म प्रकृति का उदय होने पर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है ।

३०९. ॐ ह्रीं सम्यक्त्व प्रकृत्युदयविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

अविकारज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

सातों में छहका न उदय हो प्रकृति सजाति उदय रूप हो।
सम्यक् कर्म प्रकृति उदय हो तो क्षयोपशम समकित हो॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३०९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३१०)

अब औपशमिक-क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तथा अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन और देशव्रत इनका पाना और छूट जाना उत्कृष्टता से कहते हैं -

गिण्हदि मुञ्चदि जीवो, वे सम्मत्ते असंखवाराओ ।
पढमकसायविणासं, देववय कुणदि उक्किट्ठं ॥३१०॥

अर्थ- यह जीव औपशमिक क्षायोपशमिक ये दो तो सम्यक्त्व अनन्तानुबन्धी का विनाश अर्थात् विसंयोजनरूप, अप्रत्याख्यानदिकरूप परिणमाना और देशव्रत इन चारों को असंख्यातबार ग्रहण करता है और छोड़ता है यह उत्कृष्टता से कहा है ।

३१०. ॐ ह्रीं ग्रहणमुञ्चनविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

नित्यस्वधर्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जीव औपशमिक क्षयोपशमिक दो को तजता है बहुवार।
तथा देश व्रत भी तज देता करता ग्रहण असंख्यों बार॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१०॥

पुण्य भाव के क्षणिक सरोवर में करता है नहीं नव्हन ।
निज अनुभव रस पीते पीते पा लेता है मुक्ति सदन ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३११)

अब, सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ सम्यक्त्व किस प्रकार जाना जाता है ऐसे तत्वार्थ श्रद्धान को नौ गाथाओं में कहते हैं-

जो तच्चमणेयंतं, णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं ।
लोयाण पण्हवसदो, ववहारपवत्तणट्ठं च ॥३११॥

अर्थ- जो पुरुष सात भंगों से अनेकान्ततत्वों का नियम से श्रद्धान करता है क्योंकि लोगों के प्रश्न के वश से विधि निषेध वचन के सात ही भंग होते हैं इसलिए व्यवहार की प्रवृत्ति के लिए भी सात भंगो के वचन की प्रवृत्ति होती है।

३११. ॐ ह्रीं सप्तभंगीविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नम. ।

निजत्त्वस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सात भंग से अनेकान्त तत्त्वों का जो करता श्रद्धान ।
जीवादिक नौ पदार्थ जानता जाना सब श्रुत ज्ञान प्रमाण॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३११॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३१२)

फिर वही कहते हैं

जो आयरेण मण्णदि , जीवाजीवादि णवविहं अत्थं ।
सुदणाणेण णएहि य, सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो ॥३१२॥

अर्थ- जो जीव अजीव आदि नौ प्रकार के पदार्थों को श्रुतज्ञान प्रमाण से तथा उसके भेदरूप नयों से अपने आदर-यत्न-उद्यम से मानता है- श्रद्धान करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि होता है ।

आत्म स्वभाव अकर्त्ता और अभोक्ता है यह तुम जानो ।
पर का कर्त्ता भोक्ता इसको कभी भूलकर मत मानो ॥

३१२. ॐ ह्रीं जीवाजीवादिनवपदार्थविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

परमतत्त्वस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भेद स्वरूप नयों से जो यत्नोद्यम से करता श्रद्धान ।
वही शुद्ध सम्यक्दृष्टी है एक दिवस पाता निर्वाण ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३१३)

अब कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि होने पर अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव होता है , उसके निर्मद-मृदु परिणाम कैसे होते हैं-

जो ण य कुव्वदि गव्वं, पुत्त-कलत्ताइसव्वअत्थेसु ।
उवसमभावे भावदि, अप्पाणं मुणदि तिणमित्तं ॥३१३॥

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि होता है वह पुत्र कलत्र आदि सब परद्रव्य तथा परद्रव्यों के भावों में गर्व नहीं करता है, पर द्रव्यों से आपके बढ़प्पन माने तो सम्यक्त्व कैसा ? उपशम भावों को भाता है, अनन्तानुबन्धी संबंधी तीव्र रागद्वेष परिणाम के अभाव से उपशम भावों की भावना निरन्तर रखता है अपनी आत्मा को तृण के समान हीन मानता है क्योंकि अपना स्वरूप तो अनन्त ज्ञानादिरूप है इसलिये जब तक उसकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक अपने को वर्त्तमान पर्याय में तृण तुल्य मानता है, किसी में गर्व नहीं करता है।

३१३. ॐ ह्रीं पुत्रकलत्रादिसर्वार्थगर्वरहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

साम्यचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो सम्यक् दृष्टि होता है परद्रव्यों में गर्व नहीं ।
तृण समान पर्याय मानता जब तक ज्ञान स्वरूप नहीं ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१३॥

जहाँ सर्वगुण वहाँ आत्मा कहते हैं केवली महान ।
इसीलिए योगीजन ध्याते सदा आत्मा का ही ध्यान ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३१४)

अब द्रव्य-दृष्टि बल दिखाते हैं-

विसयासत्तो वि सया, सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि ।
मोहविलासो एसो, इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥३१४॥

अर्थ- अविरत सम्यग्दृष्टि यद्यपि इन्द्रियविषयों में आसक्त है त्रस स्थावर जीवों का घात जिनमें होता है ऐसे सब आरम्भों में वर्तमान है, अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायों के तीव्र उदय से विरक्त नहीं हुआ है तो भी सबको हेय (त्यागने योग्य) मानता है और ऐसा जानता है कि यह मोहका विलास है, मेरे स्वभाव में नहीं है, उपाधि है, रोगवत् है, त्यागने योग्य है, वर्तमान कषायों की पीड़ा सही नहीं जाती है इसलिए असमर्थ होकर विषयों के सेवन तथा बहु आरम्भ में प्रवृत्ति होती है ऐसा मानता है ।

३१४. ॐ ह्रीं मोहविलासरहितनिजधर्म स्वरूपाय नम. ।

निर्मोहचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अविरति सम्यक् दृष्टि विषय अरु आंरभों में है आसक्त।
अप्रत्याख्याना वरणी के तीव्र उदय से नहीं विरक्त ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३१५)

फिर वही कहते हैं-

उत्तमगुणगहणरओ, उत्तमसाहूण विणयसंजत्तो ।
साहम्मिय अणुराई, सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥३१५॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टि कैसा होता है- उत्तम गुण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदि के ग्रहण करने में अनुरागी होता है उन गुणों के धारक उत्तम साधुओं में विनय संयुक्त होता है अपने समान सम्यग्दृष्टि साधर्मियों में अनुरागी होता है, वात्सल्य गुणसहित होता है वह

उत्तम सम्यग्दृष्टि होता है। यदि ये तीनों भाव नहीं होते है तो जाना जाता कि इसके सम्यक्त्व का यथार्थपना नहीं है ।

३१५. ॐ ह्रीं उत्तमगुणग्रहणादिविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

विरागधामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सम्यक् दृष्टि गुणानुरागी साधु विनय से है संयुक्त ।
साधर्मी से वात्सल्य है रत्नत्रय भावना सुयुक्त ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३१६)

फिर वही कहते है-

देहमिलियं पि जीवं, णियणाणगुणेण मुणदि जो भिण्णं ।
जीवमिलियं पि देहं, कंचुवसरिसं वियाणेई ॥३१६॥

अर्थ- यह जीव देह से मिल रहा है तो भी अपना ज्ञानगुण है इसलिये अपने को देह से भिन्न ही जानता है देह जीव से मिल रहा है तो भी उसको कंचुक (कपड़े का जामा) समान जानता है जैसे देह से जामा भिन्न है वैसे जीव से देह भिन्न है ऐसे जानता है।

३१६. ॐ ह्रीं देहात्मभिन्नज्ञानविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

निर्देहज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जीव देह से मिला जानता अपना ज्ञान देह से भिन्न ।
वस्त्र समान देह जानता जीव देह से पूरा भिन्न ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

असंयमित जीवन जीने से कर्म बंध बढ़ता ही है ।
भव ज्वर का आताप आत्मा के ऊपर चढ़ता ही है ॥

(३१७)

फिर वही कहते हैं-

णिज्जियदोसं देवं, सव्वजिवाणं दया वरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं, जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ॥३१७॥

अर्थ- जो जीव दोष रहित को तो देव सब जीवों की दया को श्रेष्ठ धर्म निर्ग्रन्थ को गुरु मानता है वह प्रगट रूप से सम्यग्दृष्टि है ।

३१७. ॐ ह्रीं उत्तमदेवधर्मगुरुविकल्परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

निजपरमदेवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दोष रहित को देव दया को धर्म मानता गुरु निर्ग्रंथ ।
प्रगट रूप से सम्यकदृष्टी एक दिवस पाता शिवपंथ ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३१८)

अब मिथ्यादृष्टि कैसा होता है सो कहते हैं-

दोससहियं पि देवं, जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं, जो मण्णदि सो हु कुदिट्ठी ॥३१८॥

अर्थ- जो जीव दोषसहित देवको तो देव जीव हिंसादि सहित को धर्म परिग्रह में आसक्त को गुरु मानता है वह प्रगट रूप से मिथ्यादृष्टि है।

३१८. ॐ ह्रीं दोषसहितदेवधर्मविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मूढचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दोष सहित देव को माने हिंसा में भी माने धर्म ।
परिग्रही को गुरु माने वह मिथ्यादृष्टि सहित भव कर्म ॥

जो संयमित जीव होते हैं वे ही कर्म बंध हरते ।
निज में ही मर्यादित रहकर निज का ही अनुभव करते॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३१९)

अब कोई प्रश्न करता है कि व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी देते हैं, उपकार करते हैं उनकी पूजा वन्दना करें या नहीं ? उसको उत्तर देते हैं-

ण य को वि देदि लच्छी, ण को वि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं, कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥३१९॥

अर्थ-- इस जीव को कोई व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी नहीं देते हैं इस जीवका कोई अन्य उपकार भी नहीं करता है जीव के पूर्व संचित शुभ अशुभ कर्म ही उपकार तथा अपकार करते हैं ।

३१९. ॐ ह्रीं उपकारापकारविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरालंबचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

व्यन्तर आदिक नहीं लक्ष्मी देते ना करते उपकार ।
संचित कर्म शुभाशुभ ही करते उपकार और अपकार ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३१९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३२०)

फिर वही कहते है-

भत्तीए पुज्जमाणो, विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मं कीरदि, एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥३२०॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टि ऐसा विचार करता है कि यदि भक्ति से पूजा हुआ व्यन्तर देव ही लक्ष्मी को देता है तो धर्म क्यों किया जाता है ?

अनियंत्रित मत रहो नियंत्रित रहकर दृढ़ संयम पालो।
सदा संयमित जीवन में रह निज को ही देखो भालो ॥

३२०. ॐ ह्रीं क्षेत्रपालकालीचण्डिकादिव्यन्तरदेवधर्मलक्षणरहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

अमूढस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सम्यक् दृष्टि विचारता है यदि व्यन्तर ही लक्ष्मी देता ।
तो फिर धर्म किया क्यों जाता केवल कर्म सौख्य देता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३२१)

अब सम्यग्दृष्टि के विचार कहते हैं-

जं जस्स जम्मिदेसे, जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं, जम्मं वा अहव मरणं वा ॥३२१॥

अर्थ- जो जिस जीव के जिस देश में जिस काल में जिस विधान से जन्म तथा मरण उपलक्षण से दुःख सुख रोग दारिद्रय आदि सर्वज्ञ देव के द्वारा जाना गया है वह वैसे ही नियम से होगा।

३२१. ॐ ह्रीं नियतकालपर्यायविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजबोधराजस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जब जैसा कुछ होनेवाला जहाँ जिस समय जो निश्चित।
जाना है श्री जिनेन्द्र प्रभु ने जन्म मरण यश अपयश मित॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

यदि प्रवृत्ति स्वच्छंद रही तो उपलनाव सम डूबोगे ।
पंच परावर्त्तन कुचक्रसे कभी नहीं तुम ऊबोगे ॥

(३२२)

तं तस्स तम्मि देसे, तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।
को सक्कदिवारेदुं, इंदो वा तह जिणिंदो वा ॥३२२॥

अर्थ- वह ही उस प्राणी के उस ही देश में उस ही काल में उस ही विधान से नियम से होता है उसका इन्द्र, जिनेन्द्र, तीर्थंकर देव कोई भी निवारण नहीं कर सकते ।

३२२. ॐ ह्रीं इन्द्रजिनेन्द्रादिशक्तिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

स्वरूपसिद्धोऽहं ।

वैसा ही उस क्षेत्र काल में उसी नियम से वह होता ।
इन्द्र जिनेन्द्र उसे परिवर्त्तन में न कभी सक्षम होता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥

छंद चौपई

होनी हो सो होय अवश्य । परिवर्त्तन न किसी के वश्य ।
नेमिनाथ प्रभु का वक्तव्य । निश्चित है सबका भवितव्य॥
जली द्वारिका बचा न कोय । जो क्रम बद्ध सुनिश्चित होय।
किए उपाय बहुत सब व्यर्थ । हुआ न सिद्ध प्रयोजन अर्थ।
इन्द्र तथा सारे अहमिन्द्र । कहँ कहाँ तक देव जिनेन्द्र ॥
परिवर्त्तन में कौन समर्थ । सब क्रम बद्ध विचारो अर्थ ।
जैसा भी भवितव्य स्वरूप । होता है उसके अनुरूप ॥
हानि लाभ यश अपयश कोय । जब जैसा होना है होय।
जिन आगम का जानो अर्थ । तत्त्व ज्ञान ही पूर्ण समर्थ॥
वस्तु स्वरूप सदैव विचार । करो आत्मा का उद्धार ।
भविष्य काल चौबीसी होय । करो सब कोय सम्यक् ज्ञान।
जन्म मरण सब कर्माधीन । नहीं किसी के है आधीन ॥

परभावों से शून्य बनो तुम निजभावों से हो परिपूर्ण ।
निज में ही अंतस्थ रहो तुम पियो सौख्य सागर आपूर्ण॥

यह भवितव्य सदैव समर्थ । परिवर्तनका श्रम है व्यर्थ ।
यह सर्वज्ञ वचन विख्यात । क्रम से होते हैं दिनरात ॥
रवि के बाद सोम ही होय । सोम बाद मंगल बुध होय।
बुध के बाद बृहस्पति होय । तत्पश्चात शुक्र शनि होय ॥
वर्ष मास सब क्रम से होय । यह क्रम तोड़ सके ना कोय।
भूतकाल तो आवताय । वर्त्तमान इक क्षण में जाय ॥
भविष्य भी तत्क्षण ही आय । वह भी भूतकाल बनजाय।
निज पुरुषार्थाधीन स्वकाल । यह अरहंत वचन सुविशाल॥
पर्यायें क्रम बद्ध सदीव । काहे दुखिया होवे जीव ।
ज्ञानी को आश्चर्य न होय । अज्ञानी ही अदभुत जोय ॥
तीन लोक में जो भी होय । सब क्रम बद्ध पूर्वक होय ।
निज कल्याण सुनिज आधीन । जीव स्वतंत्र सदा स्वाधीन॥
यह सर्वज्ञ कथन है सार्थ । अभी जगाओ निज पुरुषार्थ।
है स्वाधीन जीव पुरुषार्थ । यही नियत निश्चय परमार्थ॥
आश्रय में ले निज भूतार्थ । एकमात्र निश्चय सत्यार्थ ।
अब तो करो आत्म कल्याण । कर्मो का कर लो अवसान॥
गुण अनंतपति नाथ जिनेन्द्र । ऐसा ही है निज आत्मेन्द्र।
सभी जीव है सिद्ध समान । द्रव्य दृष्टि से सब भगवान॥
हैं पर्याय दृष्टि से दीन । भ्रमते होकर कर्माधीन ।
जो न कभी हो निज से भ्रष्ट । वे ही करते कर्म विनष्ट॥
सम्यक् दर्शन निज आधीन । कर लो हो पुरुषार्थ काल प्रवीण।
जब जागे पुरुषार्थ नवीन । काल लब्धि की बाजे वीण ॥
दर्शन ज्ञान स्वरूपी जीव । ज्ञान रहित ना होय कदीव ॥

किसी विवशता में मत फंसना निज के ही गाना ध्रुव छंद।
निमिष मात्र में द्वंद बंद कर हो जाओ पूरे निर्द्वंद ॥

दोहा

होनहार भवितव्य ही जग मे महा समर्थ ।
परिवर्तन में देव सब होते हैं असमर्थ ॥
इसका निर्णय कर अभी कर लो सम्यक् ज्ञान ।
निज पुरुषार्थ स्वशक्ति से पालो पद निर्वाण ॥३२२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३२३)

अब कहते हैं कि ऐसा निश्चय करते हैं वे तो सम्यग्दृष्टि हैं और इसमें संशय करते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं-

एवं जो णिच्छयदो, जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो, जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥३२३॥

अर्थ- जो इस प्रकार के निश्चय से सब द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इनको और इन द्रव्यों की सब पर्यायों को सर्वज्ञ के आगम के अनुसार जानता है श्रद्धान करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि होता है जो ऐसा श्रद्धान नहीं करता है शंका (संदेह) करता है वह सर्वज्ञ के आगम से प्रतिकूल है, प्रगट रूप से मिथ्यादृष्टि है ।

३२३. ॐ ह्रीं जीवादिद्रव्यज्ञानविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजानंदसिद्धोऽहं ।

ताटंक

इस प्रकार सम्यक् श्रद्धा से सम्यक् दृष्टि जानता है ।
जो सर्वज्ञ कथन में आता वैसा उसे मानता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३२४)

अब कहते हैं कि जो विशेष तत्व को नहीं जानता है और जिनवचनों में

राग द्वेष की विभीषिका फिर कभी न आने पाएगी ।
निर्मल बुद्धिमान चेतन की स्वगति न रुकने पाएगी ॥

आज्ञामात्र श्रद्धान करता है वह भी श्रद्धावान कहलाता है ।

जो ण विजाणइ तच्चं, सो जिणवयणे करेदि सद्दहणं ।
जं जिणवरेहि भणियं, तं सव्वमहं सम्मिच्छामि ॥३२४॥

अर्थ- जो जीव अपने ज्ञान के विशिष्ट क्षयोपशम बिना तथा विशिष्ट गुरु के संयोग बिना तत्वार्थ को नहीं जान पाता है वह जीव जिनवचनों में ऐसा श्रद्धान करता है कि जो जिनेश्वर देव ने तत्व कहा है उस सबही को मैं भले प्रकार इष्ट (स्वीकार) करता हूँ इस तरह भी श्रद्धावान् होता है ।

३२४. ॐ ह्रीं ज्ञानावरणादिकर्मप्रबलोदयरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजबोधनिधिस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

तत्त्व अर्थ जो नहीं जानता पर जिन वचनों में श्रद्धान ।
जिनवर कथन प्रमाण मुझे अतएव जीव है श्रद्धावान ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३२५)

अब सम्यक्त्व का महात्म्य तीन गाथाओं में कहते हैं-

रयणाण महारयणं, सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीण महा रिद्धि, सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥३२५॥

अर्थ- सम्यक्त्व रत्नों में महारत्न है सब योगों में (वस्तु की सिद्धि करने के उपाय, मंत्र, ध्यान आदि में) उत्तम योग है क्योंकि सम्यक्त्व से मोक्ष की सिद्धि होती है अणिमादिक ऋद्धियों में सबसे बड़ी ऋद्धि है अधिक क्या कहे, सब सिद्धियों को करने वाला यह सम्यक्त्व ही है ।

३२५. ॐ ह्रीं सम्यक्त्वमहारत्नादिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

शाश्वतबोधमहारत्नस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पांचो इन्द्रिय मन वच काया से हो शुद्ध बनो निर्ग्रंथ ।
एकाकी हो निज आत्मा को जान सिद्ध होलो भगवंत॥

सम्यक् दर्शन महा रत्न से मोक्ष सिद्धि हो जाती है ।
सभी ऋद्धियों में यह सबसे बड़ी ऋद्धि कहलाती है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर मे धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं.नि. ।

(३२६)

वही कहते है-

सम्मत्तगुणप्पहाणो, देविंदणरिंदवंदिओ होदि ।
चत्तवयो वि य पावइ, सग्गसुहं उत्तमं विविहं ॥३२६॥

अर्थ- सम्यक्त्व गुण सहित जो पुरुष प्रधान है वह देवों के इन्द्र तथा मनुष्यों के इन्द्र चक्रवर्त्ती आदि से वन्दनीय होता है व्रत रहित होने पर भी उत्तम अनेक प्रकार के स्वर्ग के सुख पाता है ।

३२६. ॐ ह्रीं सम्यक्त्वगुणविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

अक्षयानन्तसुस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

व्रत से रहित किन्तु स्वर्गो के सुख पाता है सम्यक् दृष्टि।
इन्द्र चक्रवर्त्ती से होता वन्दनीय पाता सुख सृष्टि ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३२७)

वही कहते है-

सम्माइट्ठी जीवो, दुग्गदिहेदुं ण बंधदे कम्मं ।
जं बहुभवेसु बद्धं, दुक्कम्मं तं पि णासेदि ॥३२७॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टि जीव दुर्गति के कारण अशुभकर्म को नहीं बांधता है और जो अनेक

निश्चय धर्म आत्मा जानो अरु व्यवहार धर्म है पुण्य।
विघ्न ज्ञानधारा में करती सदा कर्म धारा परजन्य ॥

पूर्वभवों में बांधे हुए पापकर्म हैं उनका भी नाश करता है ।

३२७. ॐ ह्रीं अशुभायुनामगोत्रदिबन्धरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्णामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दुर्गति कारण अशुभ कर्म को नहीं बांधता सम्यक् दृष्टि।
पूर्व भवों के बंधे भाव को भी क्षय करता सम्यक् दृष्टि॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३२८)

अब प्रतिमा के ग्यारह भेदों के स्वरूप कहेंगे । पहिले दार्शनिक श्रावक को कहते है-

बहुतससमण्णिदं जं, मज्जं मंसादि णिंदिदं दव्वं ।
जो ण य सेवदि णियदं, सो दंसणसावओ होदि ॥३२८॥

अर्थ- बहुत से त्रस जीवों के घात से उत्पन्न तथा उन सहित मदिरा का और अति निन्दनीय मांस आदि द्रव्य का जो नियम से सेवन नहीं करता है-भक्षण नहीं करता है वह दार्शनिक श्रावक है ।

३२८. ॐ ह्रीं दर्शनश्रावकविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मलज्ञानसमुद्रोऽहं ।

ताटंक

त्रस जीवों का घात मद्य अरु मांस नहीं सेवन करता ।
वही दार्शनिक श्रावक है जो भक्षण कभी नहीं करता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

छोड़ पलायनवाद ऊर्जा रूपांतरित करो अपनी ।
मत मानो तुम परमात्मा को मानो परमात्मा की कथनी॥

(३२९)

वही कहते है-

दिढचित्तो जो कीरदि, एवं पि वयं णियाणपरिहीणो ।
वेरग्गभावियमणो, सो वि य दंसणगुणो होदि ॥३२९॥

अर्थ- ऐसे व्रत को दृढ़चित्त हो निदान (इस लोक परलोक के भोगों की वांछा) से रहित हो वैराग्य से भावित (गीला) मन वाला होता हुआ जो सम्यग्दृष्टि पुरुष करता है वह दार्शनिक श्रावक होता है ।

३२९. ॐ ह्रीं मायादिशल्यरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निः शल्यस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सुदृढ़ चित्त हो निदान विरहित हो वैराग्य भाव युतमन ।
वही दार्शनिक श्रावक होता उर में पक्का गुण दर्शन ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३२९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३३०)

अब दूसरी व्रत प्रतिमा का स्वरूप कहते हैं-

पंचाणुव्वयधारी, गुणवयसिक्खावएहिं संजुत्तो ।
दिढचित्तो समजुत्तो, णाणी वयसावओ होदि ॥३३०॥

अर्थ-जो पांच अणुव्रतों का धारक हो तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सहित हो दृढ़चित्त हो और समताभाव सहित हो ज्ञानवान् हो, वह व्रतप्रतिमा का धारक श्रावक है ।

३३०. ॐ ह्रीं व्रतश्रावकविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निश्चलबोधवपुस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अणुव्रत पांचों तीनों गुणव्रत शिक्षाव्रत चारों से युक्त ।
सुदृढ़ चित्त हो समता युत्त हो ज्ञानवान हो गुण संयुक्त॥

जो अबाध उपलब्ध उसे ही जानो जीवन में पर्याप्त ।
लेकिन मान प्रतिष्ठा लोभादिक उर में हो कभी न व्याप्त॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३३१)

अब पांच अणुव्रतों में से पहिले अणुव्रत को कहते हैं-

जो वावरइ सदओ, अप्पाणसमं परं पि मण्णंतो ।
निंदणगरहणजुत्तो, परिहरमाणो महारंभे ॥३३१॥

अर्थ- जो श्रावक त्रसजीव दोइन्द्रिय तेन्द्रिय चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय का घात मन वचन काय से आप नहीं करे, दूसरे से नहीं करावे और अन्य को करते हुए इष्ट (अच्छा) नहीं माने उसके पहिला अहिंसाणुव्रत होता है। कैसा है श्रावक?

३३१. ॐ ह्रीं निन्दागर्हाविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्दोषबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो श्रावक त्रस हिंसा विरहित कृत कारित अनुमोदन हीन।
उसको प्रथम अहिंसा अणुव्रत होता है वह ज्ञान प्रवीण ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३३२)

वही कहते है-

तसघादं जो ण करदि, मणवयकाएहिं णेव कारयदि ।
कुव्वंतं पि ण इच्छदि, पढमवयं जायदे तस्स ॥३३२॥

अर्थ- जो दयासहित तो व्यापार कार्य में प्रवृद्धित्त करता है सब प्राणियों को अपने समान मानता है निंदा और गर्हा सहित है । (व्यापारादि कार्यों में हिंसा होती है उसकी अपने मन में (अपनी) निंदा करता है, गुरुओं के पास अपने पापों को कहता है सो गर्हा सहित

ध्यानाकाश मध्य उड़ने की शक्ति स्वतः प्रगटाएगी ।
कर्म बंध की सकल श्रृंखला अपना बल विघटाएगी ॥

है, जो पाप लगते हैं उनकी गुरुओं की आज्ञाप्रमाण आलोचना प्रतिक्रमम आदि प्रायश्चित लेता है) जिनमें त्रस हिंसा बहुत होती हो ऐसे बड़े व्यापार आदि के कार्य महारम्भों को छोड़ता हुआ प्रवृत्ति करता है ।

३३२. ॐ ह्रीं हिंसाविरतिव्रतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

निर्दोषबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

दया भाव युत निन्दा गर्हा युक्त सभी को सम जाने ।
त्रस हिंसा व्यापार न करता महारंभ तज सुख माने ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३३३)

अब दूसरे अणुव्रत को कहते हैं-

हिंसा वयणं ण वयदि, कक्कसवयणं पि जो ण भासेदि ।
णिट्ठुरवयणं पि तहा, ण भासदे गुज्झवयणं पि ॥३३३॥

अर्थ- जो हिंसा के वचन नहीं कहता है कर्कश वचन भी नहीं कहता है तथा निष्ठुर वचन भी नहीं कहता है और परका गुह्य (गुप्त) वचन भी नहीं कहता है ।

३३३. ॐ ह्रीं कर्कशादिवचनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्वचनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

हिंसक कर्कश अनिष्ट पर को दुखमय वचन नहीं कहता।
पर को हित कर वचन प्रमाण रूप ही वह सदैव कहता॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

बंध मोक्ष कल्पना करेगा तो निश्चित ही होगा बंध ।
सहज स्वरूप आचरण होतो शान्त स्वरूप मिले निर्बंध॥

(३३४)

वही कहते हैं

हिदमिदवयणं भासदि, संतोसकरं तु सव्वजीवाणं ।
धम्मपयासणवयणं, अणुव्वदि होदि सो बिदिओ ॥३३४॥

अर्थ- तो कैसे वचन कहे ? परके हितरूप तथा प्रमाणरूप वचन कहता है सब जीवों को सन्तोष करने वाले वचन कहता है धर्म का प्रकाश करने वाले वचन कहता है वह पुरुष दूसरे अणुव्रत का धारी होता है ।

३३४. ॐ ह्रीं कूटलेखक्रियादिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजसत्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

वच संतोष उदार कहता द्वय अणुव्रत धारी होता ।
धर्म प्रकाश कराने वाले वचन युक्ति पूर्वक कहता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३४॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३३५)

अब तीसरे अणुव्रत को कहते हैं-

जो बहुमुल्लं वत्थुं, अप्पमुल्लेण णेय गिण्हेदि ।
वीसरियं पि ण गिण्हदि, लाहे थोये वि तूसेदि ॥३३५॥

अर्थ- जो श्रावक बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य में नहीं लेता है किसी की भूली हुई वस्तु को नहीं लेता है,व्यापार में थोड़े ही लाभ से सन्तोष करता है ।

३३५. ॐ ह्रीं बहुमूल्याल्पमूल्यवस्तुविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अनुपमज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अधिक मूल्य की वस्तु न लेता अल्प मूल्य से रहता दूर।
थोड़े में संतोष सुदृढ़चित शुद्ध बुद्धि से हैं भरपूर ॥

परमपारिणामिक स्वभाव बल शक्ति रूप है तेरे पास ।
हो एकाग्र अनंत शक्तियों का निज में कर अभी विकास॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३३६)

जो परदव्वं ण हरइ, मायालोहेण कोहमाणेण ।
दिढचित्तो सुद्धमई, अणुव्वई सो हवे तिदिओ ॥३३६॥

अर्थ- जो कपट से लोभ से क्रोध से मानसे दूसरे के द्रव्य का हरण नहीं करता है जो दृढ़ चित्त है (कारण पाकर प्रतिज्ञा को भंग नहीं करता है) शुद्ध बुद्धिवाला होता है वह तीसरे अणुव्रत का धारक श्रावक होता है ।

३३६. ॐ ह्रीं मायालोभदिवशपरद्रव्यहरणरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मायास्वरूपोऽहं ।

ताटंक

द्रव्य हरण करता न किसी का तीजे अणुव्रत का धारी।
क्रोधमान से बहुत दूर है उर में है समता भारी ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३३७)

अब ब्रह्मचर्यव्रत का स्वरूप कहते हैं-

असुइमयं दुग्गंधं, महिलादेहं विरच्चमाणो जो ।
रूवं लावण्णं पि य, मणमोहणकारणं मुणइ ॥३३७॥

अर्थ- जो श्रावक स्त्री के शरीर को अशुचिमयी दुर्गन्धयुक्त जानता हुआ उसके रूप तथा लावण्य को भी मन में मोह उत्पन्न करने का कारण जानता है इसलिये विरक्त होता हुआ प्रवर्तता है ।

सम्यक्दृष्टि जीव कभी भी दुर्गति गमन न करता है ।
यदि जाए तो दोष पूर्वका उसको भी क्षय करता है ॥

३३७. ॐ ह्रीं अशुचिदेहरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

शुचिबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो स्त्री को अशुचि तथा दुर्गन्ध युक्त ही जानेगा ।
स्त्री के लावण्य रूप से विरत स्वयं को मानेगा ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३३८)

जो मण्णदि परमहिलं, जणणीबहिणी सुआइसारिच्छं ।
मणवयणे कायेण वि, बंभवई सो हवे थूलो ॥३३८॥

अर्थ- जो परस्त्री को, बड़ी को माता के समान, बराबर की को बहिन के समान, छोटी को पुत्री के समान मन वचन काय से जानता हैं वह स्थूल ब्रह्मचर्य का धारक श्रावक है।

३३८. ॐ ह्रीं कामसेवनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निष्कामब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पर स्त्री को माता बहिन सुता मन से पहचानेगा ।
ब्रह्मचर्य का धारक वह ही श्रावक बन सुख पाएगा ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३३९)

अब परिग्रहणपरिमाण नामक पांचवें अणुव्रत का स्वरूप कहते हैं-

आत्म ज्ञान की वैज्ञानिकता हस्तांतरित नहीं होती ।
राग गंध की मादकता तो कभी विकार नहीं खोती ॥

जो लोहं णिहणित्ता, संतोसरसायणेण संतुट्ठो ।
णिहणदि तिण्हा दुट्ठा, मण्णंतो विणस्सरं सव्वं ॥३३९॥

अर्थ- जो पुरुष लोभ कषाय को हीन कर संतोषरूप रसायन से संतुष्ट होकर सब धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र आदि परिग्रह को विनाशीक मानता हुआ दुष्ट तृष्णा को अतिशय रूप से नाश करता है ।

३३९. ॐ ह्रीं दुष्टतृष्णारहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानरसरसायनस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो संतोष रसायन पीकर अल्प परिग्रह में संतुष्ट ।
धन धान्यादि विनश्वर लखता हर लेता है तृष्णादुष्ट ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३३९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३४०)

वही कहते हैं

जो परिमाणं कुव्वदि, धणधाण सुवण्णखित्तमाईणं ।
उवओगं जणित्ता, अणुव्वदं पंचमं तस्स ॥३४०॥

अर्थ- धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र आदि परिग्रह का अपना उपयोग (आवश्यकता एवं सामर्थ्य) जानकर उसके अनुसार जो परिमाण करता है उसके पांचवां अणुव्रत होता है ।

३४०. ॐ ह्रीं राजमावादिपरिग्रहरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निष्परिग्रहस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अन्तरंग का छोड़ परिग्रह बाहय परिग्रह का परिमाण ।
व्रत प्रतिमाधारी श्रावक बन अणुव्रत का करता बहुमान॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४०॥

यह विभाव आधारित जीवन भी क्या कोई जीवन है ।

कर्म श्रंखलाओं में उलझा जड़ जैसा चेतन मन है ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४१)

अब इन व्रतों की रक्षा करने वाले सात शील हैं उनका वर्णन करेंगे। उनमें पहिले तीन गुणव्रत हैं उसमें पहिले गुणव्रत को कहते हैं ।

जह लोहणासणट्ठं, संगपमाणं हवेइ जीवस्स ।

सव्वं दिसिसु पमाणं, तह लोहं णासए णियमा ॥३४१॥

अर्थ- जैसे लोभ का नाश करने के लिए जीव के परिग्रह का परिमाण होता है । वैसे ही सब दिशाओं में परिमाण किया हुआ भी नियम से लोभ का नाश करता ।

३४१. ॐ ह्रीं सर्वदिशापरिमाणविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्लोभबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

लोभ नाश हित दशों दिशाओं का भी तुम कर लो परिमाण।

यह परिमाण लोभ क्षय करता मन हो जाता निर्मल धाम॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।

पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४२)

वही कहते हैं

जं परिमाणं कीरदि, दिसाण सव्वाण सुप्पसिद्धाणं ।

उवओगं जाणित्ता, गुणव्वदं जाण तं पढमं ॥३४२॥

अर्थ- इसलिये सब ही पूर्व आदि प्रसिद्ध दस दिशाओं का अपना उपयोग (प्रयोजन कार्य) जानकर जो परिमाण करता है वह पहिला गुणव्रत है ।

३४२. ॐ ह्रीं दिग्विरतिव्रतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निष्किंचनस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

वे न शान्ति पाएंगें जिनकी निज ऊर्जा सो जाएगी ।
भव सागर दुख से निजात्मा मुक्त नहीं हो पाएगी ॥

दशों दिशाओं की सीमा में सीमित रखता निज उपयोग।
मर्यादा के बाहय न जाता यही महाव्रत सम संयोग ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(३४३)

अब दूसरे गुणव्रत अनर्थदण्ड विरति को कहते हैं-

कज्जं किंपि ण साहदि, णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो ।
सो खलु हवे अणत्थो, पंचपयारो वि सो विविहो ॥३४३॥

अर्थ-जो कार्य प्रयोजन तो अपना कुछ सिद्ध करता नहीं है और केवल पाप ही को उत्पन्न करता है वह अनर्थ कहलाता है वह पांच प्रकार का है तथा अनेक प्रकार का भी है।

३४३. ॐ ह्री अनर्थदण्डव्रतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

एनसूरहितोऽहं ।

ताटंक

बिना प्रयोजन पाप क्रिया कर व्यर्थ अनर्थ दंड करता ।
पांच प्रकार अनर्थ दंड कर पापों का संचय करता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(३४४)

अब पहिले भेद को कहते हैं -

परदोसाण वि गहणं, परलच्छीणं समीहणं जं च ।
परइत्थीअवलोओ, परकलहालोयणं पढमं ॥३४४॥

अर्थ- दूसरे के दोषों को ग्रहण करना दूसरे की लक्ष्मी (धन सम्पदा) की वांछा करना दूसरे की स्त्री को रागसहित देखना दूसरे की कलह को देखना इत्यादि कार्यों को करना

सम्यक्दृष्टि प्रताप वंत है तथा अखंडित विद्यावंत ।
है यशवंत शुद्धि कीं करता वृद्धि सदा ही महिमावंत ॥

सो पहिला अनर्थदण्ड है।

३४४. ॐ ह्रीं परकलहावलोकनरूपप्रथमानर्थदण्डरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

अपध्यानरहितोऽहं ।

वीरछंद

पर धन वांछा पर के दोष ग्रहण पर स्त्री पर है राग ।
पर की कलह देख हर्षित है प्रथम अनर्थदंड है आग ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४५)

अब दूसरे पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड को कहते हैं-

जो उवएसो दिज्जइ, किसिपसुपालवणवणिज्जपमुहेसु ।
पुरिसित्थीसंजोए, अणत्थदंडो हवे बिदिओ ॥३४५॥

अर्थ- खेती करना पशुओं का पालना वाणिज्य करना इत्यादि पापसहित कार्य तथा पुरुष स्त्री का संयोग जैसे हो वैसे करने आदि कार्यों का दूसरों को उपदेश देना इनका विधान बताना जिनमें अपना प्रयोजन कुछ सिद्ध नहीं होता हो केवल पाप ही उत्पन्न होता हो सो दूसरा पापोपदेश नाम का अनर्थदण्ड है ।

३४५. ॐ ह्रीं पापोपदेशरूपद्वितीयानर्थदण्डरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरागज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

खेती करना पशु पालन वाणिज्य आदि पाप के कार्य ।
स्त्री के संयोग आदि का देता है उपदेश विकार्य ॥
यह पापोपदेश नाम का दूजा अनर्थदंड दुखरूप ।
नहीं प्रयोजन कोई होता सिद्ध अत:है पाप स्वरूप ॥

तज व्यवहार सर्व आत्मा के स्वरूप में जो रमण करे।
वह है सम्यक् दृष्टि शीघ्र ही सिद्धपुरी में भ्रमण करे ॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४६)

अब तीसरे प्रमादचरित्त नामक अनर्थदण्ड के भेद को कहते हैं-

विहलो जो वावारो, पुढवीतोयाण अग्गिवाऊणं ।
तह वि वणप्फदिछेदो, अणत्थदंडो हवे तदिओ ॥३४६॥

अर्थ- जो पृथ्वी जल, अग्नि, पवन इनके व्यापार में विफल (बिना प्रयोजन) प्रवृत्ति करना तथा बिना प्रयोजन वनस्पति (हरितकाय) का छेदन भेदन करना सो तीसरा प्रमादचरित नामक अनर्थदण्ड है ।

३४६. ॐ ह्रीं प्रमादचर्यारूपतृतीयानर्थदण्डरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरालसबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भू जल अग्नि वनस्पति कायिक बिना प्रयोजन करता घात।
छेदन भेदन आदि प्रमादी चर्या तीजा अनर्थ पाप ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४७)

अब चौथे हिंसादान नामक अनर्थदण्ड को कहते हैं-

मज्जारपहुदिधरणं, आयुहलोहादिविक्कणं जं च ।
लक्खाखलादिगहणं, अणत्थदंडो हवे तुरिओ ॥३४७॥

अर्थ- जो बिलाव आदि हिंसक जीवों का पालना लोहे का तथा लोहे आदि के आयुधों का व्यापार करना देना लेना लाख खल आदि शब्द से विष वस्तु आदि का देना लेना व्यापार करना चौथा हिंसादान नामक अनर्थदंड है ।

ज्ञानपरिधि में रहने वाले आत्मा की निधि पाते हैं ।
गुण समुद्र के अनंत मोती वे बटोरकर लाते हैं ॥

३४७. ॐ ह्रीं हिंसादानरूपचतुर्थानर्थदण्डरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरायुधचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

हिंसक जीवों का पालक है अस्त्र शस्त्र का है व्यापार।
विष आदिक देता रहता है हिंसादान चतुर्थ विकार ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४८)

अब दुःश्रुति नामक पांचवें अनर्थदण्ड को कहते हैं-

जं सवणं सत्थाणं, भंडणवसियरणकामसत्थाणं ।
परदोसाणं च तहा, अणत्थदंडो हवे चरमो ॥३४८॥

अर्थ- जो सर्वथा एकान्तमतवालों के बनाये हुए कुशास्त्र तथा भांडक्रिया हास्य कौतूहल के कथन के शास्त्र, आदि का सुनना सुनाना पढ़ना पढ़ाना दूसरे के दोषों की कथा करना सुनना दुःश्रुतिश्रवण नामक अंतिम पांचवां अनर्थदण्ड है ।

३४८. ॐ ह्रीं दुःश्रुतिरूपचरमानर्थदण्डरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अश्रवणस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

रतकुशास्त्र है हास्य क्रिया रत मंत्र तंत्र में रहता लीन।
दुःश्रुति श्रवण पांचवा है यह पुण्य भाव करता है क्षीण ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३४९)

अब इस अनर्थदण्ड के कथन का संकोच करते हैं-

आत्म छोर माना है तो पहिले साक्षी बनना होगा ।
ज्ञातादृष्टा बन परभावों से तुमको तनना होगा ॥

एवं पंचपयारं, अणत्थदंडं दुहावहं णिच्चं ।
जो परिहरेदि णाणी, गुणव्वदी सो हवे बिदिओ ॥३४९॥

अर्थ- जो ज्ञानी श्रावक इस प्रकार पाँच प्रकार के अनर्थदण्ड को निरंतर दुखों का उत्पन्न करने वाला जान कर छोड़ता है वह इस गुणव्रत धारक श्रावक होता है ।

३४९. ॐ ह्रीं दुःखावहानर्थदण्डरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्दण्डचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो अनर्थ दंड पांचों को दुखमय जान त्याग देता ।
वह दूजे गुणव्रत का धारी बनता सदा सौख्य लेता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३४९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(३५०)

अब भगोपभोग नामक तीसेर गुणव्रत को कहते हैं-

जाणित्ता संपत्ती, भोयणतंबोलवत्तमादिणं ।
जं परिमाणं कीरदि, भोउवभोयं वयं तस्स ॥३५०॥

अर्थ- जो अपनी सम्पदा सामर्थ्य जानकर भोजन ताम्बूल वस्त्र आदि का परिमाण (मर्यादा) करता है उस श्रावक के भोगोपभोग नामक गुणव्रत होता है ।

३५०. ॐ ह्रीं भोगोपभोगपरिमाणविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अतीन्द्रियानंदस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

यथा शक्य सामर्थ्य जानकर भोजन वस्त्र आदि परिणाम।
करता है वह भोग और उपभोग नाम का गुण व्रत जान॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५०॥

हुआ प्रभावित नहीं किसी से ऐसा ज्ञान आश्रय लो ।
अद्वितीय हो खोज तुम्हारी पलभर नहीं पराश्रय लो ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३५१)

अब भोगोपभोग कीउपस्थित वस्तु को छोड़ता है उसकी प्रशंसा करते हैं-

जो परिहरेइ संतं, तस्स वयं थुव्वदे सुरिंदो वि ।
जो मणलड्डु व भक्खदि, तस्स वयं अप्पसिद्धियरं ॥३५१॥

अर्थ- जो पुरुष, होती हुई वस्तु को छोड़ता है उसके व्रत की सुरेन्द्र भी प्रशंसा करता है और अनुपस्थित वस्तु का छोड़ना तो ऐसा है जैसे लड्डू तो हों नहीं और संकल्प मात्र मन में लड्डू की कल्पना कर लड्डू खावे वैसा है। इसलिये अनुपस्थित वस्तु को तो संकल्प मात्र छोड़ना है, इस प्रकार से छोड़ना व्रत तो है, परंतु अल्प सिद्धि वाला है उसका फल थोड़ा है ।

३५१. ॐ ह्रीं मनोलड्डुभक्षणरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानरसायनस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो भोगोपभोग वस्तुए तज देता है दुखमय जान ।
इन्द्र प्रशंसा करता उसकी यही तीसरा गुणव्रत जान ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३५२)

अब चार शिक्षाव्रतों का व्याख्यान करेंगे । पहिले सामायिक शिक्षाव्रत को कहते हैं-

सामाइयस्स करणं, खेत्तं कालं च आसणं विलओ ।
मणवयणकायसुद्धी, णायव्वा हुंति सत्तेव ॥३५२॥

अर्थ- प्रथम ही सामायिक के करने में क्षेत्र काल आसन और लय मनवचनकाय की शुद्धता ये सात सामग्री जानने योग्य है ।

अस्तांचल की ओर चले तो क्या उदयांचल पाओगे ।
पश्चिम दिशा ओर जाने पर पूर्व दिशा क्या जाओगे ॥

३५२. ॐ ह्रीं निःसंक्लेशरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

समतारूपचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सामायिक करने की सातों सामग्री का कर लो ज्ञान ।
क्षेत्रकाल आसन लय मन वच काया शुद्धि इन्हें लो जान॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३५३)

अब सामायिक के क्षेत्र को कहते हैं-

जत्थ णकलयलसद्दो, बहुजणसंघट्टणं ण जत्थत्थि ।
जत्थ ण दंसादीया, एस पसत्थो हवे देसो ॥३५३॥

अर्थ- जहां कलकलाट (कोलाहल) शब्द नहीं हो जहां बहुत लोगों के संघट्ट (समूह) का आना जाना न हो जहां डांस मच्छर चिउंटी आदि शरीर को बाधा पहुंचाने वाले जीव न हों ऐसा क्षेत्र सामयिक करने के योग्य है ।

३५३. ॐ ह्रीं कलकलशब्दादिरहितप्रशस्तक्षेत्रविकल्प रहित निजधर्मस्वरूपाय नमः ।

शुद्धचैतन्यधामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जन समूह कोलाहल दंशमशक आदिक से भू हो शुद्ध ।
सामायिक के बाधक कारण जहां न हों वह थल हो शुद्ध॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

जो सम्यक् दर्शन का स्वामी तीन लोक में वही प्रधान।
वह पंडित सुख निधि पाता है वह पाता है केवलज्ञान॥

(३५४)

अब सामायिक के काल को कहते हैं-

पुव्वणहे मज्झणहे, अवरण्हे तिहि वि णालिया-छक्को ।
सामाइयस्स कालो, सविणयणिस्सेस-णिद्दिट्ठो ॥३५४॥

अर्थ- सबेरे दोपहर और शाम को इन तीनों कालों में छह-छह घड़ी का काल सामायिका काल है यह विनयसहित गणधर देवों ने कहा है।

३५४. ॐ ह्रीं योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्तशिरोनतिविकल्प परहितनिजधर्म स्वरूपाय नमः ।

सहजनिजध्रुवस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

प्रात दोपहर सांध्य तीन कालों में होती सामायिक ।
छह छह घड़ी नित्य करना ही यह उत्तम है सामायिक ॥
मध्यम घड़ी चार की होती तथा दो घड़ी जघन्य काल ।
नहीं चूकता कभी भूलकर सामायिक की सदा संभाल ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररबपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३५५)

अब आसन तथा लय और मनवचनकाय की शुद्धता को कहते हैं-

बंधित्ता पज्जंकं, अहवा उड्ढेण उब्भओ ठिच्चा ।
कालपमाणं किच्चा, इंदियवावारवज्जिदो होउं ॥३५५॥

अर्थ- जो पर्यंक आसन बांधकर अथवा खड्गासन से स्थित होकर (खड़े होकर) काल का प्रमाण कर ।

३५५. ॐ ह्रीं इन्द्रियव्यापाररहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्व्यापारस्वरूपोऽहं ।

शुद्ध भाव अभिव्यक्ति तुम्हारी अनुभव से प्रगटित होगी।
सकल कलुषता भव विभ्रम की पल में ही विघटित होगी॥

वीरछंद

पर्यंकासनयाखडगासन पहिले करता काल प्रमाण ।
जिन वचनों को शिरोधार्य फिर तजता इन्द्रिय विषय निदान॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३५६)

जिणवयणेयग्गमणो, संवुडकाओ य अंजलिं किच्चा ।
ससरूवे संलीणो वंदणअत्थं विचिंतंतो ॥३५६॥

अर्थ- इन्द्रियों का व्यापार विषयों में न होने के लिये जिन वचन में एकाग्र मन कर काय को संकोच कर हाथों से अंजुलि बनाकर अपने स्वरूप में लीन होकर अथवा सामायिक के वन्दन के पाठ के अर्थ का चितवन करता हुआ प्रवृत्ति करता है ।

३५६. ॐ ह्रीं अङ्गोपाङ्गनामकर्मवकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।
निर्दोषबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

द्वय कर से अंजुली बनाता देह संकुचित करता है ।
पाठ वन्दना में रत रहता निज का चिन्तन करता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३५७)

वही कहते हैं

किच्चा देसपमाणं, सव्वं सावज्जवज्जिदो होउं ।
जो कुव्वदि सामइयं सो मुणिसरिसो हवे ताव ॥३५७॥

अर्थ- क्षेत्र का परिणाम कर सर्व सावद्ययोग (गृह व्यापारादि पापयोग) का त्यागकर सर्व

अनायास शिवमार्ग मिलेगा अनायास शिवतट पावन ।
ध्यानाकाश मध्य विचरण करते ही होगा शिव उपवन ॥

पापयोग से रहित होकर सामायिक करता है वह श्रावक उस समय मुनि के समान है।

३५७. ॐ ह्री कायादिदुष्टप्राणिधानरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अकायसिद्धस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सब सावद्य योग त्यागता क्षेत्रादि करता परिमाण ।
पाप रहित सामायिक करता वह श्रावक मुनि साधु समान॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३५८)

अब दूसरे शिक्षाव्रत प्रोषधोपवास को कहते हैं-

ण्हाणविलेवणभूसण,-इत्थीसंसग्गगंध धूप दीवादि ।
जो परिहरेदि णाणी, वेरग्गाभरणभूसणं किच्चा॥३५८॥

अर्थ- जो ज्ञानी श्रावक एक पक्ष में दो पर्व अष्टमी चतुर्दशी के दिन स्नान, विलेपन, आभूषण, स्त्री का संसर्ग,सुगन्ध, धूप, दीप आदि भोगोपभोग वस्तुओं को छोड़ता है ।

३५८. ॐ ह्रीं स्थानविलेपनादिभूषणरहितनिराभरणरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

ज्ञानभूषणस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

एक पक्ष में पर्व अष्टमी चतुर्दशी करता उपवास ।
न्व्हन आदि दस भोग त्यागता रहता है निजात्म के पास॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३५९)

वही फिर कहते हैं

जड़ पुद्गल की नाव पार जाते ही त्वरित छोड़ देना ।
निज निश्चय भूतार्थ प्राप्त होते ही दृष्टि मोड़ देना ॥

दोसु वि पव्वेसु सया, उववासं एयभत्त णिव्वियडी ।
जो कुणइ एवमाई, तस्स वयं पोसहं बिदियं ॥३५९॥

अर्थ- और वैराग्य भावना के आभरण से आत्मा को शोभायमान कर उपवास, एक वक्त, नीरस आहार करता है तथा आदि शब्द से कांजी करता है (केवल भात और जल ही ग्रहण करता है) उसके प्रोषधोपवासव्रत नामक शिक्षाव्रत होता है।

३५९. ॐ ह्रीं प्रोषधोपवासरूपद्वितीयशिक्षाव्रतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरारम्भस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

दृढ़ वैराग्य भावना आभूषण शोभित होता उत्तम ।
वह कांजी नीरस आहार ग्रहण करता या जल उत्तम ॥
प्रोषधोपवास नामक शिक्षाव्रत पालन करता है ।
यथाशक्य एकाशन या उपवास सदा ही करता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३५९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३६०)

अब अतिथिसंविभाग नामक तीसरे शिक्षाव्रत को कहते हैं-

तिविहे पत्तम्मि सया, सद्धाइगुणेहिं संजुदो णाणी ।
दाणं जो देदि सयं, णवदाणवहीहिं संजुत्तो ॥३६०॥

अर्थ- जो ज्ञानी श्रावक उत्तम, मध्यम, जघन्य तीन प्रकार के पात्रों के लिए दाता के श्रद्धा आदि गुणों से युक्त होकर नवधाभक्ति से संयुक्त होता हुआ नित्यप्रति अपने हाथ से दान देता है । उस श्रावक के तीसरा शिक्षाव्रत होता है।

३६०. ॐ ह्रीं नवधाभक्तियुक्तदानविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निष्कर्मबोधस्वरूपोऽहं ।

जो न मानसिक अस्वस्थ होते वही स्वस्थ हो जाते हैं ।
पूर्ण स्वस्थ बन आत्मस्थ हो अपना पद प्रगटाते हैं ॥

वीरछंद

उत्तम मध्यम जघन्य पात्र को देता है श्रद्धा से दान ।
नवधा भक्ति युक्त होता है निज हाथों से देता दान ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३६१)

वही कहते है-

सिक्खावयं च तदियं, तस्स हवे सव्वसोक्खसिद्धियरं ।
दाणं चउव्विहं पि य, सव्वे दाणाण सारयरं ॥३६१॥

अर्थ- वह दान कैसा है? आहार, अभय, औषध, शास्त्रदान के भेद से चार प्रकार का है अन्य लौकिक दानादिक के दानों में अतिशय रूप से सार है, उत्तम है सब सिद्धि और सुख को करने वाला है ।

३६१. ॐ ह्रीं चतुर्विधदानविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

नीरागबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

औषध अभय शास्त्र दान आहार दान ये चार प्रकार ।
दान धनादिक से अति उत्तम तीजा शिक्षाव्रत है सार ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३६२)

अब आहार आदि दानों का माहात्म्य कहते हैं -

भोयणदाणेण सोक्खं, ओसहदाणेण सत्थदाणं च ।
जीवाण अभयदाणं, सुदुल्लहं सव्वदाणेसु ॥३६२॥

जब जब ज्वार उठें विभाव के तुम उन को बह जाने दो।
उनके पीछे जो निज भाव आ रहा उसको आने दो ॥

अर्थ- भोजनदान से सबको सुख होता है औषधदान सहित शास्त्रदान और जीवों को अभयदान सब दानों में दुर्लभ है, उत्तम दान है ।

३६२. ॐ ह्रीं निजसौख्यरूपनिजधर्मनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

स्वसौख्यार्णवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भोजन से सबको सुख मिलता औषधि से हो देह निरोग।
शास्त्र दान से ज्ञान प्राप्त हो अभय दान सर्वोत्तम योग ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३६३)

अब आहारदान को प्रधान करके कहते हैं

भोयणदाणे दिण्णे, तिण्णि वि दाणाणि होंति दिण्णाणि ।
भुक्खतिसाएवाही, दिणे दिणे होंति देहीणं ॥३६३॥

अर्थ- भोजन दान देने पर तीनों ही दान दिये हुए हो जाते हैं क्योंकि भूख प्यास नामके रोग प्राणियों के दिन प्रतिदिन होते हैं ।

३६३. ॐ ह्रीं ज्ञानामृतरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्व्याधिस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भोजन देने से हो जाते हैं तीनों ही दान महान ।
भोजन से प्राणों की रक्षा भूख रोग होता अवसान ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

मानव धर्म मानते सब ही निज निज आस्था के अनुसार।
किन्तु धर्म की नहीं मानते कोई देखो आँख पसार ॥

(३६४)

वही कहते है-

भोयणबलेण साहू, सत्थं संवेदि रत्तिदिवसं पि ।
भोयणदाणे दिण्णे, पाणा वि य रक्खिया होंति ॥३६४॥

अर्थ- भोजन केबल से साधु रात दिन शास्त्र का अभ्यास करता है भोजन के देने से प्राणों की भी रक्षा होती है। इस तरह भोजनदान में औषध शास्त्र अभयदान ये तीनों ही दिये हुए जानना चाहिये ।

३६४. ॐ ह्रीं चित्प्राणरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजानंदप्राणस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

तीनों दान सहज हो जाते ऐसा है यह भोजन दान ।
शास्त्राभ्यास सभी मुनि करते ऐसा है यह दान महान॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३६५)

अब दान के माहात्म्य ही को फिर कहते हैं-

इहपरलोयणिरीहो, दाणं जो देदि परमभत्तीए ।
रयणत्तये सुठविदो, संघो सयलो हवे तेण॥३६५॥

अर्थ- जो पुरुष (श्रावक) इस लोक परलोक के फल की वांछा से रहितहोकर परम भक्ति से संघ के लिये दान देता है उस पुरुष ने सकल संघ को रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र) में स्थापित किया।

३६५. ॐ ह्रीं निरीहरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरिच्छानंदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

अत: पंच परिवर्त्तन की माया न नाश को पाएगी ।
निजता से जीवन जीने की कला न तब तक आएगी ॥

लोक तथा परलोक फलों की वांछा से विहीन होकर ।
परम भक्ति से सकल संघ को देता है हर्षित होकर ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३६६)

वही कहते हैं-

उत्तमपत्तविसेसे, उत्तमभत्तीए उत्तमं दाणं ।
एयदिणे वि य दिण्णं, इंदसुहं उत्तमं देदि ॥३६६॥

अर्थ- उत्तम पात्र विशेष के लिए उत्तम भक्ति से उत्तम दान एक दिन भी दिया हुआ उत्तम इन्द्रपद के सुख को देता है ।

३६६. ॐ ह्रीं उत्तमपात्रविशेषविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

पवित्रानंदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

सकल संघ को रत्नत्रय में वह सुस्थापित करता है ।
एक दिवस का दान इसे स्वर्गादिक का सुख देता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३६७)

अब चौथे देशावकाशिक शिक्षाव्रत को कहते हैं-

पुव्वपमाणकदाणं, सव्वदिसीणं पुणो वि संवरणं ।
इंदियविसयाण तहा, पुणो वि जो कुणदि संवरणं ॥३६७॥

अर्थ- श्रावक ने जो पहिले सब दिशाओं का परिमाण किया था उसका और भी संवरण करे (संकोच करे) और वैसे ही पहिले इन्द्रियों के विषयों का परिमाण भोगोपभोग परिमाण

भाव पराश्रय बंध भाव है स्वाश्रय भाव सदा निर्बंध ।
तीन काल तीनों लोकों में यही भाव ही है निर्बंध ॥

में किया था उसका और संकोच करे ।

३६७. ॐ ह्रीं निष्कामचिद्रूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

पवित्रानंदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो पहिले परिमाण किया था उसका भी संवरण करो ।
भोग और उपभोगों का परिमाण और संकोच करो ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३६८)

वही कहते हैं-

वासादिकयपमाणं, दिणे दिणे लोहकामसमणट्ठं ।
सावज्जवज्जणट्ठं, तस्स चउत्थं वयं होदि ॥३६८॥

अर्थ- किस तरह? सो कहते हैं-वर्ष आदि तथा दिन दिन प्रति काल की मर्यादा लेकर करे, इसका प्रयोजन यह है कि अन्तरंग में तो लोभ कषाय और काम (इच्छा) के शमन करने (घटाने) के लिये तथा बाह्य में पाप हिंसादिक के वर्जने (रोकने) के लिये करता है उस श्रावक के चौथा देशावकाशिक नाम का शिक्षाव्रत होता है ।

३६८. ॐ ह्रीं सावद्ययोगरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरवद्यबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

वर्ष मास दिन की मर्यादा धीरे धीरे करता कम ।
शिक्षा व्रत देशावकाशिक आगे बढ़ने में सक्षम ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररुपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

अजर अमर गुण निलय आत्म में थिर हो तो फिर बंध नहीं।
संचित कर्मपूर्व क्षय करता, करता नूतन बंध नहीं ॥

(३६९)

अब अंतसल्लेखना को संक्षेप कहते हैं-

वारसवएहिं जुत्तो, जो संलेहणं करेदि उवसंतो ।
सो सुरसोक्खं पाविय, कमेण सोक्खं परं लहदि ॥३६९॥

अर्थ- जो श्रावक बारह व्रत सहित अन्त समय में उपशम भावों से युक्त होकर सल्लेखना करता है वह स्वर्ग के सुख पाकर अनुक्रम से उत्कृष्ट सुख (मोक्ष) को पाता है ।

३६९. ॐ ह्रीं सुरसौख्यरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजानन्तसुखस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अंत समय में जो श्रावक उपशम भावों से होकर युक्त ।
सल्लेखना प्राप्त करता है होता उत्तम सुख संयुक्त ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३६९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३७०)

वही कहते हैं -

एक्कं पि वयं विमलं, सद्दिट्ठी जइ कुणेदि दिढचित्तो ।
तो विविहरिद्धिजुत्तं, इंदत्तं पावे णियमा ॥३७०॥

अर्थ- सम्यग्दृष्टि जीव दृढ़चित्त होकर यदि एक भी व्रत का अतिचार रहित निर्मल पालन करता है तो अनेक प्रकार की ऋद्धियों सहित इन्द्रपद को नियम से पाता है ।

३७०. ॐ ह्रीं विमलचिद्रूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मलचिद्रूपोऽहं ।

वीरछंद

निरतिचार पालन करता यदि सम्यक् दृष्टि एक भी व्रत।
ऋद्धि युक्त इन्द्र पद पाता ऐसा होता पावन व्रत ॥

ज़ैसे जल से लिप्त कमलिनी पत्र नहीं होता चेतन ।
त्यों स्वभाव रत लिप्त कर्म मल से न कभी होता चेतन॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३७१)

अब तीसरी सामायिक प्रतिमा का निरूपण करते है-

जो कुणदि काउसग्गं, वारसआवत्तसंजदो धीरो ।
णमणदुगं पि कुणंतो, चदुप्पणामो पसण्णप्पा॥३७१॥

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि श्रावक बारह आवर्त्त सहित चार प्रणाम सहित दो नमस्कार करता हुआ प्रसन्न है आत्मा जिसकी धीर होकर कायोत्सर्ग करता है ।

३७१. ॐ ह्रीं द्वादशावर्तादियुक्तकायोत्सर्गविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम.।

निर्ममचिद्रूपोऽहं ।

ताटंक

जो श्रावक बारह आवर्त्त अरु चार प्रणाम नमन द्वय कर।
प्रसन्ना रहता धीर चित्त पा कायोत्सर्ग परम सुखकर ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३७२)

वही कहते हैं

चिंतंतो ससरूवं, जिणबिंबं अहव अक्खरं परमं ।
ज्झायदि कम्मविवायं, तस्स वयं होदि सामइयं ॥३७२॥

अर्थ-उस समय अपने चैतन्यमात्र शुद्ध स्वरूप का ध्यान चितवन करता हुआ रहे अथवा जिनबिंब का चिंतवन करता रहे अथवा परमेष्ठी के वाचक पंच नमस्कार मंत्र का चितवन करता रहे अथवा कर्म के उदय के रस की जाति का चिंतवन करता रहे उसके सामायिक व्रत होता है ।

पर भावों का कूड़ा कचरा कब तक अरे संजोओगे ।
शुद्ध ज्ञान का दीप शाश्वत बोलो कब तक जोओगे ॥

३७२. ॐ ह्रीं कर्मविपाकचिंतनबिकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

स्वशुद्धचिद्रूपोऽहं ।

वीरछंद

जिन बिम्बों का सतत चिन्तवन परमेष्ठी वाचक पढ़ मंत्र।
कर्म विपाकोदय का चिन्तन यह सामायिक उत्तम तंत्र ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३७३)

अब प्रोषधप्रतिमा का स्वरूप कहते हैं-

सत्तमितेरसिदिवसे, अवरण्हे जाइऊण जिणभवणे ।
किरियाकम्मं किच्चा, उववासं चउविहं गहिय ॥३७३॥

अर्थ- सप्तमी त्रयोदशी के दिन दोपहर के बाद जिन चैत्यालय में जाकर अपरान्ह के समय सामायिक आदि क्रिया कर्म कर चार प्रकार के आहार का त्याग कर उपवास ग्रहण करता है ।

३७३. ॐ ह्रीं गृहव्यापाररहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

पारिणामिकभावस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दिवस सप्तमी त्रयोदशी को दोपहर बाद जिनालय वास।
सामायिक कर चार प्रकार आहार त्याग दे ले उपवास॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३७४)

वही कहते हैं

यह भव विभ्रम तो अनादि से सग रहा है सदा निकृष्ट।
इसे क्षय किए बिना न कोई प्राणी पाता मार्ग प्रकृष्ट॥

गिहवावारं चत्ता, रत्तिं गमिऊण धम्मचिंताए ।
पच्चूसे उट्ठित्ता, किरियाकम्मं च कादूण ॥३७४॥

अर्थ-घर के समस्त व्यापार को छोडकर धर्मध्यानपूर्वक तेरस और सप्तमी की रात्रि बिताता है सबेरे उठकर सामायिक आदि क्रिया कर्म करता हे ।

३७४ ॐ ह्री क्रियाकर्मरहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

निष्कर्मचिद्रूपोऽहं ।

ताटंक

गृह के सब व्यापार छोडकर धर्म ध्याान मे रात बिताय।
धर्म ध्यान पूर्वक सामायिक करता है प्रतिक्षण स्वाध्याय॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर मे धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह ससार विघट होगा ॥३७४॥

ॐ ह्री धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अध्य नि ।

(३७५)

वही कहते है

सत्थब्भासेण पुणो दिवसं गमिऊण वंदणं किच्चा ।
रत्तिं णेदूण तहा, पच्चूहे वंदणं किच्चा ॥३७५॥

अर्थ- अष्टमी चौदस का दिन शास्त्राभ्यास धर्मध्यानपूर्वक बिताकर अपरान्ह के समय सामायिक आदि क्रिया कर्म कर रात्रि वैसे ही धर्मध्यानपूर्वक बिताकर नोमी पूर्णमासी के सबेरे के समय सामायिक वन्दन कर ।

३७५ ॐ ह्री वद्यवदकभावरहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

अद्वैतचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

अष्टम चतुर्दशी पूजन करता है सामायिक करता ।
नवमी तथा पूर्णमासी को विधि पूर्वक भोजन करता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।

जीवन ज्योति जलाओ उर में जो भव भ्रान्ति जलाएगी।
विगत मान्यताओं की उलझन पलभर में उड़ जाएगी ॥

पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३७६)

पुज्जणविहिं च किच्चा, पत्तं गहिऊण णवरि तिविहं पि ।
भुंजाविऊण पत्तं, भुंजंतो पोसहो होदि ॥३७६॥

अर्थ- पूजन विधान कर तीन प्रकार के पत्रों को पडगाह कर उन पात्रों को भोजन कराकर आप भोजन करता है उसके प्रोषध होता है।

३७६. ॐ ह्री त्रिविधपात्रविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

सदाबोधधामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

योग्य पात्र को देता है आहार तभी करता आहार ।
उसको उत्तम पोषध होता जो होता है निरातिचार ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३७७)

अब प्रोषध का माहात्म्य कहते हैं-

एक्कं पि णिरारंभ, उववासं जो करेदि उवसंतो ।
बहुभवसंचियकम्मं, सो णाणी खवदि लीलाए ॥३७७॥

अर्थ- जो ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) आरम्भ रहित उपशमभाव (मन्दकषाय) सहित होता हुआ एक भी उपवास करता है वह अनेक भवों में संचित किये (बांधे) हुए कर्मों को लीलामात्र में क्षय करता है ।

३७७. ॐ ह्रीं गृहव्यापारक्रयविक्रयादिसावद्यविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरारंभज्ञानस्वरूपोऽहं ।

मोह नींद पर राग द्वेष के महल बनाए बहुतेरे ।
क्रोधमान मायादि लोभ के द्वारा सजाए बहुतेरे ॥

वीरछंद

जो प्राणी आरंभ रहित हो उपशम भावों से हो युक्त ।
यदि उपवास एक भी करता तो कर्मों से होता मुक्त ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३७८)

अब आरम्भ आदि के त्याग बिना उपवास करता है उसके कर्मनिर्जरा नहीं होती है , ऐसा कहते हैं-

उववासं कुव्वंतो, आरंभं जो करेदि मोहादो ।
सो णियदेहं सोसदि, ण झाडए कम्मलेसं पि ॥३७८॥

अर्थ- जो उपवास करता हुआ गृहकार्य के मोह से घर का आरम्भ करता है वह अपने देह को क्षीण करता है कर्मनिर्जरा तो लेशमात्र भी उसके नहीं होती है ।

३७८. ॐ ह्रीं देहकृशादिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मोहशिवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो उपवास ग्रहण करके करता गृह कार्यो के आरंभ ।
वह अपना शरीर क्षय करता नहीं निर्जरा भी प्रारंभ ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३७९)

अब सचित्तत्याग प्रतिमा को कहते हैं-

सच्चित्तं पत्तफलं, छल्लीमूलं च किसलयं बीयं ।
जो णय भक्खदि णाणी, सचित्तविरदो हवे सो दु ॥३७९॥

जपे तप व्रत संयम को आने देता कभी न अविरत भाव।
मिथ्यादर्शन द्वारे बैठा घात रहा है आत्म स्वभाव ॥

अर्थ- जो ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) श्रावक पत्र फल त्वक् छाल मूल कोंपल और बीज इन सचित्त वस्तुओ को नही खाता है वह सचित्तविरत श्रावक होता है ।

३७९ ॐ ह्रीं सचित्तविरतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

निजचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो श्रावक फल पत्र मूल छालादिक वीज न ख़ाता है ।
सचित वस्तुए तज देता वह सचित विरत कहलाता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर मे धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७९॥

ॐ ह्री धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(३८०)

वही कहते हैं-

जो ण य भक्खेदि सयं, तस्स ण अण्णस्स जुज्जदे दाऊं ।
भुत्तस्स भोजिदस्सहि, णत्थि विसेसो तदो को वि ॥३८०॥

अर्थ- जिस वस्तु को आप नहीं खाता है उसको अन्य को देना योग्य नही है क्योकि खाने वाले और खिलाने वाले मे कुछ विशेषता नहीं है।

३८० ॐ ह्रीं अभक्ष्यभक्षणरहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

निराकुलानंदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

स्वयं नहीं खाता जो वस्तु वह न अन्य को भी देता ।
कृत कारित का फल समान प्रतिमा सचित त्याग लेता॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि ।

मोह नींद पर राग द्वेष के महल बनाए बहुतेरे ।
क्रोधमान मायादि लोभ के द्वारा सजाए बहुतेरे ॥

वीरछंद

जो प्राणी आरंभ रहित हो उपशम भावों से हो युक्त ।
यदि उपवास एक भी करता तो कर्मों से होता मुक्त ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३७८)

अब आरम्भ आदि के त्याग बिना उपवास करता है उसके कर्मनिर्जरा नहीं होती है , ऐसा कहते हैं-

उववासं कुव्वंतो, आरंभं जो करेदि मोहादो ।
सो णियदेहं सोसदि, ण झाडए कम्मलेसं पि ॥३७८॥

अर्थ- जो उपवास करता हुआ गृहकार्य के मोह से घर का आरम्भ करता है वह अपने देह को क्षीण करता है कर्मनिर्जरा तो लेशमात्र भी उसके नहीं होती है ।

३७८. ॐ ह्रीं देहकृशादिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

निर्मोहशिवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो उपवास ग्रहण करके करता गृह कार्यों के आरंभ ।
वह अपना शरीर क्षय करता नहीं निर्जरा भी प्रारंभ ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३७९)

अब सचित्तत्याग प्रतिमा को कहते हैं-

सच्चित्तं पत्तफलं, छल्लीमूलं च किसलयं बीयं ।
जो णय भक्खदि णाणी, सचित्तविरदो हवे सो दु ॥३७९॥

जपं तप व्रत संयम को आने देता कभी न अविरत भाव।
मिथ्यादर्शन द्वारे बैठा घात रहा है आत्म स्वभाव ॥

अर्थ- जो ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) श्रावक पत्र फल त्वक् छाल मूल कोंपल और बीज इन सचित्त वस्तुओं को नहीं खाता है वह सचित्तविरत श्रावक होता है ।

३७९. ॐ ह्रीं सचित्तविरतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो श्रावक फल पत्र मूल छालादिक वीज न खाता है ।
सचित वस्तुएं तज देता वह सचित विरत कहलाता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३७९॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३८०)

वही कहते हैं-

जो ण य भक्खेदि सयं, तस्स ण अण्णस्स जुज्जदे दाऊं ।
भुत्तस्स भोजिदस्सहि, णत्थि विसेसो तदो को वि ॥३८०॥

अर्थ- जिस वस्तु को आप नहीं खाता है उसको अन्य को देना योग्य नहीं है क्योंकि खाने वाले और खिलाने वाले में कुछ विशेषता नहीं है।

३८०. ॐ ह्रीं अभक्ष्यभक्षणरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निराकुलानंदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

स्वयं नहीं खाता जो वस्तु वह न अन्य को भी देता ।
कृत कारित का फल समान प्रतिमा सचित त्याग लेता॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८०॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

भेदज्ञान की दामिनि जब जब गड़गड़ाट करती नभ में।
तब तक चमक-चमक उजियारा भरती है अंतर्मन में॥

(३८१)

वही फिर कहते हैं

जो वज्जेदि सचित्तं, दुज्जय जीहा विणिज्जिया तेण।
दयभावो होदि किओ, जिणवयणं पालियं तेण॥३८१॥

अर्थ- जो श्रावक सचित्तका त्याग करता है उसने दुर्जय जिव्हा इन्द्रिय को भी जीत ली तथा दयाभाव प्रगट्ट किया और उसीने जिनदेव के वचनों का पालन किया।

३८१. ॐ ह्रीं दुर्जयजिह्वाविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

अरसज्ञानस्वरूपोऽहं।

ताटंक

जो भी सचित्त त्याग करता है जिव्हा इन्द्रिय जय करता।
दया भाव प्रगटित करता है जिन वच का पालन करता॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा॥३८१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि।

(३८२)

अब रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा को कहते हैं-

जो चउविहंपि भोज्जं, रयणीए णेव भुंजदे णाणी।
ण य भुंजावइ अण्णं, णिसिविरओ सो हवे भोज्जो॥३८२॥

अर्थ- जो ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) श्रावक रात्रि में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य चार प्रकार के आहार को नहीं भोगता है- नहीं खाता है दूसरे को भी भोजन नहीं कराता है वह श्रावक रात्रि भोजन का त्यागी होता है।

३८२. ॐ ह्रीं रजनीभुक्तिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

अनशनस्वरूपोऽहं।

वीरछंद

अल्पावधि के इस प्रकाश में जब चेतन जग जाता है ।
तब इसका मिथ्यात्व मोह पूरा पूरा भग जाता है ॥

अशन पान अरु खाद्य स्वाद्य चारों आहार का निशि में त्याग।
कृत कारित अनुमोदन से तज यही रात्रि भोजन का त्याग॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३८३)

वही कहते हैं-

जो णिसिभुत्तिं वज्जदि, सो उववासं करेदि छम्मासं ।
संवच्छरस्स मज्झे, आरंभ मुयदि रयणीए ॥३८३॥

अर्थ- जो पुरुष रात्रि भोजन को छोड़ता है वह एक वर्ष में छह महिने का उपवास करता है रात्रि भोजन का त्याग होने के कारण भोजन संबंधी आरम्भ का भी त्याग करता है और व्यापार आदि का भी आरम्भ छोड़ता है सो महा दया का पालन करता है ।

३८३. ॐ ह्रीं खण्डनीपीसन्याद्यारंभरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निश्चलशिवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

निशि भोजन त्यागी को एक वर्ष में छह महीने उपवास।
भोजन के आरंभ रहित है महा दया के रहता पास ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३८४)

अब ब्रम्हचर्य प्रतिमा का निरूपण करते हैं-

सव्वेसिं इत्थीणं, जो अहिलासं ण कुव्वदे णाणी ।
मण वाया कायेण य, बंभवई सो हवे सदओ ॥३८४॥

अर्थ- जो ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) श्रावक सब ही चार प्रकार की स्त्री देवांगना, मनुष्यणी,

उपशम भाव भूमिका में सम्यक्त्व भाव प्रगटित होता ।
दर्शन मोह दुष्ट तत्क्षण ही चुपके से विघटित होता ॥

तिर्यंचणी, चित्रामकी इत्यादि स्त्रियों की अभिलाषा मन वचन कायसे नहीं करता है वह दया का पालन करने वाला ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारक होता है ।

३८४. ॐ ह्रीं स्त्र्याभिलाषरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरभिलाषज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

देवांगना मनुजिनी अरु त्रिर्यंचचिनि यानारी चित्राम ।
मन वच काया से तजता उर ब्रह्मचर्य प्रतिमा वसुयाम ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८४॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३८५)

अब आरम्भविरति प्रतिमा को कहते हैं-

जो आरंभं कुणदि, अण्णं कारयदि णेय अणुमण्णे ।
हिंसासंतट्ठमणो, चत्तारंभो हवे सो हु ॥३८५॥

अर्थ- जो श्रावक गृहकार्य संबंधी कुछ भी आरम्भ नहीं करता है दूसरे से भी नहीं कराता है, करते हुए को अच्छा भी नहीं मानता है हिंसा से भयभीत मनवाला वह निश्चय से आरम्भ का त्यागी होता है।

३८५. ॐ ह्रीं हिंसासंत्रस्तमनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

परमशुद्धज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

कभी भूल कर भी ना करता वह गृह संबंधी आरंभ ।
हिंसा से भयभीत सदा है नहीं कराता है आरंभ ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८५॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

फिर संयम की पवन प्राप्त कर जीव संयमित होता है ।
सहज स्वरुपाचरण प्राप्त कर चेतन पुलकित होता है॥

(३८६)

अब परिग्रहत्याग प्रतिमा को कहते हैं-

जो परिवज्जइ गंथं, अब्भंतर बाहिरं च साणंदो ।
पावं ति मण्णमाणो, णिग्गंथो सो हवे णाणी ॥३८६॥

अर्थ- जो ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) श्रावक अभ्यन्तर और बाह्य दो प्रकार के परिग्रह को पाप का कारण मानता हुआ आनंद सहित छोड़ता है वह परिग्रह का त्यागी श्रावक होता है।

३८६. ॐ ह्रीं बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मूर्च्छास्वरूपोऽहं ।

ताटंक

बाह्यभ्यंतर सभी परिग्रह जान पाप कारण तजता ।
वही परिग्रहत्यागी श्रावक अपरिग्रही भाव भजता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३८७)

वही कहते हैं-

बाहिरगंथविहीणा, दलिद्दमणुआ सहावदो होंति ।
अब्भंतरगंथंपुण, ण सक्कदे को वि छंडेदुं ॥३८७॥

अर्थ- बाह्य परिगरह से रहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभाव ही से होते हैं, इसके त्याग में आश्चर्य नहीं है अभ्यन्तर परिग्रह को कोई भी छोड़ने में समर्थ नहीं होता है।

३८७. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वादिपरिग्रहरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अपरिग्रहस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

बाह्य परिग्रह रहित दरिद्री तो स्वभाव से होते हैं ।
क्या आश्चर्य कि अंतरंग तजने में सबल न होते हैं ॥

समतालीन जीव आत्मा का बारबार अनुभव करता।
वह निर्वाण स्वपद को पाता कर्मो का भी क्षय करता ॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३८८)

अब अनुमोदनविरति प्रतिमा को कहते हैं-

जो अणुमण्णं णं कुणदि, गिहत्थकज्जेसु पावमूलेसु ।
भवियव्वं भावंतो, अणुमणविरओ हवे सो दु ॥३८८॥

अर्थ- जो श्रावक पाप के मूल गृहस्थ के कार्यों में जो भवितव्य है सो होता है ऐसी भावना करता हुआ अनुमोदना नहीं करता है वह अनुमोदनविरति प्रतिमाधारी श्रावक है।

३८८. ॐ ह्रीं पापमूलगृहस्थकार्यानुमतविरतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निष्कलंकब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पापमूल गृह कार्यो के कुछ भी आरंभ नहीं करता ।
जो भविष्य हो वह होता है ऐसा जान शान्त रहता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३८९)

वही कहते हैं-

जो पुण चिंतदि कज्जं, सुहासुहं रायदोससंजुत्तो।
उवओगेण विहीणं, स कुणदि पावं विणा कज्जं ॥३८९॥

अर्थ- जो बिना प्रयोजन रागद्वेष संयुक्त हो शुभ अशुभ कार्य का चिन्तवन करता है वह पुरुष बिना कार्य पाप उत्पन्न करता है ।

रागों का उत्पाद अगर कुछ उपशम हो तो करो विचार।
मैं हूं कौन कहाँ से आया यह चिन्तन हो बारंबार ॥

३८९. ॐ ह्रीं रागद्वेषसंयुक्तशुभाशुभकार्यरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्द्वेष[illegible]स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

बिना प्रयोजन राग द्वेष संयुक्त शुभाशुभ करता जो ।
कार्य शुभाशुभ का कर्ता बन अध उत्पन्नित करता वो ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३८९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३९०)

अब उद्दिष्ट विरति प्रतिमा का स्वरूप कहते हैं-

जो णव कोडिविसुद्धं, भिक्खायरणेण भुंजदे भोज्जं ।
जायणरहियं जोग्गं, उद्दिट्ठाहारविरदो सो ॥३९०॥

अर्थ- जो श्रावक नव कोटि विशुद्ध (मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदना के दोष रहित) पूर्वक याचना रहित (बिना मांगे) योग्य (अयोग्य न हो) आहार को ग्रहण करता है वह उद्दिष्ट आहार का त्यागी है ।

३९०. ॐ ह्रीं उद्दिष्टाहारविरतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निराहारबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

नव कोटि से भिक्षाचरण रहित याचना करता है ।
उद्दिष्टा अहार का त्यागी श्रावक व्रत उर धरता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३९१)

अब अंत समय मैं श्रावक आराधना करे ऐसा कहते हैं-

मंद कषाय भाव में ऐसे प्रश्नोत्तर करते रहना ।
जितनी जितनी विशुद्धि वृद्धिंगत हो उसके संग बहना॥

जो सावयवयसुद्धो, अंते आराहणं परं कुणदि ।
सोअच्चुदम्मि सग्गे, इन्दो सुरसेविदो होदि ॥३९१॥

अर्थ- जो श्रावक व्रतों से शुद्ध है और अंत समय में उत्कृष्ट आराधना (दर्शन ज्ञान चारित्र तपका आराधन) करता है वह अच्युत स्वर्ग में देवों से सेवनीय इन्द्र होता है।

३९१. ॐ ह्रीं गूढ़ब्रह्मचार्यादिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजेशब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

व्रत से शुद्ध यही श्रावक तो अंत समय अराधना लीन ।
अच्युत स्वर्गों में देवों से वन्दनीय हो इन्द्र प्रवीण ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३९२)

अब मुनिधर्म का व्याख्यान करते हैं-

जो रयणत्तयजुत्तो, खमादिभावेहिं परिणदो णिच्चं ।
सव्वत्थ वि मज्झत्थो, सो साहू भण्णदे धम्मो ॥३९२॥

अर्थ- जो पुरुष रत्नय (निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र) सहित हो क्षमादिभाव (उत्तम क्षमा को आदि देकर दस प्रकार का धर्म) से नित्य (निरन्तर) परिणत हो सब जगह सुख दुःख, तृण कंचन, लाभ अलाभ, शत्रु मित्र, निन्दा प्रशंसा, जीवन मरण आदि में समभावरूप रहे, रागद्वेष रहित रहे वह साधु है और उसी को धर्म कहते हैं, क्योंकि जिसमें धर्म है, वही धर्म की मूर्ति है, वह ही धर्म है।

३९२. ॐ ह्रीं क्षमादिगुणयुक्तनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

शांतचित्तस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो रत्नत्रय सहित क्षमादिक धर्म भाव से परिणत है ।
जन्म मरण सुख दुख में समता भावी उत्तम संव्रत है ॥

कर्मोदय में साता और असाता के दृष्टा रहना ।
मौन हृदय से ज्ञाता बनना नहीं किसी से कुछ कहना ॥

धर्म मूर्ति मुनि स्वयं धर्म है सदा धर्म पालन करता ।
शुद्ध महाव्रत निरतिचार पालन कर कर्मों को हरता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३९३)

अब दस प्रकार के धर्म का वर्णन करते हैं-

सो चेव दहप्पयारो, खमादि भावेहिं सुक्खसारेहिं ।
ते पुण भणिज्जमाणा मुणियव्वा परमभत्तीए ॥३९३॥

अर्थ- वह मुनि धर्म क्षमादि भावों से दस प्रकार का है कैसा है? सौख्यसार कहिये सुख इससे होता है या सुख इसमें है अथवा सुख से सार है प्रसिद्ध है ऐसा वह दस प्रकार का धर्म भक्ति से जानने योग्य है।

३९३. ॐ ह्रीं परमनिजगुणयुक्तनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

परमचिदानंदस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम तप त्याग ।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धर्म से मुनि करता सदैव अनुराग ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(३९४)

अब पहिले उत्तमक्षमाधर्म को कहते हैं-

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि ।
उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खिमा णिम्मला होदि ॥३९४॥

अर्थ- जो मुनि देव मनुष्य तिर्यंच आदि से रौद्र (भयानक घोर) उपसर्ग करने पर भी

इसी सुविधि से तुम पाओगे एक दिवस सुख अपरंपार।
रागों का उत्पाद अगर उपशम हो तो यह करो विचार॥

क्रोध से तप्तायमान नहीं होता है उस मुनि के निर्मल क्षमा होती है ।

३९४. ॐ ह्रीं रौद्रोपसर्गरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

सहजज्ञानघनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

नर पशु देवों के उपसर्गो से क्रोधित ना होता है ।
निर्मल क्षमा उसी को होती महाव्रती वह होता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३९५)

अब उत्तममार्दवधर्म को कहते हैं-

उत्तमणाणपहाणो, उत्तमतवयरणकरणसीलो वि ।
अप्पाणं जो हीलदि, मद्दवरयणं भवे तस्स ॥३९५॥

अर्थ- जो मुनि उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हो उत्तम तपश्चरण करने का जिसका स्वभाव हो जो अपने आत्मा को मदरहित करे- अनादररूप करे उस मुनि के मार्दव नामक धर्मरत्न होता है।

३९५. ॐ ह्रीं मार्दवगुणरत्नरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मलधर्मरत्नस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

उत्तम ज्ञान प्रधान तपस्या करने का है शान्त स्वभाव ।
मान रहित है मार्दव भावी धर्म रत्न है नहीं विभाव ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

"दंसण मूलो धम्मो" जानो द्रव्यदृष्टि वह सम्यक् दृष्टि।
दर्शन शुद्धि आत्म सिद्धि है लक्ष्य पूर्णता का सुख सृष्टि॥

(३९६)

अब उत्तम आर्जवधर्म को कहते हैं-

जो चिंतेइ ण वंकं, कुणदि ण वंकं ण जंपदे वंकं ।
ण य गोवदि णियदोसं, अज्जवधम्मो हवे तस्स ॥३९६॥

अर्थ- जो मुनि मन में वक्रतारूप चिन्तवन नहीं करे काय से वक्रता नहीं करे वचन से वक्ररूप नहीं बोले और अपने दोषों को नहीं छिपावे उस मुनि के उत्तम आर्जव धर्म होता है ।

३९६. ॐ ह्रीं आर्जवगुणरत्नरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

सरलबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

नहीं वक्रता चिन्तन उर में मन वच काय वक्रता हीन ।
अपने दोष न कभी छिपाता आर्जव भावी साधु प्रवीण ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९६॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३९७)

अब उत्तम शौचधर्म कहते हैं-

समसंतोसजलेणं य, धोवदि तिव्वलोहमलपुंजं ।
भोयणगिद्धिविहीणो, तस्स सउच्चं हवे विमलं ॥३९७॥

अर्थ- जो मुनि समभाव (रागद्वेष रहित परिणाम) और सन्तोष (संतुष्ट भाव) रूपी जल से तीव्र तृष्णा और लोभरूपी मल के समूह को धोवे (नाश करे) भोजन की गृद्धि (अति चाह) से रहित हो उस मुनि का चित्त निर्मल होता है अतः उसके उत्तम शौच धर्म होता है ।

३९७. ॐ ह्रीं शुचिगुणरत्नरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निस्तृष्णास्वरूपोऽहं ।

शुभ या अशुभ भाव के प्राणायाम तुम्हारे दुश्मन हैं ।
कभी नर्क के कभी स्वर्ग के दिग्दर्शक हैं बंधन हैं ॥

ताटंक

समभावी संतोष नीर पी पाप दोष धो देता है ।
भोजन की गृद्धता रहित उर शौच धर्म ही लेता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३९८)

अब उत्तम सत्यधर्म कहते हैं-

जिणवयणमेव भासदि, तं पालेदुं असक्कमाणो वि ।
ववहारेण वि अलियं, ण वददि जो सच्चवाई सो ॥३९८॥

अर्थ- जो मुनि जिनसूत्र ही के वचन को कहे उसमें जो आचार आदि कहा गया है उसका पालन करने में असमर्थ हो तो भी अन्यथा नहीं कहे और जो व्यवहार से भी अलीक (असत्य) नहीं कहे वह मुनि सत्यवादी है, उसके उत्तम सत्यधर्म होता है ।

३९८. ॐ ह्रीं असत्यवचनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

गुणसंपदस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जिनाचार पालन करता है हिलमिल प्रिय वच कहता है।
सत्य धर्म का पालन करता सत्य धार में बहता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(३९९)

अब उत्तम संयमधर्म को कहते हैं-

जो जीवरक्खणपरो, गमणागमणादिसव्वकज्जेसु ।
तणछेदं पि ण इच्छदि, संजमधम्मो हवे तस्स ॥३९९॥

जब तक उर समभाव न होगा तब तक दुख का अंत नहीं।
बिन श्रद्धा कोई भी होता मुक्ति वधू का कंत नहीं ॥

अर्थ- जो मुनि जीवों की रक्षा मे तत्पर होता हुआ गमन आगमन आदि सब कार्यों में तृण का छेदमात्र भी नहीं चाहता है, नहीं करता है उस मुनि के संयमधर्म होता है ।

३९९. ॐ ह्रीं गमनागमनादिसर्वकार्येषु जीवरक्षणविकल्परहित निजधर्मस्वरूपाय नम ।

निरपेक्षशिवस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जीवों की रक्षा करता है गमनागमन अहिंसक है ।
उत्तम संयम का धारी है तृणतक धन ना धारक है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥३९९॥

ॐ ह्री धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४००)

अब तपधर्म को कहते हैं-

इहपरलोयसुहाणं, णिरवेक्खो ज करेदि समभावो ।
विविहं कायकिलेसं, तवधम्मो णिम्मलो तस्स ॥४००॥

अर्थ- जो मुनि इसलोक परलोक के सुख की अपेक्षा से रहित होता हुआ सुख दु.ख शत्रु मित्र तृण कंचन निन्दा प्रशंसा आदि मे रागद्वेष रहित समभावी होता हुआ अनेक प्रकार कायक्लेश करता है उस मुनि के निर्मल तपधर्म होता है ।

४००. ॐ ह्रीं इहपरलोकसुखनिरपेक्षनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

समताबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

लोक तथा परलोक सुखों की इच्छा से रहता है दूर ।
उत्तम तप का धारी मुनि ही काय क्लेश तप करता पूर॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४००॥

ज्ञान सिन्धु का बिन्दु नहीं पी सकते तो तुम को धिक्कार।
वर्त्तमान पर्याय तुम्हारी होने वाली है बेकार ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४०१)

अब त्यागधर्म को कहते हैं-

जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदिं ममत्तहेदुं, चायगुणो सो हवे तस्स ॥४०१॥

अर्थ- जो मुनि मिष्ट भोजन को छोड़ता है रागद्वेष उत्पन्न करने वाले उपकरण को छोड़ता है ममत्व का कारण वसतिकाको छोडता है उस मुनि के त्याग नाम का धर्म होता है।

४०१. ॐ ह्रीं रागद्वेषसंजनकमिष्टभोज्यरहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

अकामब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भोजन अनिष्ट त्याग देता है राग शुभाशुभ देता त्याग ।
त्याग वसतिका ममत्व कारण उत्तम त्याग धर्म अनुराग॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४०१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४०२)

अब आकिंचन्य धर्म को कहते हैं-

तिविहेण जो विवज्जदि, चेयणमियरं च सव्वहा संगं ।
लोयववहारविरदो, णिग्गंथत्तं हवे तस्स ॥४०२॥

अर्थ- जो मुनि लोक व्यवहार से विरक्त होकर चेतन अचेतन परिग्रह को सर्वथा मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदना से छोड़ता है उस मुनि के निर्ग्रन्थत्व आकिंचन धर्म होता है ।

४०२. ॐ ह्रीं चेतनाचेतनसंगरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्ग्रन्थस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

सम्यक् दृष्टि चान्डाल भी देवों से पूजा जाता ।
अल्पकाल में धारण कर चारित्र मोक्ष पद को पाता ॥

मन वच काया कृत कारित अनुमोदन सर्व परिग्रह त्याग।
भव विरक्त हो धर्माकिंचन से उर में पावन अनुराग ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४०२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४०३)

अब ब्रह्मचर्य धर्म को कहते हैं-

जो परिहरेदि संगं, महिलाणं णेव पस्सदे रूवं ।
कामकहादिणिरीहो, णव विह बंभं हवे तस्स ॥४०३॥

अर्थ- जो मुनि स्त्रियों की संगति नहीं करता है उनके रूप को नहीं देखता है काम की कथा आदि शब्द से, स्मरणादिक से रहित हो ऐसा नवधा कहिये मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदना और तीनो काल से-नव कोटि से करता है उस मुनि के ब्रम्हचर्य धर्म होता है ।

४०3. ॐ ह्री कामकथादिनिरीहरूपनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

निजब्रह्मसौख्यार्णवस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

नारी रूप नहीं लखता है ना नारी संगति करता ।
नव कोटि से शील सुगुण युत ब्रह्मचर्य पालन करता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार,विघट होगा ॥४०३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४०३) (अ)

अब शीलवान की बड़ाई कहते हैं, उक्तं च-

जो ण वि जादि वियारं, तरुणियणकडक्खबाणविद्धो वि ।
सो चेव सूरसूरो, रणसूरो णो हवे सूरो ॥१॥

पुरुषाकार प्रमाण आत्मा गुणगण निलय पवित्र महान ।
निर्मल तेजोस्फुरित देख ले जीव यही है प्रकाशमान ॥

अर्थ- जो पुरुष स्त्रियों के कटाक्षरूपी बाणों से आहत होकर भी विकार को प्राप्त नहीं होता है वह शूरवीरों में प्रधान है और जो रणमें शूरवीर है वह शूरवीर नहीं है ।

४०३. (अ) ॐ ह्रीं स्त्रीकटाक्षबाणपीड़ारहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

पूर्णअविकारोऽहं ।

वीरछंद

नारी के कटाक्ष से आहत होकर करता नहीं विकार ।
शूर वीर है महा सुभट है ब्रह्मचर्य पर है अधिकार ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४०४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४०४)

अब इसको संकोच करते हैं-

एसो दहप्पयारो, धम्मो दहलक्खणो हवे णियमा ।
अण्णो ण हवदि धम्मो, हिंसा सुहमा वि जत्थत्थि ॥४०४॥

अर्थ- यह दस प्रकार का धर्म ही नियम से दस लक्षण स्वरूप धर्म है और अन्य जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय सो धर्म नहीं है ।

४०४. ॐ ह्रीं तरुणीजनकटाक्षबाणविद्धरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अविकारब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

दश प्रकार का धर्म नियम से दस लक्षण स्वरूप जानो।
जहां सूक्ष्म हिंसा यदि हो तो उसको धर्म नहीं मानो ॥
शील भेद चारों संज्ञा से गुणा करो होते छत्तीस ।
पंचेन्द्रिय को गुणा करो तो होते एक शतक अस्सी ॥
पंचस्थावर विकलत्रय संज्ञी व असंज्ञी ये दस भेद।
इनसे गुणा करो तो होते एक शतक आठ सौ भेद ॥

अशुचि देह से भिन्न आत्मा जो अपनी लेता है जान।
वह अविनाशी सुख में लय हो करता सकल जिनागम ज्ञान ॥

दस धर्मों से गुणा करो होते अष्टादश सहस सुभेद ।
यही शील के भेद पालते मुनिवर रहते सदा अभेद ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४०४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४०५)

इस गाथा में कहा है कि जहां सूक्ष्म भी हिंसा पाई जाय सो धर्म नहीं है इसी अर्थ को अब स्पष्ट कहते हैं -

हिंसारंभो ण सुहो, देवणिमित्तं गुरूण कज्जेसु ।
हिंसा पावं ति मदो, दयापहाणो जदो धम्मो ॥४०५॥

अर्थ- जिससे हिंसा हो वह पाप है, धर्म है सो दयाप्रधान है ऐसा कहा गया है इसलिये देव के निमित्त तथा गुरु के कार्य के निमित्त हिंसा आरम्भ शुभ नहीं है ।

४०५. ॐ ह्रीं सूक्ष्महिंसारहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजानन्तवृषस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

हिंसारंभ पाप पहचानो धर्म दयामय ही जानो ।
देव तथा गुरु के निमित्त भी हिंसा से बचना मानो ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४०५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४०६)

वही कहते हैं-

देवगुरूण णिमित्तं, हिंसासहिदो वि होदि जदि धम्मो ।
हिंसारहिदो धम्मो, इदि जिणवयणं हवे अलियं ॥४०६॥

अर्थ- यदि देव गुरु के निमित्त हिंसा का आरम्भ भी यतिका धर्म हो तो 'धर्म हिंसा रहित

समकित पाने का ही श्रम सर्वोत्तम सर्व श्रेष्ठ जानो।
इस श्रम के बिन कोटि कोटि मानव भव अरे नेष्ठ मानो॥

है' ऐसा जिनेन्द्र भगवान का वचन अलीक (झूठा) सिद्ध होवे।

४०६. ॐ ह्रीं देवादिनिमित्तहिंसारम्भरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

निजब्रह्मधामस्वरूपोऽहं।

वीरछंद

अगर देव गुरु के निमित्त हिंसा करना भी होगा धर्म।
हिंसा रहित धर्म है, जिन वच मिथ्या होगा समझो मर्म॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा॥४०६॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि.।

(४०७)

अब इस धर्म की दुर्लभता दिखाते हैं-

इदि एसो जिणधम्मो, अलद्धपुव्वो अणाइकाले वि।
मिच्छत्तसंजुदाणं, जीवाणं लद्धिहीणाणं॥४०७॥

अर्थ- इस प्रकार से यह जिनेश्वर देव का धर्म अनादिकाल में जिनको स्व-काल आदि की प्राप्ति नहीं हुई है ऐसे मिथ्यात्व सहित जीवों के अलब्धपूर्व है अर्थात् पहिले कभी नहीं पाया।

४०७. ॐ ह्रीं स्थावरजङ्गमजीवघातनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

निरवद्यशिवस्वरूपोऽहं।

ताटंक

धर्म अनादि काल से मिथ्यात्वी ने कभी नहीं पाया।
काल लब्धि भी नहीं प्राप्त की अभी स्वकाल नहीं आया॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा॥४०७॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि.।

स्वपर विवेक न जगा निर्जतर तो पशु सम खोयी पर्याय।
इधर उधर भटके जीवन भर भ्रम अज्ञान रहा दुखदाय॥

(४०८)

अब कहते हैं कि अलब्धपूर्व धर्म को पाकर केवल पुण्य के ही आशय से सेवन नहीं करना-

एदे दहप्पयारा, पावकम्मस्स णासिया भणिया ।
पुण्णस्स य संजणया, पर पुण्णत्थं ण कायव्वा ॥४०८॥

अर्थ- ये दस प्रकार के धर्म के भेद पाप कर्म का तो नाश करने वाले और पुण्य कर्म को उत्पन्न करने वाले कहे गये हैं परन्तु केवल पुण्य ही के प्रयोजन से इनको अंगीकार करना उचित नहीं है ।

४०८. ॐ ह्रीं क्षयोपशमलब्धिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

परिपूर्णज्ञानार्णवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दश प्रकार के धर्म पाप कर्मो का तो करते है नाश ।
पुण्य कर्म उत्पन्नित करते अतः धर्म का करो प्रकाश ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४०८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४०९)

वही फिर कहते है

पुण्णं पि जो समच्छदि, संसारो तेण ईहिदो होदि ।
पुण्णं सुग्गई हेदुं, पुण्णखएणेव णिव्वाणं ॥४०९॥

अर्थ- जो पुण्य को भी चाहता है वह पुरुष संसार ही को चाहता है क्योंकि पुण्य सुगति के बन्ध का कारण है और मोक्ष पुण्य के भी क्षय से होता है ।

४०९. ॐ ह्रीं संसारकारणपुण्यकर्मरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निः संसारस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

अब तो अपना विरद निहारो निज स्वरूप को करो जुहार।
अब तो परभावों को तज जाग्रत होकर लो आत्म विचार॥

पुण्य चाह जिसके उर में है वही चाहता है संसार ।
पुण्य सुगति बंध करता है बंध नाश हित मोक्ष विचार ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४०९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४१०)

वही कहते हैं-

जो अहिलसेदि पुण्णं, सकसाओ विसयसोक्खतण्हाए ।
दूरे तस्स विसोही, विसोहिमूलाणि पुण्णाणि ॥४१०॥

अर्थ- जो कषाय सहित होता हुआ विषय सुख की तृष्णा से पुण्य की अभिलाषा करता है उसके (मन्दकषाय के अभाव के कारण) विशुद्धता दूर है और विशुद्धता है मूल कारण जिसका ऐसा पुण्यकर्म है ।

४१० ॐ ह्रीं पुण्येच्छारहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

पवित्रबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो कषाय युत सुख तृष्णा से पुण्यों की करता अभिलाष।
मंद कषाय अभाव नहीं है पुण्य बंध का भी है नाश ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह ससार विघट होगा ॥४१०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४११)

वही कहते हैं-

पुण्णासाए ण पुण्णं, जदो णिरीहस्स पुण्णसंपत्ती ।
इय जाणिऊण, जइणो, पुण्णे वि म आयरं कुणह ॥४११॥

अर्थ- क्योंकि पुण्य की वांछा से तो पुण्यबन्ध होता नहीं है और वांछारहित पुरुष के

भव जंजाल जीतना है तो शुद्ध भाव के लो निज शस्त्र।
युद्ध स्थल में चलो सजग हो पहनो निज परिणति के वस्त्र॥

पुण्य का बन्ध होता है इसलिये भी हे यतीश्वरो! ऐसा जानकर पुण्य में भी आदर (वांछा) मत करो ।

४११. ॐ ह्रीं विषय सौख्यतृष्णारहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरातङ्कस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पुण्य वांछा करने से तो होता नहीं पुण्य का बंध ।
ऐसा जान पुण्य का आदर करने वाले प्राणी अंध ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार घिट होगा ॥४११॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४१२)

वही कहते हैं-

पुण्णं बंधदि जीवो, मंदकसाएहि परिणदो संतो ।
तम्हा मंदकसाया, हेऊ पुण्णस्स ण हि वंछा ॥४१२॥

अर्थ- जीव मन्दकषायरूप परिणमता हुआ पुण्यबन्ध करता है। इसलिये पुण्यबन्ध का कारण मन्दकषाय है वांछा पुण्यबन्ध का कारण नहीं है । कक्योंकि वांछा तीव्र कषाय है ।

४१२. ॐ ह्रीं पुण्याददरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

पुण्याशारहितोऽहं ।

ताटंक

मंद कषाय रूप परिणमता प्राणी पुण्य बंध करता ।
पुण्य बंध में वांछाओं का निषेध व्यर्थ वांछा करता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

ये ही वस्त्र राग रक्षक हैं ये ही मोह शत्रु रक्षक ।
पर विभाव सारे अब छोडो ये सारे स्वभाव भक्षक ॥

(४१३)

वही कहते हैं-

किं जीवदया धम्मो, जण्णे हिंसा वि होदि किं धम्मो ।
इच्चेवमादिसंका, तदकरणं जाण णिस्संका ॥४१३॥

अर्थ- यह विचार करना कि क्या जीवदया धर्म है ? अथवा यज्ञ में पशुओं के वधरूप हिंसा होती है सो धर्म है? इत्यादि धर्म में संशय होना सो शका है इसका नहीं करना सो नि.शंका है ऐसा जान ।

४१३. ॐ ह्रीं पुण्यबन्धकारणमन्दकषायरहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

निर्वाञ्छास्वरूपोऽहं ।

ताटंक

दया धर्म है या कि नहीं है ऐसा संशय भाव न कर ।
नि:शंकित है धर्म भावना का ही उर में चिन्तन कर ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४१४)

वही कहते हैं -

दयभावो वि य धम्मो, हिंसाभावो ण भण्णदे धम्मो ।
इदि संदेहाभावो, णिस्संका णिम्मला होदि ॥४१४॥

अर्थ- निश्चय से दया भाव ही धर्म है हिंसाभाव धर्म नहीं कहलाता है ऐसा निश्चय होने पर सन्देह का अभाव होता है वह ही निर्मल नि:शंकित गुण है ।

४१४. ॐ ह्रीं यज्ञहिंसाधर्मरहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

नि:शङ्कबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दया भाव ही शुद्ध धर्म है हिंसा भाव नहीं है धर्म ।
एसा दृढ़ निश्चय ही उर में निशंकित गुण का है मर्म ॥

आत्म ध्यान से चलित न होना यही ध्यान उत्तम सम्यक्।
यदि चूके तो भव अटवी में डस लेंगे संशय तक्षक॥

चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४१५)

अब निः कांक्षित गुण को कहते हैं-

जो सग्गसुहणिमित्तं, धम्मं णायरदि दूसहतवेहिं ।
मोक्खं समीहमाणो, णिक्खंखा जायदे तस्स ॥४१५॥

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि दुद्धर तपसे भी मोक्ष की हो वांछा करता हुआ स्वर्गसुख के लिये धर्म का आचरण नहीं करता है उसके नि.कांक्षित गुण होता है ।

४१५. ॐ ह्रीं हिंसाभावरूपाधर्मरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निःसंदेहस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

स्वर्ग सुखों के लिए धर्म आचरण न करता सम्यक्दृष्टि।
मात्र मोक्ष की आकांक्षा है नि.कांक्षित गुणपति समदृष्टि॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४१६)

अब निर्विचिकित्सा गुण को कहते हैं-

दहविहधम्मजुदाणं, सहावदुग्गंधअसुइदेहेसु ।
जं णिंदणं ण कीरइ, णिव्विदिगिंछा गुणो सो हु ॥४१६॥

अर्थ- दस प्रकार के धर्म सहित मुनिराज का शरीर पहिले तो जो स्वभाव से ही दुर्गन्धित और अशुचि है और स्नानादि संस्कार के अभाव से बाह्य में विशेष अशुचि और दुर्गन्धित दिखाई देता है उसकी जो निन्दा (अवज्ञा) नहीं करना सो निर्विचिकित्सा गुण है ।

४१६. ॐ ह्रीं स्वर्गसुखनिमित्तघोरतपरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निःकांक्षास्वरूपोऽहं ।

अनुभव रस तूणीर ज्ञान लो धनुष ध्यान ले बनो सशस्त्र।
भव जंजाल जीतना है तो शुद्ध भाव के लो निज शस्त्र॥

ताटंक

दश प्रकार के धर्म सहित मुनि क शरीर दुर्गंधित है ।
उसकी निन्दा कभी न करता निर्विचिकित्सा यह गुण है॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१६॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४१७)

अब अमूढ़दृष्टि गुण को कहते हैं-

भयलज्जालाहादो, हिंसारंभो ण मण्णदे धम्मो ।
जो जिणवयणे लीणो, अमूढ़दिट्ठी हवे सो दु ॥४१७॥

अर्थ- भय, लज्जा और लाभ से हिंसा के आरम्भ को धर्म नहीं मानता है और जिनवचनों में लीन है, भगवान ने धर्म अहिंसा ही कहा है ऐसी दृढ़ श्रद्धा युक्त है वह पुरुष अमूढ़दृष्टिगुण संयुक्त है ।

४१७. ॐ ह्रीं अशुचिदेहरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्विचिकित्सास्वरूपोऽहं ।

ताटंक

भम लज्जा से हिंसा का आरंभ न धर्म मानता है ।
वही अमूढ़ दृष्टि युत है जो जिन वच सदा मानता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१७॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४१८)

अब उपगूहनगुण को कहते हैं-

जो परदोसं गोवदि, णियसुकयं जो ण पयासदे लोए ।
भवियव्वभावणरओ, उवगूहणकारओ सो हु ॥४१८॥

मोह धराशायी करने को उसका राग पुत्र मारो ।
शुक्ल ध्यान से उसका मस्तक निर्मम होकर संहारो ॥

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि दूसरे के दोषों को छिपाता है । अपने सुकृत (पुण्य) को लोक में प्रकाशित नहीं करता फिरता है ऐसी भावना में लीन रहता है कि जो भवितव्य है सो होता है तथा होगा सो उपगूहण गुण करने वाला है ।

४१८. ॐ ह्रीं भयादिवशहिंसारंभादिधर्ममान्यतारहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्भयचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

घर के दोष सदैव ढांकता आत्म प्रशंसा से है दूर ।
उपगूहन गुण का धारी है भव्य भावना से भरपूर ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४१९)

अब स्थितिकरण गुण को कहते हैं-

धम्मादो चलमाण जो अण्णं संठवेदि धम्मम्मि ।
अप्पाणं सुदिढयदि, ठिदिकरणं होदि तस्सेव ॥४१९॥

अर्थ- जो धर्म से चलायमान होते हुए दूसरे को धर्म में स्थापित करता है और अपने आत्माको भी चलायमान होने से दृढ़ करता है उसके निश्चय से स्थितिकरण गुण होता है ।

४१९. ॐ ह्रीं परदोषाच्छादनविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्दोषशिवस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

धर्म चलित जो होते करता उनको धर्म मार्ग पर थिर।
स्वयं धर्म पर दृढ़ रहता है स्थितिकरण सुगुण भीतर ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४१९॥

ज्ञानावरण दर्शनावरणी अंतराय भी क्षय होंगे ।
आत्म ज्ञान की विजय पताका जय कारों द्वारा धारो ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४२०)

अब वात्सल्य गुण को कहते हैं-

जो धम्मिएसु भत्तो, अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए ।
पियवयणं जंपंतो, वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ॥४२०॥

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि जीव धार्मिक अर्थात् सम्यग्दृष्टि श्रावकों तथा मुनियों में भक्तिवान् हो उनके अनुसार प्रवृत्ति करता हो परम श्रद्धा से प्रिय वचन बोलता हो उस भव्य के वात्सल्य गुण होता है ।

४२०. ॐ ह्रीं चलरहितनिश्चलनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अनाकुलज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

श्रावक मुनियों के प्रति विनयित मीठे वचन बोलता है ।
वात्सल्य गुण का धारी है प्रवृत्ति धर्म की करता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४२०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४२१)

अब प्रभावना गुण को कहते हैं-

जो दसभेयं धम्मं, भव्वजणाणं पयासदे विमलं ।
अप्पाणं पि पयासदि, णाणएण पहावणा तस्स ॥४२१॥

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि दसभेद रूप धर्म को भव्यजीवों के निकट अपने ज्ञान से निर्मल प्रगट करे तथा अपनी आत्मा को दस प्रकार के धर्म से प्रकाशित करे उसके प्रभावना गुण होता है ।

४२१. ॐ ह्रीं प्रियवचनरूपदासत्यविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अचलब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

अब न जरुरत रही ध्यान की जप तप व्रत के फेंको अस्त्र।
भव जंजाल जीतना है तो शुद्ध भाव के लो निजशस्त्र॥

ताटंक

आत्म धर्म को करे प्रकाशित दस धर्मो का पालन कर ।
साधर्मी परगौवत्स सम प्रीति यही प्रभावना वर ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४२१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४२२)

वही कहते हैं-

जिणसासणमाहप्पं, बहुविहजुत्तीहि जो पयासेदि ।
तह तिव्वेण तवेण य, पहावणा णिम्मला तस्स ॥४२२॥

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने ज्ञान के बल से, अनेक प्रकार की युक्तियों से वादियों का निराकरण कर तथा न्याय व्याकरण छन्द अलंकार साहित्य विद्या से उपदेश वा शास्त्रों की रचना कर तथा अनेक अतिशय चमत्कार पूजा प्रतिष्ठा और महान् दुद्धर तपश्चरण से जिनशासन के माहात्म्य को प्रगट करे उसके प्रभावना गुण निर्मल होता है ।

४२२. ॐ ह्रीं कर्ममलकलङ्करहितशुद्धपरमात्मनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।
अकलङ्कज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जिनशासन के महात्म्य को ही सतत प्रकाशित करता है।
गुण प्रभावना का स्वामी यह निर्मल गुण उर धरता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४२२॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४२३)

अब निः शंकित आदि गुण किस पुरुष के होते हैं सो कहते हैं-

पर परिणति की नियत डोलती तो चेतन घबराता है ।
निज परिणति निजभाव तोलती तो कुछ साता पाता है॥

जिनेन्द्र के वीतराग धर्म में करे तो लीलामात्र (शीघ्र काल) में ही सुख को प्राप्त हो जाता है ।

४२६. ॐ ह्रीं मोहपिशाचभ्रमरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निच्छलस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

प्राणी जैसे पुत्र कलत्र काम भोगों में रति करता ।
वैसी प्रीत धर्म में हो तो यह भव दुख सारे हरता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४२६॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४२७)

अब कहते हैं कि जो जीवलक्ष्मी चाहता है सो धर्म बिना कैसे हो?

लच्छिं वंछेइ णरो, णेव सुधम्मेसु आयरं कुणइ ।
बीएण विणा कत्थ वि, किं दीसदि सस्सणिप्पत्ती ॥४२७॥

अर्थ- यह जीव लक्ष्मी को चाहता है और जिनभाषित मुनि श्रावक धर्म में आदर (प्रीति) नहीं करता है सो लक्ष्मी का कारण तो धर्म है, उसके बिना कैसे आवे ? जैसे बीज के बिना धान्य की उत्पत्ति क्या कहीं दिखाई देती है? नहीं दिखाई देती है ।

४२७. ॐ ह्रीं कामभोगरतिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

मदनरहितोऽहं ।

ताटंक

चाह लक्ष्मी की है उर में किन्तु धर्म में प्रीत नहीं ।
धर्म सुखों का बीज बीज बिन कही धान्य उत्पत्ति नहीं ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४२७॥

ॐ ह्रीं धर्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

खरा उतरता है काँटे पर तभी भाव बढ़ जाता है ।
फिर तो चेतन निज स्वभाव की शुद्ध तुला चढ़ जाता है॥

(४२८)

अब धर्मात्मा जीव की प्रवृत्ति कहते हैं-

जो धम्मत्थो जीवो, सो रिउवग्गे वि कुणदि खमभावं ।
ता परदव्वं वज्जइ, जणणिसमं गणइ परदारं ॥४२८॥

अर्थ- जो जीव धर्म में स्थित है वह शत्रुओं के समूह पर भी क्षमा भाव करता है दूसरे के द्रव्य को त्यागता है, ग्रहण नहीं करता है परस्त्री को माता बहिन कन्या के समान समझता है ।

४२८. ॐ ह्रीं लक्ष्मीवाञ्छारहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

बोधलक्ष्मीस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो धर्मी है शत्रु समूहों पर भी क्षमा भाव करता ।
पर द्रव्यों के ग्रहण त्याग से रहित शील पालन करता ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४२८॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४२९)

वही कहते हैं-

ता सव्वत्थ वि कित्ती, ता सव्वस्स वि हवेइ वीसासो ।
ता सव्वं पिय भासइ, ता सुद्धं माणसं कुणई ॥४२९॥

अर्थ- जो जीव धर्म में स्थित है तो उसकी सब लोक में कीर्ति होती है उसका सब लोक विश्वास करता है वह पुरुष सबको प्रियवचन कहता है जिससे कोई दुःख नहीं पाता है और वह पुरुष अपने तथा दूसरे के मन को शुद्ध (उज्ज्वल) करता है, किसी को इससे कालिमा नहीं रहती है वैसे ही इसको भी किसी से कालिमा (मानसिक कुटिलता) नहीं रहती है ।

४२९. ॐ ह्रीं रत्नसुवर्णादिपपरिहाररहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

शांत-प्रशांतस्वरूपोऽहं ।

परभावों के बंधन तज निज भावों में जुड़ जाता है ।
औदारिक आदिक पांचों तन तत्क्षण पूर्ण मिटाता है ॥

वीरछंद

धर्मी कीर्ति युक्त होता है होता त्रिभुवन में विख्यात ।
प्रिय वच शोभित, नहीं कुटिलता उसमें है ऐसा प्रख्यात॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४२९॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४३०)

अब धर्म का माहात्म्य कहते हैं-

उत्तमधम्मेण जुदो, होदि तिरक्खो वि उत्तमो देवो ।
चंडालो वि सुरिंदो, उत्तमधम्मेण संभवदि ॥४३०॥

अर्थ- सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्म से युक्त तिर्यंच भी उत्तम देव होता है सम्यक्त्व सहित उत्तम धर्म से चांडाल भी देवों का इन्द्र हो जाता है ।

४३०. ॐ ह्रीं शुद्धचित्तविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मलबोधसागरस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

समकित युक्त धर्म युक्त तिर्यंच देव हो जाता है ।
चांडाल भी स्वर्गों में जा इन्द्र आदि हो जाता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४३०॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४३१)

वही कहते हैं-

अग्गी वि य होदि हिमं, होदि भुयंगो वि उत्तमं रयणं ।
जीवस्स सुधम्मादो, देवा वि य किंकरा होंति ॥४३१॥

अर्थ- इस जीव के उत्तम धर्म के प्रभाव से अग्नि तो हिम (शीतल पाला) हो जाती है

धर्मध्यान का क्रिया आचरण, अगर प्रशंसा के हित है ।
तो अज्ञानी जन को ठगने, में तू हुआ दत्त चित है ॥

सांप भी उत्तम रत्नों की माला हो जाता है देव भी किंकर हो जाते हैं ।

४३१. ॐ ह्रीं सम्यक्त्वाणुव्रतादिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

सहजचैतन्यार्णवस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

उत्तम धर्म प्रभाव प्राप्त कर ज्वाला भी शीतल होती ।
सर्प रत्न माला बनता किंकर को सुर पदवी होती ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४३१॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि. ।

(४३२)

वही कहते हैं-

अलियवयणं पि सच्चं, उज्जमरहिए वि लच्छिसंपत्ती ।
धम्मपहावेण णरो, अणओ वि सुहंकरो होदि ॥४३२॥

अर्थ- धर्म के प्रभाव से जीव के झूठ वचन भी सत्य वचन हो जाते हैं उद्यम रहित को भी लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाती है और अन्यान्य कार्य भी सुख के करने वाले हो जाते हैं ।

४३२. ॐ ह्रीं महाविषधरभुजङ्गाद्युपसर्गरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यामृतस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

धर्म भाव से झूठ वचन भी सत्य वचन हो जाते है ।
घोर गरल अमृत बन जाता शत्रु मित्र बन जाते है ॥
अधिक क्या कहें महाविपत्ति त्वरित संपति बन जाती है।
धर्म प्रभाव श्रेष्ठ है जग में जगती जय जय गाती है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४३२॥

जीवन दृश्य बदल जाएगा, जब देखेगा निज की ओर।
अघ के बादल विघट जाएंगे हो जाएगी समकित भोर ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४३३)

अब धर्मरहित जीव की निन्दा करते हैं-

देवो धम्मचत्तो, मिच्छत्तवसेण तरुवरो होदि ।
चक्की वि धम्मरहिओ, णिवडइ णरए ण संदेहो ॥४३३॥

अर्थ- धर्मरहित मिथ्यात्व के वश से देव भी वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीव हो जाता है धर्मरहित चक्रवर्ती भी नरक में जा पड़ता है संपत्ति की प्राप्ति नहीं होती उसमें भी कोई सन्देह नहीं है ।

४३३. ॐ ह्रीं महाविषधरभुजङ्गाद्युपसर्गरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यपीयूषस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मिथ्या भ्रम वश देव एक इन्द्रिय तक हो जाता है ।
चक्रवर्त्ती भी नरकों में जा घोर महादुख पाता है ॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा ।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा ॥४३३॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४३४)

वही कहते हैं-

धम्मविहीणो जीवो, कुणइ असक्कं पि साहसं जइ वि ।
तो ण पावदि इट्ठं, सुट्ठु अणिट्ठं परं लहदि ॥४३४॥

अर्थ- धर्मरहित जीव यद्यपि बड़ा असह्य साहस (पराक्रम) भी करता है तो भी उसको इष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है केवल उल्टी उत्कट अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

४३४. ॐ ह्रीं व्याघ्रव्यालादिविपदरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरुपद्रवज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मैं निर्विकल्प हूँ शुद्ध बुद्ध, इतना तो अंगीकार करो।
शुद्धपयोग मय परम पारिणामिक स्वभाव स्वीकार करो॥

धर्म हीन साहस असहय कर कभी न इष्ट वस्तु पाता।
केवल दुख ही पाता है वह अरु अनिष्ट वस्तु पाता॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा॥४३४॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि.।

(४३५)

वही कहते है-

इय पच्चक्खं पेच्छइ धम्माहम्माण विविहमाहप्पं।
धम्मं आयरह सया, पावं दूरेण परिहरह॥४३५॥

अर्थ- हे प्राणियों! इस प्रकार से धर्म और अधर्म का अनेक प्रकार का माहात्म्य प्रत्यक्ष देखकर तुम सदा धर्म का आदर करो और पाप को दूर ही से छोड़ो।

४३५. ॐ ह्रीं कुदेवाद्याराधनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

निजचैतन्यनाथस्वरूपोऽहं।

ताटंक

धर्म अधर्म जानकर प्राणी सदा धर्म को दो आदर।
पाप छोड़कर धर्म मार्ग पर सदा चलो जो है सुखकर॥
चिन्तन करो धर्म अनुप्रेक्षा उर में धर्म प्रगट होगा।
पाप पुण्य परभाव जाएगा यह संसार विघट होगा॥४३५॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि.।

महाअर्घ्य

गीतिका

धर्म वस्तुस्वभाव है सबसे प्रथम यह जान लो।
आत्मा का धर्म सुख है धर्म सुखमय मान लो॥
क्रिया कान्डों में नहीं है धर्म यह निर्णय करो।
पुण्य भावों में नहीं है धर्म यह निश्चय करो॥
धमर्म पाना है तुम्हें तो आत्म का चिन्तन करो।
धर्म निज उर में प्रगटकर कर्म के बंधन हरो॥

जो स्वरूप वेत्ता होता है, वही भाव श्रुत जल पीता है ।
सर्व द्रव्य गुण पर्यायों को, जान अमर जीवन जीता है ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय महाअर्घ्यं नि. ।

जयमाला

छंद सरसी

ज्ञान भाव रस पान करूँ तो जागे निज भगवान ।
राग भाव मेरे भीतर से प्रभु होगा अवसान ॥
मोह दुष्ट ने मुझे भुलाया बिछा राग का जाल ।
सीधा साधा चेतन देखो हुआ बहुत वाचाल ॥
मेरी सुमति जगा दो स्वामी दे दो सम्यक् ज्ञान ।
महा मोह मिथ्यात्व नाश कर दो सम्यक् श्रद्धान ॥
आस्रव भाव विनाश करूं प्रभु संवर का दो दान ।
मुक्ति मार्ग पर आ जाऊँ मैं तत्क्षण करूं प्रयाण ॥
कर्म घाति क्षय करके स्वामी पाऊं केवल ज्ञान ।
फिर अघातिया क्षय करके मैं पाऊं पद निर्वाण ॥
ऐसी शक्ति हृदय में जागे करूं आत्म कल्याण ।
अब तो स्वामी जागे मेरा आत्म स्वभाव प्रधान ॥
परभावों का सदा सदा को किया पूर्ण अवसान ।
मोह गया रागादि गए निज परिणति देख महान ॥
पुण्य भाव की परछाई भी हो गई अर्न्तधान ।
मिला अचानक मुक्ति मार्ग पर निज शिवपुर का यान ॥

ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षा प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद :

दोहा

धर्म भावना धर्म मय से होता सद्धर्म ।
पल भर को रहता नहीं शेष कहीं भी कर्म ॥

इत्याशीर्वाद :

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं धर्म्मानुप्रेक्षाय नमः

तभी सिद्धपुर इसको मिलता तीन लोक हर्षाता है ।
शत शत इन्द्र वंदना करते त्रिभुवन गाथा गाता है ॥

पूजन क्रमांक १४

द्वादश तप पूजन

स्थापना

छंद ताटंक

अंतरंग तप छह प्रकार का अंतरंग में लाऊं मैं ।
तथा बाहय तप छह प्रकार का निरतिचार ही पाऊं मैं ॥
तप से ही निर्जरा पूर्ण होती बिन तप निर्जरा नहीं ।
यह सकाम निर्जरा कार्य कर पर अकाम निर्जरा नहीं ॥
बने तपोमय जीवन मेरा निज स्वरूप में कर वर्त्तन ।
सर्व कर्म रज नष्ट करूँ मैं तोड़ चतुर्गति के बंधन ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद विधाता

सहज आनंदघन हूँ मैं शान्त जल मेरे भीतर है ।
त्रिविध रोगों का क्षय करता स्वभावी भाव भीतर है ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

लोकालोक प्रकाशक निज पर ज्ञायक जग विख्याता है।
सिद्धचक्र से सम्बन्धित है केवल दृष्टा ज्ञाता है ॥

सहज आनंदघन चंदन परम शीतल शिवंकर है ।
भवातप नाश करने को स्वभावी भाव भीतर है ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय संसारताप विनासनाय चंदनं नि. ।

सहज आनंदघन अक्षत गुणों का पुंज है पावन ।
स्वपद अक्षय प्रदाता है स्वभावश्रित है मन भावन ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

सहज आनंदघन तरु पुष्प काम वाणों को क्षय करते ।
सहज निष्काम भावी हैं विभावी भाव जय करते ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

सहज आनंदघन प्रिय चरु क्षुधा का रोग हरते है ।
सहज सुख तृप्ति दाता हैं स्वरस आनंद भरते है ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

सहज आनंदघन की ज्योति ही अब झिलमिलाती है ।
मोह आधीन पर परिणति नाश लख तिलमिलाती है ॥

सर्व विकल्प वमन कर अपनी परम समाधि मध्य जमजा।
यह शिव सुख आनंद अतीन्द्रिय पाले जिन वच में थम जा॥

महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

सहज आनंदघन ध्रुव धूप ध्रुवधामी स्वध्यानी है ।
कर्म वसु नष्ट करता जो वही तो पूर्ण ज्ञानी है ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

सहज आनंदघन अपना स्वभावी फल का दाता है ।
मोक्षफल देने वाला है सर्वथा राग घाता है ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

सहज आनंदघन के अर्घ्य पद देते अनर्घ्य अपना ।
शुष्क संसार सागर कर चतुर्गति करते हैं सपना ॥
महाव्रत धार द्वादश तप करूंगा मोक्ष जाने को ।
निर्जरा कर्म करना है शाश्वत मोक्ष पाने को ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि. ।

अर्घ्यावलि

(४३६)

अब धर्मानुप्रेक्षा की चूलिकाको कहते हुए आचार्य बारह प्रकार तपके विधान का निरूपण करते हैं-

बारसभेओ भणिओ, णिज्जरहेऊ तवो समासेण ।
तस्स पयारा एदे, भणिज्जमाणा मुणेयव्वा ॥४३६॥

कर्मोपाधि विहीन पारिणामिक स्वभाव का आश्रय हो ।
नित्य शुद्ध संपदा स्रोत ध्रुव उर में रंच न संशय हो ॥

अर्थ- कर्म निर्जरा का कारण तप बारह प्रकार का संक्षेप से जिनागम में कहा गया है उसके भेद जो अब कहेंगे सो जानना चाहिये ।

४३६. ॐ ह्रीं दुर्जनआदिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

बोधश्रीस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

कर्म निर्जरा का कारण द्वादश प्रकार का तप जानो ।
अनशन अवमौदर्य तथा व्रत परिसंख्यान हृदय आनो॥
रस परित्याग विविक्त शैय्यासन काय क्लेश छह बाह्य सुतप।
प्रायश्चित्त विनय वैय्यावृत स्वाध्याय व्युतसर्ग सुतप ॥
ध्यान मिला कर अंतरंग तप छह प्रकार का बतलाया।
वीतराग निर्ग्रंथ दिगंबर मुनियों ने ये अपनाया ॥
यह द्वादश तप पालन करके कर्म निर्जरा करूं महान।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४३६॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४३७)

पहिले अनशन तपको चार गाथाओं से कहते हैं-

उवसमणं अक्खाणं, उववासो वण्णिदो मुणिंदेहि ।
तम्हा भुंजुंता वि य जिदिंदिया होंति उववासा ॥४३७॥

अर्थ- मुनिंद्रों ने संक्षेप इन्द्रियों को विषयों में न जाने देने को, मन को अपने आत्मस्वरूप में लगाने को उपवास कहा है इसलिए जितेन्द्रिय आहार करते हुए भी उपवास सहित ही होते हैं ।

४३७. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वासंयमादिभावरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानश्रीस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

इन्द्रिय मन सब वश में करना निज आत्मा में करना वास।
यदि आहार ले रहे फिर भी मुनि को होता है उपवास ॥

औपशमिक दो भेद जान लो क्षायिक के जानो नौ भेद।
भेद अठारह क्षयोपशम के भाव औदयिक इक्कीस भेद॥

द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४३७॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४३८)

वही कहते हैं-

जो मणइंदियविजई, इहभवपरलोयसोक्खणिरवेक्खो ।
अप्पाणे विय णिवसइ, सज्झायपरायणो होदि ॥४३८॥

अर्थ- जो मन और इन्द्रियों को जीतने वाला है इस भव और परभव के विषयसुखों में अपेक्षा रहित है, वांछा नहीं करता है अपने आत्मस्वरूप में ही रहता है तथा स्वाध्याय में तत्पर है । और-

४३८. ॐ ह्रीं ख्यातिपूजालाभादिपरिणतिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

चेतनश्रीस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

इन्द्रिय विजयी यह भव पर भव सुख वांछा रहित प्रवर।
आत्म स्वरूप मध्य रहता है स्वाध्याय में है तत्पर ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४३८॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४३९)

वही कहते हैं-

कम्माणणिज्जरट्ठं, आहारं परिहरेइ लीलाए ।
एगदिणादिपमाणं, तस्स तवं अणसणं होदि ॥४३९॥

अर्थ- एक दिन की मर्यादा से कर्मों की निर्जरा के लिए लीलामात्र ही क्लेशरहित हर्ष से आहार को छोड़ता है उसके अनशन तप होता है।

तीन भेद हैं भाव पारिणामिक के ऐसे त्रेपन भेद ।
किन्तु आत्मा तो अखंड है यह तो शाश्वत सदा अभेद॥

४३९. ॐ ह्रीं अक्षोपशमनविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरक्षस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

कर्मो की निर्जरा हेतु आहार त्यागता हर्षित हो ।
एक दिवस की मर्यादा ले उसको ही अनशन तप हो ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४३९॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४०)

वही कहते हैं-

उववासं कुव्वाणो, आरंभ जो करेदि मोहादो ।
तस्स किलेसो अवरं, कम्माणं णेव णिज्जरणं ॥४४०॥

अर्थ- जो उपवास करता हुआ मोहसे आरम्भ (गृहकार्यादि) को करता है उसके पहिले तो गृहकार्य का क्लेश था ही और दूसरा भोजन के बिना क्षुधा तृषाका और क्लेश हो गया कर्मो का निर्जरण तो नहीं हुआ ।

४४०. ॐ ह्रीं इहपरलोकसौख्यनिरपेक्षनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजसौख्यश्रीस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो करते उपवास किन्तु आरंभ मोह वश करते है ।
क्षुधा तृषा गृह कार्य क्लेश कर कर्म न निर्जर करते है॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४०॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४१)

अब अवमौदर्य तपको दो गाथाओं से कहते हैं-

वस्तु स्वभाव सदा निर्दोषी है सदोष केवल पर्याय ।
जीव स्वानुभव से ही पाता शाश्वत सुख आनंद प्रदाय ॥

आहारगिद्धिरहिओ, चरियामग्गेण पासुगं जोग्गं ।
अप्पयरं जो भुंजइ, अवमोदरियं तवं तस्स ॥४४१॥

अर्थ- जो तपस्वी आहार की अतिचाह से रहित होकर शास्त्रोक्त चर्याकी विधि से योग्य प्रासुक आहार अति अल्प लेता है उसके अवमौदर्य तप होता है ।

४४१. ॐ ह्रीं कर्मनिर्जराविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

आनंदामृताहारस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो आहार गृद्धि विरहित हो विधि पूर्वक प्रासुक आहार।
बहुत अल्प लेते है उनको अवमौदर्य सुतप साकार ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४१॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४२)

वही कहते हैं-

जो पुण कित्तिणिमित्तं, मायाए मिट्ठभिक्खलाहट्ठं ।
अप्पं भुंजदि भोज्जं, तस्स तवं णिप्फलं बिदियं ॥४४२॥

अर्थ- जो मुनि कीर्ति के निमित्त तथा माया (कपट) से और भोजन के लाभ के लिए अल्प भोजन करता है (तपका नाम करता है) उसके दूसरा अवमौदर्य तप निष्फल है।

४४२. ॐ ह्रीं मोहकृतारंभरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरारंभब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो मुनि कीर्ति हेतु माया से मिष्टाहार लाभ के हेतु ।
भोजन लेता अल्प उसे तप अवमौदर्य न होता, केतु ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४२॥

जो पिंडस्थ पदस्थ ध्यान रूपस्थ और हैं रूपातीत ।
उनका मनन करो जिन वच सुन हो जाओगे दोषातीत॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४३)

अब वृत्तिपरिसंख्यान तप को कहते हैं-

एगादिगिहपमाणं, किं वा संकप्पकप्पियं विरसं ।
भोज्जं पसु व्व भुंजदि, वित्तिपमाणं तवो तस्स ॥४४३॥

अर्थ- जब मुनि आहार के लिए चले तब पहिले मन में ऐसी प्रतिज्ञा करे कि आज एक ही घर आहार मिलेगा तो लेंगे, नहीं तो लौट आवेंगे तथा दो घर तक जायेंगे एक रसकी, देने वाले की, पात्र की प्रतिज्ञा करे कि ऐसा दातार ऐसी रीति से ऐसे पात्र में लेकर देगा तो लेंगे तथा आहार की प्रतिज्ञा करे कि सरस नीरस या अमुक अन्न मिलेगा तो लेंगे इत्यादि वृत्ति की संख्या प्रतिज्ञा मनमें विचार कर चले वैसी ही विधि मिले तो आहार ले अन्यथा न ले और आहार पशु गौ आदि की तरह करे उसके वृत्तिपरिसंख्यान तप है ।

४४३. ॐ ह्रीं आहारगृद्धिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्लोभब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो मुनि एकादिक गृह अथवा अन्य प्रतिज्ञा ले उर धार।
गौ समान भोजन ले उसको वृत परिसंख्या तप साकार॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४३॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४४)

अब रसपरित्याग तपको कहते हैं-

संसारदुक्खतट्ठो, विससमविसयं विचिंतमाणो जो ।
णीरसभोज्जं भुंजइ, रसचाओ तस्स सुविसुद्धो ॥४४४॥

अर्थ- जो मुनि संसार के दुःख से तप्तायमान होकर ऐसे विचार करता है कि इन्द्रियों के विषय विषसमान हैं विष खाने पर तो एक ही बार मरता है और विषय सेवन करने

नित्य निरंजन निज परमात्म तत्त्व में पर का नहीं निवास।
प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग बंध को रंच नहीं अवकाश॥

पर बहुत जन्म मरण होते हैं ऐसा विचार कर नीरस भोजन करता है उसके रसपरित्याग तप निर्मल होता है ।

४४४. ॐ ह्रीं मायासहितात्पभोजनविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्मायाशिवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

भवदुख से तप्तायमान हो इन्द्रिय विषय गरल सम जान।
रस परित्याग सतत करता वृत परिसंख्या तप उसका मान ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४४॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४५)

अब विविक्तशय्यासन तपको कहते हैं-

जो रायदोसहेदू आसणसिज्जादियं परिच्चयइ ।
अप्पा णिव्विसय सया, तस्स तवो पंचमो परमो ॥४४५॥

अर्थ- जो मुनि रागद्वेष के कारण आसन शय्या आदि को छोड़ता है तथा सदा अपने आत्मस्वरूप में रहता है और इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होता है उस मुनि के पांचवां तप विविक्तसय्यासन उत्कृष्ट होता है ।

४४५. ॐ ह्रीं वृत्तिपरिसंख्याख्यतपविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

बोधश्रीस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

राग द्वेष के हेतु साधु आसन शैय्यादिक तजता है ।
आत्म वास करता विविक्त शैय्यासन व्रत उर धरता है ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४५॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

मान नहीं अपमान नहीं है नहीं विभाव स्थान कहीं ।
हर्ष अहर्ष स्थान नहीं है नहीं मार्गणा स्थान कहीं ॥

(४४६)

वही कहते हैं-

पूजादिसु णिरवेक्खो, संसारसरीरभोगणिव्विण्णो ।
अब्भंतरतवकुसलो, उवसमसीलो महासंतो ॥४४६॥

अर्थ- जो महामुनि पूजा आदि में निरपेक्ष है, अपनी पूजा महिमादि नहीं चाहता है संसार, शरीर और भोगों से विरक्त है स्वाध्याय ध्यान आदि अन्तरंग तपों में प्रवीण है, ध्यानाध्ययन का निरन्तर अभ्यास रखता है उपशमशील मन्दकषायरूप शान्तपरिणाम ही है स्वभाव जिसका ऐसा है तथा महा पराक्रमी है, क्षमादिपरिणाम युक्त है ।

४४६. ॐ ह्रीं नीरसभोजनादिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यरसाहारस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पूजाआदिक भाव रहित है भव तन भोग विरक्त सदा ।
ध्यान अध्ययन में रत रहता अभ्यंतर तप युक्त सदा ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४६॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४७)

वही कहते हैं

जो णिवसेदि मसाणे, वणगहणे णिज्जणे महाभीमे ।
अण्णत्थ वि एयंते, तस्स वि एदं तवं होदि ॥४४७॥

अर्थ-वह श्मशान भूमि में, गहन वन में, निर्जन स्थान में, महाभयानक उद्यान में और अन्य भी ऐसे एकान्त स्थानों में रहता है उसके निश्चय से यह विविक्तशय्यासन तप होता है।

४४७. ॐ ह्रीं आसनशय्यादिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

बोधासनस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

निरुपराग जिसका स्वरूप है उसको कोई बंध नहीं ।
नित्य निरंजन सतत जाग्रत पर में होता अंध नहीं ॥

उपशम भावी पराक्रमी बन पर्वत निर्जन वन शमशान ।
है एकान्त वास उस मुनि को विविक्त शैय्यासन तप जान॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४७॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४८)

अब कायक्लेशतपको कहते हैं-

दुस्सहउवसग्गजई, आतावणसीयवायखिण्णो वि ।
जो ण वि खेदं गच्छदि, कायकिलेसो तवो तस्स ॥४४८॥

अर्थ- जो मुनि दुःसह उपसर्ग को जीतने वाला है आताप शीत वात पीड़ित होकर भी खेद को प्राप्त नहीं होता है चित्त में क्षोभ भी नहीं करता है उस मुनि के कायक्लेश नामक तप होता है ।

४४८. ॐ ह्रीं संसारशरीरभोगनिर्विण्णविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।
अशरीरसिद्धस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

दुःसह उपसर्गो को जय करता आताप शीत सहता ।
खेद न करता क्षोभ न करता वह तप काय क्लेश करता॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करू प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४८॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४४९)

अब छह प्रकार के अन्तरंग तप का व्याख्यान करेंगे । पहिले प्रायश्चित नामक तप को कहते हैं-

दोसंण करेदि सयं, अण्णं पि ण कारएदि जो तिविहं ।
कुव्वाणं पि ण इच्छदि, तस्स विसोही परा होदि ॥४४९॥

द्वार द्वार तू भटक रहा है बन कर आशाधारी श्वान ।
अनुभव रस का रसिया बनजा करले अपना ही कल्याण॥

अर्थ- जो मुनि मनबचनकाय से स्वयं दोष नहीं करता है, दूसरे से भी दोष नही कराता है और करते हुए को भी अच्छा नहीं मानता है उसके उत्कृष्ट विशुद्धि होती है ।

४४९. ॐ ह्रीं गहनवनादिविचरणविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

शाश्वतलक्ष्मीधामस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मन वच काया कृत कारित अनुमोदन से न रंच भी दोष।
उस मुनि को प्रायश्चित तप है वह मुनि विशुद्धता का कोष॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४४९॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४५०)

वही कहते हैं-

अह कह वि पमादेण य, दोसो जदि एदि तं पि पयडेदि ।
णिद्दोससाहुमूले, दसदोसविवज्जिदो होदुं ॥४५०॥

अर्थ- किसी प्रमाद से अपने चारित्र में दोष आया हो तो उसको निर्दोष आचार्य के पास दस दोषों से रहित होकर प्रकट करे, आलोचना करें ।

४५०. ॐ ह्रीं कायक्लेशतपविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

समतापुंजस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

यदि प्रमाद का दोष लगा हो तो निर्दोष साधु के पास ।
दश दोषों से रहित प्रकट करता तप आलोचना विकास॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५०॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

ज्ञान स्वरूपी सभी जीव हैं ऐसा ही समभाव विचार ।
उसको ही सामायिक जानो यह जिनवचन परम हितकार॥

(४५१)

वही कहते हैं-

जं किं पि तेण दिण्णं, तं सव्वं सो करेदि सद्धाए ।
णो पुण हियए संकदि, किं थोवं किं पि वहुयं वा ॥४५१॥

अर्थ- दोषो की आलोचना करने के बाद मे जो कुछ आचार्य ने प्रायश्चित दिया हो उस सबही को श्रद्धापूर्वक करे और हृदय में ऐसी शंका न करे कि यह प्रायश्चित दिया सो थोडा है या बहुत है ।

४५१. ॐ ह्रीं कृतकारितानुमतरूपदोषरहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

सदानिर्दोषस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

दोषालोचन के पश्चात सुगुरु जो प्रायश्चित देता ।
श्रद्धा पूर्वक प्रायश्चित करता नही खेद उर में लेता ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५१॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४५२)

वही कहते हैं-

पुणरवि काउं णेच्छदि, तं दोसं जइ वि जाइ सयखंडं ।
एवं णिच्छयसहिदो, पयच्छित्तं तवो होदि ॥४५२॥

अर्थ- लगे हुए दोष का प्रायश्चित लेकर उस दोष को करना न चाहे, यदि अपने सौ टुकड़े भी हो जायं तो भी न करे ऐसे निश्चय सहित प्रायश्चित नामक तप होता है ।

४५२. ॐ ह्रीं दशदोषरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्विकल्पचित्स्वरूपोऽहं ।

ताटंक

सहज ज्ञान जयवंत सदा ही है चारित्र सदा जयवंत ।
शुद्ध सहज परमात्म तत्त्व में संस्थित चेतन महिमावंत ॥

दोषों का प्रायश्चित लेकर फिर न दोष करता किंचित ।
तन के हों शत खंड न करता दोष वही है प्रायश्चित ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५२॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४५३)

वही कहते हैं-

जो चिंतइ अप्पाणं, णाणसरूवं पुणा पुणो णाणी ।
विकहादिविरत्तमणो, पायच्छित्तं वरं तस्स ॥४५३॥

अर्थ- जो ज्ञानी मुनि आत्मा को ज्ञानस्वरूप बारम्बार चिंतवन करता है और विकथादिक प्रमादों से विरक्त होता हुआ ज्ञान ही का निरन्तर सेवन करता है उसके श्रेष्ठ प्रायश्चित होता है ।

४५३. ॐ ह्रीं प्रायश्चित्तादिविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निष्कलस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो ज्ञानी मुनि आत्म चिंतवन ही करता है बारंबार ।
विकथादिक से विरक्त हो उसको प्रायश्चित साकार ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५३॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४५४)

अब विनय तपको तीन गाथाओं में कहते हैं-

विणयो पंचपयारो, दंसणणाणे तहा चरित्ते य ।
बारसभेयम्मि तवे, उवयारो बहुविहो णेओ ॥४५४॥

अर्थ- विनय पांच प्रकार का है दर्शन में, ज्ञान में तथा चारित्र में और बारह प्रकार

दोष अठारह रहित अनाकुल अच्युत समयसारगुणवंत।
समरस द्वारा सदा पूजने योग्य महान अनादि अनंत ॥

के तप में विनय और उपचार विनय इसप्रकार यह अनेक प्रकार का जानना चाहिये।

४५४. ॐ ह्रीं शतखण्डरूपदोषविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

दोषेच्छारहितोऽहं ।

वीरछंद

दर्शन ज्ञान चारित्र सुतप उपचार विनय है पांच प्रकार ।
उन्हें जानकर पालन करता उसको विनय सुतप साकार॥
द्वादश तप का पान करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५४॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४५५)

लवही कहते हैं

दंसणणाणचरित्ते, सुविसुद्धो जो हवेइ परिणामो ।
वारसभेदे वि तवे, सो च्चिय विणओ हवे तेसिं ॥४५५॥

अर्थ- दर्शनज्ञानचारित्र में और बारह प्रकार के तप में जो विशुद्ध परिणाम होते हैं वह ही उनका विनय है ।

४५५. ॐ ह्रीं विकथाविरक्तचित्तविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नण ।

सहजानंदश्रीस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दर्शन ज्ञान चरित्र तथा द्वादश तप में विशुद्ध परिणाम ।
वह ही मुनि का दोष रहित तप विनय कहाता सुखका धाम॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५५॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४५६)

वही कहते हैं-

राग द्वेष परिहार पूर्वक जो सामायिक वह समभाव ।
उसको ही समायिक जानो श्री केवली वच का भाव ॥

रयणत्तयजुत्ताणं, अणुकूलं जो चरेदि भत्तीए ।
भिच्चो जह रायाणं, उवयारो सो हवे विणओ ॥४५६॥

अर्थ- जैसे राजा के नोकर राजा के अनुकूल प्रवृत्ति करते हैं वैसे ही जो रत्नत्रय के धारक मुनियों के अनुकूल भक्तिपूर्वक आचरण करता हे सो उपचार विनय है।

४५६ ॐ ह्रीं पञ्चप्रकारविनयविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।
निर्मदज्ञानश्रीस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

राजा के किकर समान जो रत्नत्रय धारक अनुकूल ।
भक्ति पूर्वक प्रवृत्ति करता वह उपचार विनय सुखकूल ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५६॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि ।

(४५७)

अब वैयावृत्य तपको दो गाथाओं में कहते हैं-

जो उवयरदि जदीणं, उवसग्गजराइखीणकायाणं ।
पूजादिसु णिरवेक्खं, वेज्जावच्चं तवो तस्स ॥४५७॥

अर्थ जो अपनी पूजा आदि में अपेक्षा रहित होकर उपसर्ग पीडित तथा जरा रोगादि से क्षीणकाय यतियों का अपनी चेष्टा से, उपदेश से और अल्प वस्तु से उपकार करता है उसके वैयावृत्य नामक तप होता है ।

४५७. ॐ ह्रीं द्वादशविधतपविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।
निर्मलबोधश्रीस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

निस्पृह होकर रोगी मुनियों की सेवा है वैय्यावृत्य ।
उपसर्गो से पीड़ित क्षीणकाय मुनि की सेवा सत्कृत्य ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।

वचन दड मन दंड काय दडों से विरहित है निर्दड ।
निर्भय निरालंब निर्दोषी निर्मल निश्चय एक अखंड ॥

सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊ अपना पद निर्वाण ॥४५७॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(४५८)

वही कहते हैं-

जो वावरइ सरूवे, समदम भावम्मि सुद्धिउवजुत्तो ।
लोयववहारविरदो, वेज्जावच्चं परं तस्स ॥४५८॥

अर्थ- जो मुनि शमदमभावरूप अपने आत्मस्वरूप मे शुद्धोपयोगमय प्रवृत्ति करता है और लोकव्यवहार से विरक्त होता है वैयावृत्य होता है ।

४५८ ॐ ह्री उपचारविनयविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम ।

शुद्धोऽहं ।

वीरछंद

जो मुनि शमदम भाव रूप शुद्धपयोग में रहे प्रवृत्त ।
जग व्यवहारो से विरक्त है उसको निश्चय वैय्यावृत ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करू प्रभु पाऊ अपना पद निर्वाण ॥४५८॥

ॐ ह्री द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्य नि ।

(४५९)

अब स्वाध्याय तप को छह गाथाओं से कहते हैं-

परतत्तीणिरवेक्खो, दुट्ठवियप्पाण णासणसमत्थो ।
तच्चविणिच्छयहेदू, सज्झाओ ज्झाणसिद्धियरो ॥४५९॥

अर्थ- जो मुनि दूसरे की निन्दा मे निरपेक्ष (वांछारहित) होता है मनके दुष्ट विकल्पो का नाश करने में समर्थ होता है उसके तत्व के निश्चय करने का कारण और ध्यान की सिद्धि करने वाला स्वाध्याय नामक तप होता है।

४५९. ॐ ह्रीं वैयावृत्यतपविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नम. ।

बुद्धोऽहं ।

पंचम भाव भावना से पंचमगति पाते हैं प्राणी ।
पंचाचार युक्त होता जो वही शुद्ध होता ज्ञानी ॥

वीरछंद

निन्दा में निरपेक्ष विकल्पों के क्षय में जो पूर्ण समर्थ ।
तत्त्व ज्ञान हित ध्यान सिद्धि हित स्वध्याय तप करता नित्य॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४५९॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६०)

वही कहते हैं-

पूयादिसु णिरवेक्खो, जिणसत्थं जो पढेइ भत्तीए ।
कम्ममलसोहणट्ठं, सुयलाहो सुहयरो तस्स ॥४६०॥

अर्थ- जो मुनि अपनी पूजा आदि में निरपेक्ष होता है और कर्मरूपी मैल का नाश करने के लिए भक्तिपूर्वक जिनशास्त्र को पढता है उसको श्रुत का लाभ सुखकारी होता है।

४६०. ॐ ह्रीं लोकव्यवहारविरतविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

शमश्रीस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पूजा की वांछा से विरहित कर्म रूप मल नाशन हेतु ।
भक्ति सहित जिनशास्त्र पाठ नित करना है सुख लाभ सुहेतु॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६०॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६१)

वही कहते हैं-

जो जिणसत्थं सेवदि, पंडियमाणी फलं समीहंतो ।
साहम्मियपडिकूलो, सत्थं पि विसं हवे तस्स ॥४६१॥

अर्थ- जो पुरुष जिनशास्त्र तो पढ़ता है और अपनी पूजा लाभ और सत्कार को चाहता

सदा परिग्रह प्रपंच विरहित ज्ञानारूढ़ तत्त्व निष्णांत ।
अन्तःस्तत्त्व दुर्ग में रहता परम भाव सम्पदा प्रशान्त॥

है तथा साधर्मी-सम्यग्दृष्टि जैनियों के प्रतिकूल (विपरीत) है सो पंडितमन्य है उसके वह ही शास्त्र विषरूप परिणमता है ।

४६१. ॐ ह्रीं दुष्टविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यनिर्भरस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जो पढ़ता जिनशास्त्र स्वयं सत्कार लाभ पूजा के हेतु ।
वह साधर्मी के विपरीत न पंडित शास्त्र उसे विष केतु ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६१॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६२)

वही कहते हैं-

जो जुद्धकामसत्थं, रायदोसेहि परिणदो पढइ ।
लोयावंचणहेदुं, सज्झाओ णिप्फलो तस्स ॥४६२॥

अर्थ- जो पुरुष युद्ध के शास्त्र कामकथा के शास्त्र रागद्वेष परिणाम से लोगों को ठगने के लिए पढ़ता है उसका स्वाध्याय निष्फल है ।

४६२. ॐ ह्रीं ज्ञानावरणादिकर्दमरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानपंकजस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

युद्ध काम कौतूहल ज्योतिष वैद्यक मंत्र शास्त्र पढ़ता ।
लोगों को ठगता है उसका स्वाध्याय निष्फल रहता ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६२॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

हिंसादिक के त्याग पूर्वक जो आत्मा को थिर करता ।
छेदोपस्थान चारित्र धारता पंचमगति वरता ॥

(४६३)

वही कहते हैं -

जो अप्पाणं जाणदि, असुइसरीरादु तच्चदो भिण्णं ।
जाणगरूवसरूवं, सो सत्थं जाणदे सव्वं ॥४६३॥

अर्थ- जो मुनि अपनी आत्मा को इस अपवित्र शरीर से भिन्न ज्ञायकरूप स्वरूप जानता है वह सब शास्त्रों को जानता है ।

४६३ ॐ ह्रीं साधर्मिकप्रतिकूलवर्तनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरभिमानज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो मुनि इस अपवित्र देह से भिन्न आत्मा लेता जान ।
वह ज्ञायक स्वरूप जानता सभी शास्त्र लेता है जान ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६३॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६४)

वही कहते हैं -

जो णवि जाणदि अप्पं, णाणसरूवं सरीरदो भिण्णं ।
सो णवि जाणदि सत्थं, आगमपाढं कुणंतो वि ॥४६४॥

अर्थ- जो मुनि अपनी आत्माको ज्ञानस्वरूपी, शरीर से भिन्न नहीं जानता है सो आगम का पाठ करे तो भी शास्त्र को नहीं जानता है ।

४६४. ॐ ह्रीं लोकवंचनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्वंचनबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो मुनि ज्ञान स्वरूपी आत्मा नहीं जानता तन से भिन्न।
आगम पढ़कर भी न जानता शास्त्र मूढ़ रहता है खिन्न॥

दर्शन मोहमयी मिथ्यात्व वासना का कर दो संहार ।
अनंतानुबंधी कषाय की भूल अभी लो आप सुधार ॥

निज स्वरूप में थिर रहना ही है निश्चय स्वाध्याय महान।
अनुप्रेक्षा आम्नाय वाचना आदिक है व्यवहार प्रधान ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६४॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६५)

अब व्युत्सर्ग तपको कहते हैं-

जल्लमललित्तगत्तो, दुस्सहवाहीस णिप्पडीयारो ।
मुहधोवणदिविरओ, भोयणसेज्जादिणिरवेक्खो ॥४६५॥

अर्थ- जो मुनि जल्ल और मल से तो लिप्त शरीर हो असह्य तीव्र रोग आने पर भी उसका प्रतीकार न करता हो मुहं धोना आदि शरीर के संस्कार से विरक्त हो।

४६५. ॐ ह्रीं सप्तधातुरूपाशुचिदेहरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

ज्ञायकचिदानन्दस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मलपसेव से लिप्त देह हो तीव्र रोग हो पर न इलाज।
शरीरादि संस्कार विरत हो शैय्यादिक इच्छा परिहार ॥
निज स्वरूप का सतत चिन्तवन दुर्जन सज्जन में मध्यस्थ।
ज्ञान स्वभावी शुद्ध भावना से रहता है मुनि आत्मस्थ ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६५॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६६)

वही कहते हैं

ससरूवचिंतणरओ, दुज्जणसुयणाण जो हु मज्झत्थो ।
देहे वि णिम्ममत्तो, काओसग्गो तवो तस्स ॥४६६॥

फिर अप्रत्याख्यानावरणी कषाय का कर डालो परिहार।
फिर प्रत्याख्यानावरणी को नाश करो संयम साकार ॥

अर्थ- भोजन और शय्या आदि की वांचा रहित हो अपने स्वरूप के चिंतवन में रत्त हो दुर्जन सज्जन में मध्यस्थ हो अधिक क्या कहें, देह में भी ममत्वरहित हो उसके कायोत्सर्ग नामक तप होता है ।

४६६. ॐ ह्रीं शरीरभिन्नज्ञानरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अत्यपूर्वज्ञानस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

देह ममत्व रहित हो रहता उसको होता कायोत्सर्ग ।
बाह्य क्रिया से रहित राग द्वेषों से विरहित तप व्युत्सर्ग॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६६॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६७)

वही कहते हैं-

जो देहधारणपरो, उवयरणादि विसेससंसत्तो ।
बाहिरववहाररओ, काओसग्गो कुदो तस्स ॥४६७॥

अर्थ- जो मुनि देहका पालन करने में तत्पर हो उपकरणादिक में विशेष संसक्त हो और बाह्य व्यवहार करने में रत हो उसके कायोत्सर्ग तप कैसे हो ?

४६७. ॐ ह्रीं मुखधोवनादिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अमलचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो मुनि तन पालन में तत्पर उपकरणादिक में संसक्त ।
तथा लोक रंजन में रत हो कायोत्सर्ग न तप से युक्त ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६७॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

यह प्रमाद स्वयमेव उड़ेगा पाएगा मुनि पद अविकार ।
शेष संज्वलन भी क्षय होगी होगा केवल ज्ञान अपार॥

(४६८)

वही कहते हैं -

अंतो मुहुत्तमेत्तं, लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं ।
ज्झाणं भण्णदि समए, असुहं च सुहं च तं दुविहं ॥४६८॥

अर्थ- जो मनसम्बन्धी ज्ञान वस्तु में अन्तर्मुहूर्तमात्र लीन होता है सो सिद्धान्त में ध्यान कहा गया है और वह शुभ अशुभ के भेद से दो प्रकार का है ।

४६८. ॐ ह्रीं नखकेशादिसंस्कारकरणरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

समतासागरस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मन संबंधी ज्ञान वस्तु में जो अन्तमुहूर्त्त हो लीन ।
वही ध्यान है दो प्रकार का उसे जान लो ज्ञान प्रवीण ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६८॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४६९)

अब शुभ अशुभध्यान के नाम व स्वरूप कहते हैं—

असुहं अट्ट रउद्दं, धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि ।
अट्टं तिव्वकषायं, तिव्वतमकसायदो रुद्दं ॥४६९॥

अर्थ-आर्तध्यान रौद्रध्यान ये दोनों तो अशुभ ध्यान है और धर्मध्यान शुक्लध्यान ये दोनों शुभ और धर्मध्यान शुक्लध्यान ये दोनों शुभ और शुभतर हैं इनमें आदि का आर्तध्यान तो तीव्र कषाय से होता है और रौद्रध्यान अति तीव्र कषाय से होता है ।

४६९. ॐ ह्रीं उपकरणादिविशेषसंसक्तरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

नित्यैकचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

फिर योगों का भी अभाव हो जाएगा तू होगा सिद्ध ।
बंध भेद पांचों क्षय होंगे होगा त्रिभुवन कंत प्रसिद्ध ॥

आर्त्तरौद्र दो ध्यान अशुभ हैं शुभ हैं धर्म शुक्ल दो ध्यान।
तीव्र कषायी आर्त ध्यान है अरु अतितीव्र रौद्र है ध्यान॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४६९॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७०)

वही कहते हैं-

मंदकषायं धम्मं, मंदतमकसायदो हवे सुक्कं ।
अकसाए वि सुयड्ढे, केवलणाणे वि तं होदि ॥४७०॥

अर्थ- धर्मध्यान मन्दकषाय से होता है शुक्लध्यान अत्यन्त मन्दकषाय में होता है, श्रेणी चढ़ने वाले महामुनि के होता है और वह शुक्लध्यान कषाय अभाव होने पर श्रुतज्ञानी, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, केवलाज्ञी सयोगी तथा अयोगी जिनके भी होता है ।

४७०. ॐ ह्रीं पापास्रवकारणाशुभध्यानरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निरास्रवबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

धर्म ध्यान तो मंद कषाय भाव से होता है जानो ।
अरु अतिमंद कषाय ध्यान युत शुक्ल ध्यान होता मानो॥
श्रेणी चढ़ने वाले महा मुनीश्वर को होता यह ध्यान ।
जब कषाय का अभाव होता तब भी होता शुक्ल ध्यान॥
श्रुत ज्ञानी उपशान्त कषायी क्षीण कषाय केवली जिन।
शुक्ल ध्यान के स्वामी होते सयोगी और अयोगी जिन ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७०॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

यही प्रक्रिया बंध नाश की जो अपना लेगा इस बार ।
वह सिद्धत्व प्रगट कर अपना हो जाएगा भव के पार ॥

(४७१)

अब आर्त्तध्यान को कहते हैं-

दुक्खयर-विसयजोए, केम इमं चयदि इदि विचिंततो ।
चेट्ठदि जो विक्खित्तो, अट्टं ज्झाणं हवे तस्स ॥४७१॥

अर्थ- जो पुरुष दुःखकारी विषय का संयोग होने पर ऐसा चिन्तवन करे कि यह मेरे कैसे दूर हो? और उसके संयोग से विक्षिप्तचित्त होकर चेष्ठा करे, रुदनादि करे उसके आर्त्तध्यान होता है ।

४७१. ॐ ह्रीं अस्थिशिलादिशक्तिविशिष्टकषायरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निष्कषायज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

दुखकर विषय संयोग समय चिन्तन करना कैसे हो दूर।
हो विक्षिप्त चेष्टा करना रोना आर्त्त ध्यान भरपूर ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७१॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७२)

वही कहते हैं-

मणहरविसयविओगे, कह तं पावेमि इहि वियप्पो जो ।
संतावेण पयट्टो, सो च्चिय अट्टं हवे ज्झाणं ॥४७२॥

अर्थ- जो मनोहर विषय सामग्री का वियोग होने पर ऐसा चितवन करे कि उसको मैं कैसे पाऊं उसके वियोग से संतापरूप प्रवृत्ति करे वह भी आर्त्तध्यान है ।

४७२. ॐ ह्रीं लतादिशक्तिविशिष्टकषायरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अकषायस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

आत्मा अरु आस्रव का अब भिन्नत्व सिद्ध करना होगा।
मात्र एक आत्माश्रय द्वारा कर्म बंध हरना होगा ॥

मनहर विषय वियोग समय पाने की ही चिन्ता करना ।
आर्त्त ध्यान है संतापित हो उसमें ही प्रवृत्ति करना ॥
ये दोनों ही ध्यान अशुभ हैं कुगति बंध के कारण है ।
चार चार है भेद इन्होंके त्याग योग्य दुख दारुण है ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७२॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७३)

अब रौद्रध्यान को कहते हैं-

हिंसाणंदेण जुदो, असच्चवयणेण परिणदो जो दु ।
तत्थेव अथिरचित्तो, रुद्दं ज्झाणं हवे तस्स ॥४७३॥

अर्थ- जो पुरुष हिंसा में आनन्दयुक्त होता है तथा असत्यवचन से प्रवृत्ति करता रहता है और इन्हीं में विक्षिप्तचित्त बना रहता है उसके रौद्रध्यान होता है ।

४७३. ॐ ह्रीं दुःखकरविषययोगत्यजनचिंतनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।
नित्यानंदसागरस्वरूपोऽहं ।

हिंसा में आनंद मानना अरु असत्य वचनों से प्रीत ।
इनमें ही विक्षिप्त चित्त है रौद्र ध्यान का ही है मीत ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७३॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७४)

अब दो भेद और कहते हैं-

परविसयहरणसीलो, सगीयविसये सुरक्खणे दक्खो ।
तग्गयचिंताविट्ठो, णिरंतरं तं पि रुद्दं पि ॥४७४॥

अर्थ- जो पुरुष दूसरे की विषय सामग्री को हरण करने के स्वभाव सहित हो अपनी

मिथ्यात्वदिक के तजने पर जो दर्शन विशुद्धि बढ़ती ।
वह परिहार विशुद्धि चरित्र है आत्म सिद्धि उससे मिलती ॥

विषय सामग्री की रक्षा करने में प्रवीण हो इन दोनों कार्यों में निरन्तर चित्तको लवलीन रखता हो उस पुरुष के यह भी रौद्रध्यान ही है ।

४७४. ॐ ह्रीं मनोहरविषयवियोगसंयोजनविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः।

निजचिदालयस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

पर की वस्तु हरण में रत है निज की रक्षा में है लीन।
पापों में आनंद मानता रौद्र ध्यान में है लवलीन ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७४॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७५)

अब धर्मध्यान को कहते हैं-

विण्णि वि असुहे ज्झाणे, पावणिहाणे य दुक्खसंताणे ।
तम्हा दूरे वज्जह, धम्मे पुण आयरं कुणह ॥४७५॥

अर्थ- हे भव्यजीवो ! आर्त्त और रौद्र ये दोनों ही ध्यान अशुभ हैं पाप के निधान और दुःख की सन्तान जानकर दूर ही से छोड़ो और धर्मध्यान में आदर करो ।

४७५. ॐ ह्रीं हिंसानन्दादिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजपवित्रानन्दस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

आर्त्त रौद्र अति पापमयी है दुख की संपति जनक यही।
इन्हें छोड़ कर धर्म ध्यान का आदर कीजे सही सही ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७५॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७६)

अब धर्म स्वरूप कहते हैं-

जो स्वभाव है उसे प्रगट करने में क्या कठिनाई है ।
फिर क्यों उसको प्रगट न करता कैसी निद्रा पायी है ॥

धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥४७६॥

अर्थ- वस्तु का स्वभाव धर्म है जसे जीवका स्वभाव दर्शन ज्ञान स्वरूप चैतन्यता सो इसका यही धर्म है दस प्रकार के क्षमादिभाव धर्म है और जीवों की रक्षा करना भी धर्म है ।

४७६. ॐ ह्रीं परविषयहरणशीलरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजानन्तगुणवैभवस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

वस्तु स्वभाव धर्म पहचानो दश विधि क्षमा आदि है धर्म।
रत्नत्रय है धर्म और जीवों की रक्षा करना धर्म ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७६॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७७)

अब धर्मध्यान कैसे जीवके होता है सो कहते हैं-

धम्मे एयग्गमणो, जो ण वि वेदेदि पंचहा विसयं ।
वेरग्गमओ णाणी, धम्मज्झाणं हवे तस्स ॥

अर्थ- जो पुरुष ज्ञानी धर्म में एकाग्र मन हो प्रवर्ते पांचों इन्द्रियों के विषयों को नहीं वेदे और वैराग्यमयी हो उस ज्ञानी के धर्मध्यान होता है ।

४७७. ॐ ह्रीं अशुभस्वरूपार्तरौद्रध्यानरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

परमचित्स्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

जो ज्ञानी एकाग्र चित्त हो करता धर्म प्रवृत्ति महान ।
पंचेन्द्रिय विषयों से विरहित ही वैराग्य धर्म है ध्यान ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७७॥

भार अनंतानंत भवों का तूने सिर पर लादा है ।
भाव शुभाशुभ का तूने क्यों ओढ़ा घृणित लबादा है ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररुपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७८)

वही कहते हैं-

सुविसुद्धरायदोसो, बाहिरसंकप्पवज्जिओ धीरो ।
एयग्गमणो संतो, जं चिंतइ तं पि सुहज्झाणं ॥४७८॥

अर्थ - जो पुरुष रागद्वेष से रहित होता हुआ बाह्य के संकल्प से वर्जित होकर, धीरचित्त, एकाग्रमन होता हुआ जो चिन्तवन करे वह भी शुभ ध्यान है ।

४७८. ॐ ह्रीं निजवस्तुरूपनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजशुद्धस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

राग द्वेष से रहित बाहय संकल्प विकल्पों से वर्जित ।
धीर चित्त एकाग्र विचारक यह शुभ ध्यान चिन्तवन नित॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७८॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४७९)

वही कहते हैं-

ससरूवसमुब्भासो, णट्ठममत्तो जिदिंदिओ संतो ।
अप्पाणं चिंतंतो, सुहज्झाणरओ हवे साहू ॥४७९॥

अर्थ- जिस साधु को अपने स्वरूप का समुद्भास हो गया हो पर द्रव्य में ममत्वभाव जिसका नष्ट हो गया हो जितेन्द्रिय हो और अपनी आत्मा का चिन्तवन करता हुआ प्रवर्तता हो वह साधु शुभ ध्यान में लीन होता है ।

४७९. ॐ ह्रीं पञ्चधाविषयवेदनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

विरागराजस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

हो जा तू निर्भार बाबरे सौख्य अतीन्द्रिय पाएगा ।
निज स्वभाव सरिता में अवगाहन कर ले सुख पाएगा॥

निज स्वरूप का समुद्भास हो पर द्रव्यों में हो न ममत्व।
सदा जितेन्द्रिय आत्म चिन्तवन रत शुभ ध्यान सुलीन मुनित्व॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४७९॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८०)

वही कहते हैं-

वज्जियसलवियप्पो, अप्पसरूवे मणं णिरुंधंतो ।
जं चिंतदि साणंदं, तं धम्मं उत्तमं ज्झाणं ॥४८०॥

अर्थ- जो समस्त अन्य विकल्पों को छोड़ आत्मस्वरूप में मनको रोककर आनंद सहित चिन्तवन करता है सो उत्तम धर्मध्यान है ।

४८०. ॐ ह्रीं बाह्यसंकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

चिद्रूपब्रह्मस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मन को रोक विकल्प सकल तज आत्म स्वरूप चिन्तवन लीन।
जो मुनि होता वह ही उत्तम धर्म ध्यान में है तल्लीन ॥
धर्म ध्यान के चार भेद हैं आज्ञाविचय अपायविचय ।
तृतिय विपाक विचय है चौथा धर्म ध्यान संस्थान विचय॥
फिर इनके सब भेद जानकर धर्म ध्यान में होता रत ।
तब ही सम्यक् कहलाता है श्री मुनियों का यह मुनि व्रत॥
अरु पदस्थ पिंडस्थ तथारूपस्थ ध्यान अरु रूपातीत ।
पूर्ण शक्ति से इनको करने वाला मुनि संसारातीत ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८०॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

सूक्ष्म लोभ जब क्षय होता है तभी शुद्ध होते परिणाम ।
है सूक्ष्मसांपराय चारित्र अविनाशी सुख का अलपिविराय॥

(४८१)

अब शुक्लध्यान को पांच गाथाओं में कहते हैं-

जत्थ गुणा सुविसुद्धा, उवसमखमणं च जत्थ कम्माणं ।
लेसा वि जत्थ सुक्का, तं सुक्कं भण्णदे ज्झाणं ॥४८१॥

अर्थ- जहां भले प्रकार विशुद्ध उज्ज्वल गुण हों जहां कर्मों का उपशम तथा क्षय हो और जहां लेश्या भी शुक्ल ही हो उसको शुक्लध्यान कहते हैं ।

४८१. ॐ ह्रीं परमममत्वरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्ममत्वबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जहां विशुद्ध आत्म गुण उज्ज्वल कर्मो का उपशम क्षय हो ।
लेश्या भी हो शुक्ल वहाँ पर शुक्ल ध्यान मंगलमय हो॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८१॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८२)

अब विशेष भेदों को कहते हैं-

पडिसमयं सुज्झंतो अणंत गुणिदाए उभयसुद्धीए ।
पढमं सुक्कं ज्झायदि, आरूढो उभयसेणीसु ॥४८२॥

अर्थ- उपशमक और क्षपक इन दोनों श्रेणियों में आरूढ़ होकर समय-समय अनन्त गुणी विशुद्धता कर्म के उपशम तथा क्षयरूप से शुद्ध होता हुआ मुनि प्रथम शुक्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यान करता है ।

४८२. ॐ ह्रीं सकलविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अनन्तसुखस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

उपशम क्षपक श्रेणि आरुढ़ सुमुनियों को है शुक्ल ध्यान।
कर्मों के उपशम क्षय से पृथक्त्व वितर्क वीचार स्वध्यान॥

साक्षी बन कर देख बावरे जो होता है होने दे ।
भवितव्यता अवश्यंभावी उसे रोकमत, होने दे ॥

द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८२॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८३)

अब दूसरा भेद कहते हैं-

णिस्सेसमोहविलए, खीणकसाए य अंतिमे काले ।
ससरूवम्मि णिलीणो, सुक्कं ज्झाएदि एयत्तं ॥४८३॥

अर्थ- आत्मा समस्त मोहकर्म के नाश होने पर क्षीणकषाय गुणस्थान के अन्त के काल में अपने स्वरूप में लीन हुआ दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्कवीचारध्यान करता है ।

४८३. ॐ ह्रीं शुक्लादिलेश्यारहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्लेश्यास्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

मोह नाश होने पर क्षीण कषाय थान के अंतिम काल ।
होता है एकत्व वितर्क वीचार ध्यान मुनि को तत्काल ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८३॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८४)

अब तीसरे भेद को कहते हैं-

केवलणाणसहावो, सुहमे जोगम्हि संठिओ काए ।
जं ज्झायदि सजोगिजिणो, तं तिदियं सुहमकिरियं च ॥४८४॥

अर्थ- केवल ज्ञान ही है स्वभाव जिसका ऐसा सयोगीजिन जब सूक्ष्म काययोग में स्थित होकर उस समय जो ध्यान करता है वह तीसरा सूक्ष्मक्रिया नामक शुक्लध्यान है ।

४८४. ॐ ह्रीं उपशमक्षपकश्रेणीविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

सदाशांतस्वरूपोऽहं ।

आत्म ज्ञान से तेजस्वी बन सर्व विकार भाव हर ले ।
शुद्ध स्वभाव भाव जैसा है वैसा अभी प्रगट कर ले ॥

वीरछंद

केवल ज्ञान स्वभाव सयोगी जिनध्याते हैं तीजा ध्यान ।
सूक्ष्म काय योग में थित हो सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति ध्यान॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८४॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८५)

अब चौथे भेद को कहते हैं-

जोगविणासं किच्चा, कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं ।
जं ज्झायदि अजोगिजिणो, णिक्किरियं तं चउत्थं च ॥४८५॥

अर्थ- केवली भगवान् योगों की प्रवृत्ति का अभाव करके जब अयोगी जिन हो जाते हैं तब सत्ता में स्थित अघातियां कर्म की पिच्यासी प्रकृतियों का क्षय करने के लिए जो ध्यान करते हैं सो चौथा व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक शुक्लध्यान होता है ।

४८५. ॐ ह्रीं निःशेषमोहरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अखंडशिवसागरस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

योगों की प्रवृत्ति क्षय करके पूर्ण अयोगी जिन होते ।
व्युपरत क्रिया निवृत्ति ध्यान से चउ अघाति भी क्षय होते॥
तेरहवें चौदहवें में ये ध्यान मात्र उपचार कथन ।
इच्छा पूर्वक ध्यान नहीं है यही श्रेष्ठ सर्वज्ञ वचन ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८५॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८६)

अब तपके कथन का संकोच करते हैं-

रागादिक भावों के सर्व बवंडर अब क्षय करना है ।
तृष्णा से मन शुष्क बनाकर निज अनुभव रस भरना है॥

एसो बारसभेओ, उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो ।
सो खविय कम्मपुंजं, मुत्तिसुहं उत्तमं लहदि ॥४८६॥

अर्थ- यह बारह प्रकार का तप है जो मुनि उपयोग सहित इस उग्रतपका आचरण करता है सो मुनि कर्मसमूह का नाश करके उत्तम मोक्षसुख को पाता है ।

४८६. ॐ ह्रीं समवशरणादिविभूतिरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

निजज्ञानविभूतिस्वरूपोऽहं ।

ये द्वादशतप मुनि उपयोग सहित करते आचरण सदा ।
कर्म समूह नाश करते हैं पाते उत्तम सौख्य सदा ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८६॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८७)

अब इस ग्रन्थ के कर्त्ता श्री स्वामिकार्त्तिकेयमुनि अपना कर्त्तव्य प्रगट करते हैं-

जिणवयणभावणट्ठं, सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुवेक्खाओ, चंचलमण-रुंभणट्ठं च ॥४८७॥

अर्थ- यह अनुप्रेक्षा नामक ग्रन्थ स्वामिकुमार ने श्रद्धापूर्वकजिनवचन की भावना के लिए और चंचल मनको रोकने के लिए रचा है। इस विशेषण से ऐसा जानना कि मन चंचल है इसलिए एकाग्र नहीं रहता है उसको इस शास्त्र में लगावें तो रागद्वेषके कारण विषय कषायों में न जावे इस प्रयोजन के लिए यह अनुप्रेक्षा ग्रन्थ बनाया है सो भव्यजीवों को इसका अभ्यास करना योग्य है जिससे जिनवचन की श्रद्धा हो, सम्यग्ज्ञान की वृद्धि हो और मन चंचल है सो इसके अभ्यास में लगे, अन्य विषयों में न जावे ।

४८७. ॐ ह्रीं व्युपरतक्रियानिवृत्याशुक्लध्यानविकल्परहितनिज धर्मस्वरूपाय नमः ।

निर्योगबोधस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

बाल ब्रह्मचारी मुनिवर श्री कार्तिकेय ने इसे रचा ।
यह अनुप्रेक्षा ग्रंथ सुपावन कोई विषय न रंच बचा ॥

मत अज्ञान भाव में जी तू ज्ञान भाव रस ही पी ले ।
शुद्धात्मा के ज्ञान सिन्धु में अवगाहन करके जी ले ॥

ख्याति लाभ के लिए न लिक्खा जिनवचनों का है श्रद्धान।
चंचल मन को वश में करने रचा सुमुनि ने ज्ञान प्रधान॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८७॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८८)

अब अनप्रेक्षा का माहात्म्य कहकर भव्यों को उपदेश रूप फल का वर्णन करते हैं-

वारसअणुवेक्खाओ, भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ, सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥४८८॥

अर्थ- ये बारह अनुप्रेक्षायें जिनागम के अनुसार कही है जो भव्यजीव इनको पढ़े, सुने और इनकी भावना करे सो उत्तम सुख को पावे। यह सम्भावनारूप कर्त्तव्य अर्थ का उपदेश जानना। भव्यजीव है सो पढ़ो, सुनो, बारम्बार इनके चिन्तवनरूप भावना करो।

४८८. ॐ ह्रीं अनशनादितपविकल्परहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अक्षयसौख्याणविस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

यह द्वादश अनुप्रेक्षाएँ रच दी हैं जिन आगम के अनुसार।
भव्य इसे पढ़ बार बार चिन्तवन करें निजवस्तु विचार॥
सो उत्तम अविनाशी सुख के अधिकारी होंगे निश्चित ।
बार बार भावना करेंगे उनका होगा निश्चित हित ॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८८॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

(४८९)

अब अन्त्यमंगल करते हैं-

यथाख्यात् चारित्र यही है यही वीतरागी चारित्र ।
यह कारण साक्षात् मुक्ति का यह चारित्र महान पवित्र॥

तिहुवणपहाणस्वामि, कुमारकाले वि तविय तवचरणं ।
वसुपुज्जसुयं मल्लि, चरिमतियं संथुवे णिच्चं ॥४८९॥

अर्थ- तीन भुवन के प्रधान स्वामी तीर्थंकरदेव जिन्होंने कुमारकाल में ही तपश्चरण धारण किया ऐसे वसुपूज्य राजा के पुत्र वासुपूज्यजिन, मल्लिजिन और चरिमतिय नेमिनाथ जिन, पार्श्वनाथ जिन, वर्द्धमान जिन इन पांचों जिनों का मैं नित्य ही स्तवन करता हूँ उनके गुणानुवाद करता हूँ, वंदन करता हूँ ।

४८९. ॐ ह्रीं वच्छलमनरहितनिजधर्मस्वरूपाय नमः ।

अचलबोधसागरस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

त्रिभुवन के तीर्थंकर स्वामी वासुपूज्य श्री मल्लि महान ।
नेमिनाथ जिन पार्श्वनाथ जिन वर्धमान जिनवर भगवान॥
उनका नित्य संस्तवन करता गाता गुणानुवाद पावन ।
यही अन्य मंगलमयसुखमय अखिल विश्व को मन भावन॥
द्वादश तप का पालन करके कर्म निर्जरा करूँ महान ।
सर्व कर्म निर्जरित करूं प्रभु पाऊं अपना पद निर्वाण ॥४८९॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

गीतिका

शुद्ध तप की प्राप्ति के हित आत्म का निर्णय करो ।
बिना समकित तप नहीं है सुदृढ़ यह निश्चय करो ॥
बिना तप के कर्म की होती नहीं है निर्जरा ।
शुद्ध संवर के बिना होती न निज भू उर्वरा ॥
अतः रत्नत्रय सहित संयम हृदय उर धारण करो ।
फिर करो तप आत्म बल से सकल भव बंधन हर ॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय महाअर्घ्यं नि. ।

देह अपावन जड़ पुदगल है तू चेतन चिद्रूपी ।
शुद्धबुद्ध अविरुद्ध निरंजन नित्य अनऊप अऊपी ॥

जयमाला

वीरछंद

पंचमहाव्रत पंच समिति त्रय गुप्ति सहित है साधु महान।
यही त्रयोदश विधि चारित्र महान सुखमयी श्रेष्ठ प्रधान॥
निश्चय पंच महाव्रत निश्चय पंच समिति निश्चय त्रय गुप्ति ।
मुक्ति प्राप्त करने की केवल एक मात्र यह पावन मुक्ति॥
निश्चय पूर्वक ही व्यवहार महाव्रत होते हैं सच्चे ।
निश्चय बिन व्यवहाराभास मात्र होते हैं ये कच्चे ॥
अट्ठाईस मूल गुण भी जो सम्यक् पालन करते हैं ।
पुण्यों का संचय करते है सर्व पाप ये हरते हैं ॥
अगर एक भी गुण कम है तो शेष मूल गुण हैं बेकार ।
पुण्य भाव तो संचित करते पर असमर्थ करो सुविचार॥
द्वादश तप का धारी मुनि ही मुक्ति मार्ग पाता संपूर्ण ।
निज सिद्धत्व प्रगट करता है पाता है शिव सुख आपूर्ण॥

ॐ ह्रीं द्वादश तप प्ररूपक श्री कार्तिकेय अनुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद :

दोहा

भव विनाश की युक्ति है स्वपर भेद विज्ञान ।
समकित का दातार है करे कर्म अवसान ॥
द्वादश तप की शक्ति से होते कर्म विनाश ।
सिद्ध स्वपद होता प्रगट पाकर ज्ञान प्रकाश ॥

इत्याशीर्वाद :

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं द्वादशतपाय नमः

जीवन तरु तो आयु कर्म के बल पर ही हरियाता है ।
जब यह आयु पूर्ण होती है तो पल में मुरझाता है ॥

अंतिम महाअर्घ्य

छंद सखी

भव जल सम्पूर्ण सुखाऊँ। अनुभव जल उर में लाऊं ॥
त्रय गुप्ति धरूँ भव दुख हर। मन वच कायावश में कर॥
भव गंध महादुर्गंधित। निज गुणमय गंध सुगंधित ॥
अक्षय तरणी प्रभु पाऊं। भव दुख सागर तर जाऊं ॥
निज ज्ञान पुष्प अभिरामी। कामाग्नि बुझाऊं स्वामी ॥
अनुभव नैवेद्य सजाऊं। भव रोग क्षुधा विनशाऊं ॥
दीपक प्रकाश निज पाऊं। मिथ्यात्व तिमिर विनशाऊं ॥
निज ध्यान धूप दो स्वामी। वसु कर्म जलाऊँ नामी ॥
कैवल्य ज्ञान की निधि दो। शिव फल पाने की विधि दो॥
शुभ अर्घ्य पुंज संसारी। दो पद अनर्घ्य अविकारी ॥
सुखसादि अनंत मिले प्रभु। सिद्धत्व महान झिले प्रभु ॥
त्रय गुप्ति बिना वसु प्रवचन। मातृका न होती इकक्षण॥
अब शरण आपकी पायी। तो करणलब्धि भी आयी ॥
रत्नत्रय प्रगटाऊंगा। निश्चित शिवपुर जाऊंगा ॥

ॐ ह्रीं द्वादश भावना प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय महाअर्घ्य नि. ।

महाजयमाला

छंद दोहा

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का पाऊं मैं सार ।
दृढ़ सम्यक्त्व स्वरूप पा हो जाऊं भव पार ॥

वीरछंद

जो अनित्य भावना पूर्वक नित करते हैं निज का ध्यान।
नित्य स्वरूप चिन्तवन करते वे ही पाते सौख्य महान ॥

अर्हत् सिद्धाचार्य सुपाठक साधु पंच परमेष्ठीजान ।
निश्चय सब ही तो आत्मा हैं श्री केवली कथन महान ॥

जो अशरण भावना ह्रदय में बार बार चिन्तन करते ।
वे ही आत्म शरण पाते हैं कर्मों का बंधन हरते ॥
जो संसार भावना चिन्तन करते वे भव दुख हरते ।
सिद्ध चक्र में सदा विराजित होकर परम सौख्य वरते ॥
जो एकत्व भावना भाते एकाकी बन जीते है ।
निजानंद आनंद कंदरस सतत निरंतर पीते है ॥
जो अन्यत्व भावना भाते पार्थक्यका करते बोध ।
निज से होते है अनन्य वे सतत स्वयं की करते शोध ॥
अशुचि भावना भाने वाले ही शुचित्व निज पाते है ।
निज शुचित्व का विचार करके मुक्ति लक्ष्मी पाते है ॥
आस्रव भावों से सुदूर रह निज का ही करते जो ध्यान।
पाप पुण्य आस्रव जय करते हो जाते अरहंत महान ॥
उर संवर भावना सुदृढ़ कर आस्रव का निरोध करते ।
सकल विभावी भावों को वे पल भर में ही तो हरते ॥
भाव निर्जरा जिनके उर में द्रव्य निर्जरा करते प्राप्त ।
वे संसार भाव हरते हैं एक दिवस हो जाते आप्त ॥
तीन लोक का चिन्तन करते सौख्य अलौकिक पाते जीव।
त्रिलोकाग्र का शिखर प्राप्त कर पाते है आनंद सदीव ॥
परमानंदी आत्म बोधि का उर में जिन के सतत प्रभाव।
वे ही धर्म मार्ग पर चलकर करते हैं वसुकर्म अभाव ॥
धर्म भावना ही सर्वोत्तम इससे जगता धर्म स्वभाव ।
त्रिभुवन तिलक शीर्ष हो जाते पाकर पावन आत्म प्रभाव॥
शुद्ध भावना द्वादश जिनने पायी वे हो गए सुखी ।
जो न भासके शुद्ध भावना वे ही अब तक हुए दुखी ॥

चित्र विचित्र भावना तजदे शून्यविभाव भावना भा ।
कर्मादिक के छल प्रपंच से रहित आत्मा अपनी ध्या ॥

वीरछंद

निःशंकित हो भाव हृदय में सम्यक् श्रद्धा हो भरपूर ।
कोई न पद हो नहीं शल्य हो छह अनायतन भी हों दूर॥
अष्ट अंग समकित के हों प्रभु आठों मद से होऊँ दूर।
श्रद्धा सुदृढ़ रेवती सम हो ज्ञान भावना हो आपूर ॥
निःकांक्षित हो भाव हृदय में भव आकांक्षाएँ हों नाश ।
नहीं चाहिए चक्रवर्त्ती पद नहीं चाहिए इन्द्र निवास ॥
सब प्रकार की इच्छाओं से विरहित हो निज आत्म स्वभाव।
एकमात्र हो सतत दृष्टि में मेरा अपना शुद्ध स्वभाव ॥
उपगूहन गुण का मेरे अंतर में रहे सदैव निवास ।
सब जीवों के दोष ढकूँ मैं शुद्धातम का हो विश्वास ॥
दृष्टि अमूढ सदा हो मेरी नहीं मूढ़ता का हो भाव ।
देव मूढ़ता गुरू मूढ़ता लोक मूढता करूँ अभाव ॥
धर्म मार्ग से डिगने वाले का स्थिति करण करूं स्वामी।
तन मन धन देव बनूं सहायक होने दूं न विपथगामी ॥
धर्म मार्ग की कर प्रभावना आत्म धर्म का करूं प्रकाश ।
गुण अनंत की प्रभा प्रकाशित करने का ही हो अभ्यास॥
शुद्ध आचरण से प्रभावना होती है स्वयमेव महान ।
धर्माचरण श्रेष्ठ है जग में हों प्रभावना अंग प्रधान ॥
प्राणि मात्र पर वात्सल्य हो निज समान सब को जानूं ।
जियो और जीने दो की भावना प्रगट करके मानूं ॥
एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सब पर ही वात्सल्य रखूं ।
अंतरंग की सर्व शक्तियां शुद्ध भाव द्वारा परखूं ॥

यह संसार शोक का सागर यहां नहीं मिलता आनंद ।
नर नारक सुर पशु गति वाले यहाँ किया करते बहु द्वंद॥

समकित के पच्चीस दोष से रहित रहूं अन्तर्यामी ।
समकित के पच्चीस गुणों से भूषित हो जाऊं स्वामी ॥
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का फल सेवन करूं सदा ही देव ।
निश्चित सिद्ध स्वपद प्रगटेगा मेरे अन्तर में स्वयमेव ॥
यही याचना यही कामना यही भावना हो प्रभु पूर्ण ।
निज सिद्धत्व स्वगुण प्रगटाऊं अष्टकर्म अरि करके चूर्ण॥

ॐ ह्रीं द्वादश भावना प्ररूपक श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

कार्तिकेय अनुप्रेक्षा का फल पाया आज ।
उर में दृढ़ निश्चय जगा पाऊं निज पद राज ॥
आत्म ध्यान तल्लीन हो करूं आत्म कल्याण ।
निज स्वभाव की शक्ति से पाऊं पद निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद :

शान्ति पाठ

दोहा

शान्ति प्राप्ति का ही प्रभो है उर में उद्देश ।
परम शान्ति हो जगत में रहे न कोई क्लेश ॥
तीन लोक के जीव सब पाएं शान्ति अपार ।
सभी सिद्ध सम हैं सदा गुण अनंत भंडार ॥
अखिल विश्व में शान्ति हो हो अशान्ति प्रभु दूर ।
सब जीवों को सुख मिले मिले शान्ति भरपूर ॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

नौ बार णमोकार मंत्र का जाप

क्षणिक पुण्य पर इतराकर तू प्रति पल परिवर्तित होता।
जड़ की महिमा के आगे तू निज महिमा को क्यों खोता॥

क्षमापना

दोहा

क्षमा करो मेरी प्रभो यह अनादि की भूल।
तुव पूजन फल हो प्रभो भवतरु हो निर्मूल॥
आह्वाहन स्थापना नहीं जानता नाथ।
सन्निधिकरण न जानता कैसे बनूं सनाथ॥
अब उद्धार करो प्रभो पकड़ो मेरा हाथ।
जब तक निज पद ना मिले तजूं न तुव पद साथ॥

पुष्पांजलि

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षाय नम :

जिया तुम निज को पहिचानो।
निज स्वरूप को पर स्वरूप से सदा भिन्न मनो॥

भजन

निज परिणति सज धज कर आई बनी गुजरिया।
अंतरंग में मेरे छाई ज्ञान उजरिया॥
स्वपर भेद विज्ञान हो गया पलभर में ही।
मोह जन्य पर परिणति भागी दुष्ट चतुरिया॥
निज परिणति ने नहले पर दहला जब मारा।
पर परिणति की नाश हो गई राग बजरिया॥
ढोल मृदंग मजीरा बाजे धम धम छन छन।
गुण अनंत ने गाई अपनी शुद्ध कजरिया॥
संवरभाव जगा आस्रव का दंभ तोड़ कर।
नची निर्जरा जोर जोर से बजा खंजरिया॥

अगणित दीपमालिकाओं के दीप जलाए हैं पावन ।
देवों ने श्री सुर वीणा के तार बजाए मन भावन ॥

ॐ

पंचबालयति स्तोत्र

प्रथम बालयति तीर्थंकर वासुपूज्य स्तोत्र

वासुपूज्य वागीश्वर विषयातीत वीतविस्मय विश्वेश।
विघ्न विनाशक विश्वमूर्त्ति विद्यापति विश्वजयी विविधेश ॥
विश्व भाव वित् वीतराग विज्ञानी विश्वशीर्ष विश्वज्ञ ।
विश्व ज्योति वाचस्पति वर प्रद विगंत दोष वृषपति वेदज्ञ॥
माता विजया नृप वसुदेव सुपुत्र द्वादशम तीर्थंकर ।
चंपापुर में हुए पंच कल्याण सौख्यमय धरणी धर ॥
आत्म तीर्थ के महायात्री जब जागा वैराग्य हृदय ।
दीक्षा लेकर निज स्वभाव के प्रति हे स्वामी हुए सदय ॥
स्वयं बुद्ध सर्वेश्वर योगी निज स्वरूप में लीन हुए ।
महिष चिन्ह चरणों में शोभित आत्म ध्यान तल्लीन हुए ॥
ज्ञानावरण दर्शनावरणी अंतराय का नाश किया ।
मोह कर्म का सर्वनाश कर केवल ज्ञान प्रकाश लिया ॥
ऋषिमुनिगण धर चरण पूजते शत इन्द्रों ने किया नमन ।
पद अरहंत प्राप्त कर तुम जिनवर सर्वज्ञ हुए भगवन ॥
दे उपदेश भव्य जीवों का प्रभु शाश्वत कल्याण किया ।
शेष अघाति कर्म भी हरकर उत्तम पद निर्वाण लिया ॥
शरण आपकी पाते ही मेरा भव अंत निकट आया ।
तुव स्वरूप में निज स्वरूप के दर्शन कर मैं हर्षाया ॥
नाथ आपके पथ चिन्हों पर चलकर सिद्ध स्वपद पाऊं ।
ऐसी निर्मल शक्ति मुझे दो फिर न लौट भव में आऊं ॥

शिवपथ को पहिचाने बिन जो चले जा रहे भव पथ पर।
पलभर को भी कैसे आ पाएंगे वे सम्यक् पथ पर ॥

ॐ

द्वितीय बालयति तीर्थंकर मल्लिनाथ स्तोत्र

मल्लिनाथ प्रभु मोहमल्ल जयकर्त्ता महापूज्य मुनि ज्येष्ठ।
मुक्ति प्ररूपक महा मंगलात्मक जिन महाशिष्ट पति श्रेष्ठ॥
महा गुणाकर महाकारुणिक मुनि मृगराज मुक्ति कर्त्ता ।
मिथ्या तिमिर विनाशक मंगलकारण धर्म मूल कर्त्ता ॥
मोक्ष स्वरूपी महाकीर्त्ति महितोदय मुनिपुंगवमतप्रिय ।
महाशास्ता महिमामय मधवार्चित निज सुख में सक्रिय ॥
कुम्भराज नृपरानी प्रभावती माता के पुत्र ललाम ।
कलश चिन्ह चरणों में शोभित बाल ब्रह्मचारी गुण धाम ॥
जिनदीक्षा ले शुक्ल ध्यान धर वीतराग अरहंत हुए ।
उन्नीसवें तीर्थकर प्रभु मुक्ति वधू के कंत हुए ॥
अद्भुत निधि सुखबल युत दर्शन ज्ञान अनंतानंत अपार।
स्याद्वाद नायक अभयंकर तीन लोक को मंगलकार ॥
समवशरण में तत्त्व निरूपण करके दिया धर्म उपदेश ।
महामांगलिक दिव्य ध्वनि का सुनते भव्य जीव संदेश ॥
पूर्ण कषाय भाव के क्षय बिन मुक्ति नहीं हो सकती है ।
आत्म ध्यान बिन मुक्ति प्राप्ति की युक्ति नहीं हो सकती है॥
यह उपदेश प्राप्त कर मैं भी सम्यक् दर्शन प्रगटाऊं ।
हे मोहादि जयी जिन स्वामी आत्म भावना ही भाऊं ॥
त्रिविधताप हरने के पहिले मोह मल्ल को चूर करूं ।
भेद ज्ञान का आश्रय लेकर अष्ट कर्म मल दूर करूं ॥

विरला आत्म तत्त्व को जाने विरला सुने तत्त्व की बात।
विरला ही निज ध्यान लीन हो विरला धारे तत्त्व प्रपात॥

ॐ

तृतीय बालयति तीर्थंकर नेमिनाथ स्तोत्र

नेमिनाथ निर्द्वंद निरामय निष्कलंक निर्दोष निरंजन ।
निश्चल नित्यानंद निरायुध निर्वचनीय नवल निष्कंचन ॥
शिव देवी के लाल समुद्र विजय के सुत यादव कुल भूषण।
बाल ब्रह्मचारी व्रत धारी विद्या निधि उज्जवल निर्दूषण ॥
विषयातीत तीव विस्मय विभु विघ्न विनाशक हे विश्वेश्वर ।
विश्व शीर्ष विश्वज्ञ विनयपति धर्म ध्यान धारी प्रणतेश्वर ॥
मंगलमयी महान दया निधि सुगुण विभूति महा योगीश्वर ।
शंख चिन्ह पद महा ब्रह्मपति परम मुक्ति वल्लभ जगदीश्वर॥
मंगलेश कल्याणमयी जिन तीर्थंकर त्रिभुवन विख्याता ।
सर्व दोष हर सर्व लोकहर अगन अगोचर शिवसुख दाता॥
ध्यान धुंरधर ध्रौव्य रूप जिन धीरज धारी ध्रुव धरणीश्वर।
भव दुख संकट नाशक योगी अजर अमर अविकल अवनीधर ॥
करूणामंदिर कृपा सिन्धु जिन कर्म कलंक विहीन सुनामी।
स्वयं बुद्ध सर्वांश समरसी सर्वोत्कृष्ट सहज गुणधामी ॥
देवेन्द्रों मनुजेन्द्रों गणधर ऋषियों से वंदित हे जिनपति ।
सकल सुरासुर पूजित जिनवर वीतराग निर्ग्रंथ परमयति ॥
नाम आपका सुनकर आया शरण आपकी मैंने पायी ।
पाप पुण्य संताप विनाशक नाशा मोह महादुखदायी ॥
भेद ज्ञान विज्ञान प्राप्त कर निज स्वरूप में वास करूं मैं ।
नाथ आपकी महा कृपा से वसु कर्मों का नाश करूं मैं ॥

आधि व्याधि पर की उपाधि से विरहित है सच्चा ज्ञानी।
रत्ती भर भी जो इन में उलझा वह तो है अज्ञानी ॥

ॐ

चतुर्थ बालयति तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्तोत्र

पार्श्वनाथ प्रभु परमतेज मय पूर्ण प्रतिष्ठित परमानंद ।
बाल ब्रह्मचारी भवतारी योगीश्वर जिनवर सुखकंद ॥
अश्वसेन सुत वामानंदन तीर्थंकर जिनराज महान ।
कोटि कोटि भक्तों को तारा सर्प चिन्ह पद में भगवान ॥
धर्म कल्प तरु गुण निधान विभु नमित सुरासुर शुद्ध स्वरूप ।
हे संयम सम्राट सिद्धयति श्रद्धा ज्ञान चरित्र अनूप ॥
गणधर मुनि ऋषियों से वंदित चेतयिता चिन्मय चिद्रूप ।
कलि मलनाशक बोध प्रकाशक मुक्ति प्रदाता त्रिभुवन भूप॥
रवि शशि प्रभा स्वयं लज्जित है लख तुम पावन मंगलरूप।
पाप पुण्य होगए तिरोहति देख आपका ध्यान स्वरूप ॥
त्रिविध व्याधि के नाशन हारे शाश्वत शिव सुख के कर्त्ता।
अष्ट कर्म रज के विध्वंसक चहुँगति के संकट हर्त्ता ॥
चिर प्रकाशमय ज्ञान ज्योति रवि वीतराग स्वामी अरिहंत।
सर्व कषाय भाव के नाशक परम देव सर्वज्ञ मंहत ॥
परकृत सब उपसर्ग निवारक पूर्ण शान्त जीवनदाता ।
महापुण्य का उदय हुआ जो जोड़ लिया तुमसे नाता ॥
भव पीड़ा से मैं व्याकुल हूँ नाथ करो मेरा उद्धार ।
सममभावों की समायिक का हो उर में निश्चय व्यवहार ॥
त्याग तपस्या व्रत संयम मय आत्म साधना हो साकार ।
बोधि लाभ हो शिव समाधि हो हो जाऊं भव सागर पार॥

सर्वोत्तम सत्संग प्राप्त कर ज्ञान सिन्धु का जल पीले ।
ज्ञान भावना का संबल ले निज में ही प्रतिपल जीले ॥

ॐ

पंचम बालयति तीर्थंकर महावीर स्तोत्र

परम ज्योति परमेश्वर पावन परम ब्रह्म प्रभु पूर्ण अभय ।
शुद्ध बुद्ध अविनाशी अनुपम नित्य निरंजन शिव सुखमय ॥
चिदानंद चैतन्य चिदातम चिन्मय चेतन परमात्मा ।
निराबाध सर्वज्ञ आप्त जिन वीतराग रवि सत्यात्म ॥
अर्हत अव्यय सिद्ध महाप्रभु शाश्वत समयसार भगवान ।
द्रव्य कर्म नो कर्म भाव कर्मों से रहित त्रिकाल महान ॥
स्वानुभूति मय चित् स्वभावमय स्वपर प्रकाशक सूर्य विचित्र।
ज्ञानानंदी ज्ञान स्वभावी परमानंदी परम पवित्र ॥
अजर अमर अविकल अविनाशी गुण अनंत भूषित विभुवान।
भव भय हर्त्ता मंगलकर्त्ता दो प्रभु वीतराग विज्ञान ॥
अंतरंग बहिरंग जल्प तज निर्विकल्प मैं हो जाऊं ।
राग द्वेष से रहित बनूं मैं शुद्धात्मा पद प्रगटाऊं ॥
ध्रुव अच्छेद्य अभेद्य अनाकुल निष्कलंक निर्मल अक्षय ।
त्रिशलानंदन वर्धमान श्री महावीर सिद्धार्थ तनय ॥
त्रिभुवन तिलक विश्व चूड़ामणि त्रैलोक्यवेश्वर महामहेश ।
तीन लोक के ज्ञाता दृष्टा महिमामय हे वीर जिनेश ॥
कर्म नाश कर त्रिविध ताप हर हुए सिद्धपति शिवधामी ।
सिंह चिन्ह चरणों में शोभित वैशालिक कुमार नामी ॥
मेरे संकट दूर करो प्रभु यही प्रार्थना है स्वामी ।
निज समान मुझको भी कर लो विनय सुनो अंतर्यामी ॥

सम्यक दर्शन ज्ञान चरित रत्नत्रय अपना लो ।
अष्टम वसुधा पंचम गति में सिद्ध स्वपद पा लो ॥

ॐ

श्री परमात्मा स्तोत्र

परमात्मा प्रथमेश परम प्रभु प्रशम प्रशान्त प्रभूतात्मा ।
प्रशान्तारि प्रिय मित्र परम संवर परमेश प्रमेयात्मा ॥
परम तत्त्व संपदा परम पथ परम निष्ट परमोत्तम प्राण ।
परम शुक्ल ध्यानी परमेष्ठी पाप प्रहारक परम पुमान ॥
पूर्ण परिग्रह त्यागी प्रत्यय अभव प्रणेता प्रभामयी ।
प्रभादिव्य प्रशमेश प्रकृति प्रिय राग द्वेष मोहारिजयी ॥
पुराणाद्य प्रक्षीण बंध प्रज्ञाधिराज प्राकृत परिपूर्ण ।
निर्विशेष वित ध्यान नाथ ध्यायक अनंत बलधारी पूर्ण ॥
बोधि प्रदायक बोध रूप बहुश्रुत ब्रह्मात्मा ब्रह्म विलास ।
कलामूर्त्ति गणनाथ सुनिष्ठित सम्प्रतिनाथ स्वरूप विकास॥
संवर रूपी सु प्रसन्न सज्जन चित् वल्लभ सामायिक ।
प्रत्यग्ज्योति परम पद दाता परम प्रतीति परम क्षायिक ॥
चेतन वंशी चंद्रोपम चारित्र नाथ चित् संतानी ।
चतुर्शीतिलक्षण चिन्ताहिम चेतयिता ज्ञानी ध्यानी ॥
चित् स्वभाव चैतन्य धातु चित् उदय रूप चित पिंड अखंड।
गुणनिवास उद्योतवान तेजोनिधि तेजोमयी प्रचंड ॥
दिव्य ज्योति दुर्नयतमनाशी दिव्य स्वरूप दयार्णवपूर ।
विध्य विनाशक विपुल प्रभामय विपुलद्योति ज्ञान आपूर ॥
मैं भी गुण अनंत का स्वामी सदा सिद्ध सम परमातम ।
निज स्वरूप ज्ञायक प्रगटाऊं ध्यान करूं निज शुद्धातम ॥
व्यक्ताव्यक्त ज्ञान विद् विभुवर लोकनाथ रवि रत्न करंड।
रस रागादि विहीन योगिभृत् रम्यशस्वीवरद अमंड ॥
युगाधीश युग ज्येष्ठ लोकपति लोकोत्तम त्रैलोक्य जयी ।
लोकालोक प्रकाश रवि प्रभ लोकेश्वर कल्याण मयी ॥

एक दिन भी जी मगर तू ज्ञान बनकर जी ।
तू स्वयं भगवान है भगवान बनकर जी ॥

ऐसे स्वरूप को नमन
हैं धन्य धन्य ये श्रमण

श्री मुनिराज को नमन
मन वच काय से नमन
गुरु निर्ग्रंथ को नमन
साधु महंत को नमन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
लेकर निजात्म की शरण
मुक्ति की ओर धर चरण
नित प्रति कर्म का हरण
करते विभाव का दमन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
क्रोध न मान लोभ है
माया नहीं न क्षोभ है
मोह ममत्व काम मद
मिथ्यात्व का किया वमन, ऐसे, स्वरूप को नमन ॥
पाप की भावना नहीं
पुण्य की कामना नहीं
जग की विचित्रता नहीं
प्रतिक्षण तत्त्व का मनन, ऐसे स्वरूप को नमन॥
तन मन को संभालते
वचन असत्य टालते
निरतिचार पालते
अट्ठाईस मूलगुण, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
परिषह जय करते सदा
पर परिणति हरते सदा
निज परिणति वरते सदा
जाग्रत हो चर्या गमन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥

तन प्रमाण उपचार कथन जिय लोकप्रमाण कथन भूतार्थ।
जो भूतार्थ आश्रय लेता वह पाता शिवमय परमार्थ ॥

राग की रागिनी नहीं
कुमति नागिनी नहीं
ऋद्धि की साधना नहीं
सिद्धि का है नहीं यतन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
करुणा से ओत प्रोत हैं
शांति के सिंधु स्रोत हैं
हो प्रमत्त की दशा
तो अप्रमत्त की लगन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
जिधर जिधर बढ़ें चरण
उधर प्रकाश की किरण
संयम शील आचरण
अपने स्वभाव में मगन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
तिल तुषसे न प्यार हैं
उर में दया अपार है
साधु वचन से खिर रहे
शुद्ध विचार के सुमन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
शत्रु हो या कि मित्र हो
हर्ष या शोक चित्र हो
निंदा हो या कि संस्तवन
राग का एक भी न कण, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
मारे तो कोई मार दे
या कोई पद पखार दे
दोनो को है आशीर्वाद
कल्याण मस्तु का वचन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥

जिस दिन तू मिथ्यात्व भाव को कर देगा पूरा विध्वंस ।
प्रकट स्वरूपाचरण करेगा पाकर पूर्ण ज्ञान का अंश ॥

जागी हृदय में शुद्धता
परिणाम की विशुद्धता
द्रव्य भाव संयमी
सिद्ध समान ज्ञानघन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
बंध से शत्रुता नहीं
मोक्ष से मित्रता नहीं
समता पियूष पी रहे
सिद्धस्वपद में लीन मन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
बाहर से निरावरण
अंतर में न आवरण
कायोत्सर्ग ध्यानमय
पर्वत हो या घोर वन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
कंचन हो या कांच हो
शीत हो तप्त आंच हो
या उपसर्ग हो महान
साता से कर रहे सहन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
सातवें गुणस्थान में
या छठवें गुणथान में
अंतर्मुहूर्त्त में बदल
झूलते झूला रात दिन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
मोह महा रिपुजीत कर
राग द्वेष व्यतीत कर
शुद्धात्मा से प्रीत कर
पाते हैं ज्ञान का चमन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥

जिनमत की परिपाटी में पहले सम्यक्दर्शन होता ।
फिर स्वशक्ति अनुसार जीवको व्रत संयम तप धन होता॥

लीन हैं धर्म ध्यान में
आएंगें शुक्ल ध्यान में
झलका है केवल ज्ञान में
पाएंगे मुक्ति का गगन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
सिंह सर्प से न भय
हिंसक जीव से अभय
न मंत्र तंत्र की तपन
न राग आग की घुटन, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
जीव विराधना रहित
द्वादश भावना सहित
वंदना सु जिन स्तुति
आलोचना व प्रतिक्रमण, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
चाहे हो अनुकूलता
या होवे प्रतिकूलता
सम दृष्टि·साम्यभाव से
मिटा रहे हैं भव भ्रमण, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
अंतर तप सुलीन हैं
चारित्र में प्रवीण हैं
स्वाध्याय का वरण
सत्ता स्वरूप में रमण, ऐसे स्वरूप को नमन ॥
मुनि का स्वरूप वंदनीय
मुनि पद है अभिनंदनीय
मुनि का सुवेश दर्शनीय
हैं धन्य धन्य ये श्रमण, ऐसे स्वरूप को नमन ॥

ओङ्कारंभक्ति संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ओङ्काराय नमो नमः ॥

अरहंता असरीरा आइरियातहउवज्झया मुणिणो ।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी ॥

राजमल पवैया रचित शताधिक पुस्तकों में से कुछ पुस्तकें

१. चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान
२. तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र विधान
३. सम्मेद शिखर विधान
४. वृहद् इन्द्रध्वजमंडल विधान
५. शान्ति विधान
६. विद्यमान बीस तीर्थंकर विधान
७. चौसठ ऋद्धि विधान
८. पंचमेरु विधान
९. नंदीश्वर विधान
१०. जिन गुण संपत्ति विधान
११. तीर्थंकर महिमा विधान
१२ याग मंडल विधान
१३. पंचपरमेष्ठी विधान
१४. पंच कल्याणक विधान
१५ कर्म दहन विधान
१६. जिन सहस्रनाम विधान
१७. कल्पद्रुम विधान
१८ गणधर वलय ऋषिमंडल विधान
१९. जैन पुजांजलि
२० तीर्थ क्षेत्र पुजांजलि
२१. श्रुत स्कंध विधान
२२. पूजन किरण
२३. पूजन पुष्प
२४. पूजन दीपिका
२५. पूजन ज्योति
२६. मंगल पुष्प द्वतीय
२७. मंगल पुष्प द्वितीय
२८. मंगल पुष्प तृतीय
२९ समकित तरग
३०. नित्यपाठ अपूर्व अवसर
३१. तीस चौबीसी विधान
३२. आदिनाथ भरत बाहुबलि पूजन
३३. आदिनाथ शांतिनाथ
३४. शांति कुन्थु अरनाथ
३५. शांति पार्श्व महावीर
३६. नेमि पार्श्वनाथ महावीर
३७. गोम्मटेश्वर बाहुबलि
३८ भगवान महावीर
३९. जैन धर्म सार्व धर्म
४०. वीरों का धर्म
४१ जन मंगल कलश
४२. जीवन दान
४३ सिद्ध चक्र वंदना
४४. तीनलोक तीर्थ यात्रा गीत
४५ भक्तामर विधान
४६ चतुर्विंशति स्तोत्र
४७ जिनेन्द्र चालीसा संग्रह
४८. चतुर्दश भक्ति
४९. जिन सहस्रनाम हिन्दी
५०. जिन वंदना
५१. मुनि वन्दना
५२. आत्म वन्दना
५३ पंचास्तिकाय विधान
५४. अनुभव
५५ परमब्रह्म
५६. सैंतालीस शक्ति विधान
५७. कुन्दकुन्द महिमा
५८. कुन्दकुन्द वाणी
५९. इन्द्रध्वज विधान
६०. एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान
६१. कुन्दकुन्द वचनामृत
६२. श्री कल्पद्रुम मंडल विधान
६३. श्री तत्वार्थ सूत्र विधान
६४ श्री दसलक्षण विधान
६५. श्री प्रवचन सार विधान
६६. श्री नियमसार विधान
६७. श्री अष्टपाहुड़ विधान
६८. श्री समयसार विधान
६९. श्री रत्नकरंड श्रावकाचार विधान
७०. श्री परमात्म प्रकाश विधान
७१. श्री षटखंडागम सत्प्ररूपणा विधान
७२. कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान
७३. श्री पुरुषार्थ सिद्धि उपाय विधान
७४. श्री योगसार विधान
७५. श्री द्रव्य संग्रह विधान
७६. श्री कसायपाहुड विधान
७७. समाधि शतक विधान
७८ श्री गोम्मटसार विधान
७९. श्री समयसार कलश विधान
८०. श्री पद्मनन्दि श्रावकाचार विधान
८१. श्री धर्मोपदेशामृत विधान
८२. तत्वानुशासन विधान
८३. श्री दानोपदेश विधान
८४. इष्टोपदेश विधान
८५. श्री तत्त्वज्ञान तंरगिणी विधान
८६. श्री श्रवण बेलगोला विधान
८७. श्री ज्ञानार्णव विधान

भवपथ शिवपथ में जो भेद न कर पाते हैं अज्ञानी ।
आत्मज्ञान के बिना बताओ कैसे वे होंगे ज्ञानी ॥

भजन

सप्त तत्त्व में मुख्य तत्त्व शुद्धात्म तत्त्व निज श्रेष्ठ महान ।
लोकालोक जानने वाला पा लेता है पद निर्वाण ॥
भाव द्रव्य नो कर्म मल रहित ज्ञान शरीरी सिद्ध महान ।
परम देव अरहंत महाप्रभु सकल ज्ञेय ज्ञायक भगवान ॥
भव्य जीव का आत्म ज्ञान परमात्म ज्ञान से जब मिलता ।
सर्व कर्म रज झड़ जाती है निर्मल ज्ञानाम्बुज खिलता ॥
आत्म विवेकी ही पंडित है आत्म ज्ञान से ओत: प्रोत ।
द्रव्य भाव नो कर्म विनाशक मुक्ति सौख्य का उत्तम स्रोत ॥

ज्ञान लब्धि अब मेरी आई ज्ञान कली सिखलाने को ।
महिमाशाली भेदज्ञान की पावन निधि दिखलाने को ॥
स्वपर विवेक जगा अंतर में हृदय उल्लसित करती है ।
सीधा सच्चा मोक्ष मार्ग है यही बात बतलाने को ॥
है सर्वज्ञ कथिक जिनवाणी में भव्यों को ही उपदेश ।
समवशरण में दिव्य ध्वनि खिरती निज ज्ञानकराने को ॥
जाग्रत करती है पुरुषार्थ महान हृदय में जीवों के ।
समकित युत संयम की तरणी देती शिवपुर जाने को ॥
मिथ्यामोह विलय कर देती देती सम्यक् ज्ञान प्रखर ।
रत्नत्रयमय निधि देती है आठों कर्म हराने को ॥
ज्ञान कला मंदिर की महिमा अंतर मध्य जगाती है ।
तब ही घड़ी विमल आती है उत्तम निज पद पाने को ॥

दिव्य ध्वनि मंदाकिनी, का जिनवाणी नाम ।
त्रिभुवन में जयवंत है, माता तुम्हें प्रणाम ॥
ज्ञानपयो निधि रस मिला, मां दो जीवन दान ।
फिर हम अपनी शक्ति से, मां पाएं निर्वाण ॥

इनके अन्तर में बैठा है महामोहमय मिथ्यातम ।
अनात्मा को मान आत्मा करते हैं खोटे उद्यम ॥

वाक्याक्षर के संयोगों से ही बनता है शास्त्र महान ।
यह व्यवहार शास्त्र कहलाता निश्चय शुद्ध स्वयं का ज्ञान ॥
महिमामयी ज्ञानज्ञाता तू महिमा मयी महान स्वरूप ।
आनंदामृत का सागर है तू चिन्मय चेतन चिद्रूप ॥
द्वादशांग वाणी से जो उत्पन्न शास्त्र है वह उत्कृष्ट ।
विकथाओं राग द्वेष से भरा हुआ वह पूर्ण निकृष्ट ॥
सत् शास्त्रों का पठन अध्ययन मनन श्रेष्ठ कल्याणमयी ।
भाव भासना होते ही होता चेतन निर्वाण जयी ॥

भेद ज्ञान से रहित जीव को मोह भाव रहता दिनरात ।
जड पदार्थ सर्वथा भिन्न है इससे जिय रहता अज्ञात ॥
पुद्‌गल ही नाटक करता है जीवन नाटक करता है ।
वह तो ज्यों का त्यों रहता है निज अतिशय ही भरता है ॥
कर्त्ता कर्म प्रवृत्ति छोड़कर जो भी निज को ध्याता है ।
पर कर्तृत्व भाव को हरकर अकर्तृत्त्व गुण पाता है ॥
सर्वश्रेष्ठ विज्ञान घनमयी ध्रुव स्वभाव को पाता है ।
सभी वर्गणाओं से रहता दूर स्वपद निज पाता है ॥
जो अज्ञान तिमिर का भेद न करके ज्ञान रूप होता ।
भाव कर्म नो कर्म उड़ाता शाश्वत शुद्ध रूप होता ॥

हम प्रभु काहे कौ बौराये ।
हमको तो निज ज्ञान भयो है क्यों पर में इतराये ॥
कर्त्ता भाव तजज्यो अब ममने भोक्ता भी तज दीनो ।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्त में ज्ञनन मिले हैं तीनो ॥
अब तो संयम तरणी पायी भव तन दीनो छोड़ ।
निज आतम से नहलगायो तत्क्षण निज से जोड़ ॥

नकली संयम के पीछे ये जीवन व्यर्थ गँवाते हैं ।
सम्यक् दर्शन लिए बिना अवरित को दूर भगाते हैं ॥

जब ध्याता निज ध्यान स्वबल से तन को शून्य बनाता है।
ध्येय रूप निज में प्रविष्ट हो निज स्वरूप में आता है ॥
भेद विकल्प नष्ट करता है परमात्मा हो जाता है ।
परमात्मा को ध्यान विषय कर भाव ध्येय निज पाता है ॥

चलूँ मैं स्वपथ पर तुम्हें साथ लेकर ।
बनूं निर्भयी शक्ति अपनी बढ़ाऊँ ॥
गुण स्थान पाऊं मैं अष्टम अनूठा ।
चरण शीघ्र श्रेणी पै अपने बढ़ाऊं ॥
हरूं घांतिया चारों मैं मोह के संग ।
गुण स्थन तेरहवां है नाथ पाऊं ॥
अघाति की क्षमता करूं पूर्ण क्षय अब ।
महा मोक्ष निज पद तुरत नाथ पाऊं ॥
ये निज ध्यान जलयान शिवतपुरतक जाता ।
इसी के सहारे मैं शिवपुर मैं जाऊं ॥

कभी मुक्ति पथ न छोड़ेगें हम तो ।
चाहे जोर कितना विभा वलगाए ॥
सफलता परम पायी है मुश्किलों से ।
तभी मोह के सर्व बादल हराए ॥
अभी हमको उस पार जाना है सुन लो ।
जहाँ ज्ञान की ही फसल लहलहाए ॥
शिवालय की महिमा सुनी है सदा से ।
शिवालय का आनंद ही उर में छाए ॥

अब हम संसार तजेगें ।
भेद ज्ञान निधि पायी हमने अब निज रूप भजेंगे ॥
इक शत चार आठ शाखा युत आठों कर्म लजेंगे ।
हम तो राग द्वेष सब तज कर आत्म स्वभाव सजेंगे ॥

वे आकाश कुसुम लाने को चारित्राभासी बनते ।
क्रियाकांड के आंडबर में रत होते निज से तनते ॥

जिसके मन में दया नहीं वह हिंसक बन दुख पाता है ।
जिसके मन में दया अहिंसक बन कर वह सुख पाता है ॥
हिंसक नरकों में जाता है तथा अहिंसक स्वर्ग महल ।
दया भाव जिसके मन में है वही अहिंसक पूर्ण सबल ॥
जो पर की चिन्ता करता है वह है धर्म मूढ़ प्राणी ।
जो निज की चिन्ता करता है वह है ज्ञान रूढ़ प्राणी ॥
मिथ्यादृष्टि साधु संयमी पर ग्रीवक तक जाता है ।
ग्रवीक से आगे हरगिज़ वह कभी न जाने पाता है ॥
इससे सिद्ध हुआ किंचित कर है मिथ्यात्व बंध कारण ।
ग्रीवक से नीचे लाता है देता है भव दुख दारुण ॥
जो मिथ्यात्व बंध का हेतु न माने वे भोले प्राणी ।
स्वयं डूबते तथा डुबाते अन्यों को है अज्ञानी ॥
सत्तर क़ोड़ा कोड़ी सागर का ये बंध कराता है ।
भोले भाले जीवों को ये भुला नर्क ले जाता है ॥
है सम्यक्त्व मोक्ष का कारण इसका पूर्ण करो सन्मान ।
इसके द्वारा शक्ति प्राप्त कर अष्ट कर्म कर दो अवसान ॥

चेतन हमारा निज ज्ञान करेगा ।
शिव पथ पर आके निज ध्यान करेगा ॥
श्रेणी चढ़ेगा ये, आगे बढ़ेगा ये ॥
चारित्र यथाख्यात् पाएगा आधी रात ।
निज के भीतर रहकर ये प्रमाण करेगा ॥
घातिया नाशेगा, अघाति बिना शेगा ।
मुक्ति का सौख्य ये महान वरेगा ॥

मति भ्रष्ट अगर यह चेतन है तो दशा भ्रष्ट जानो ।
मति शुद्ध अगर चेतन है तो फिर दशा स्वच्छ जानो ॥